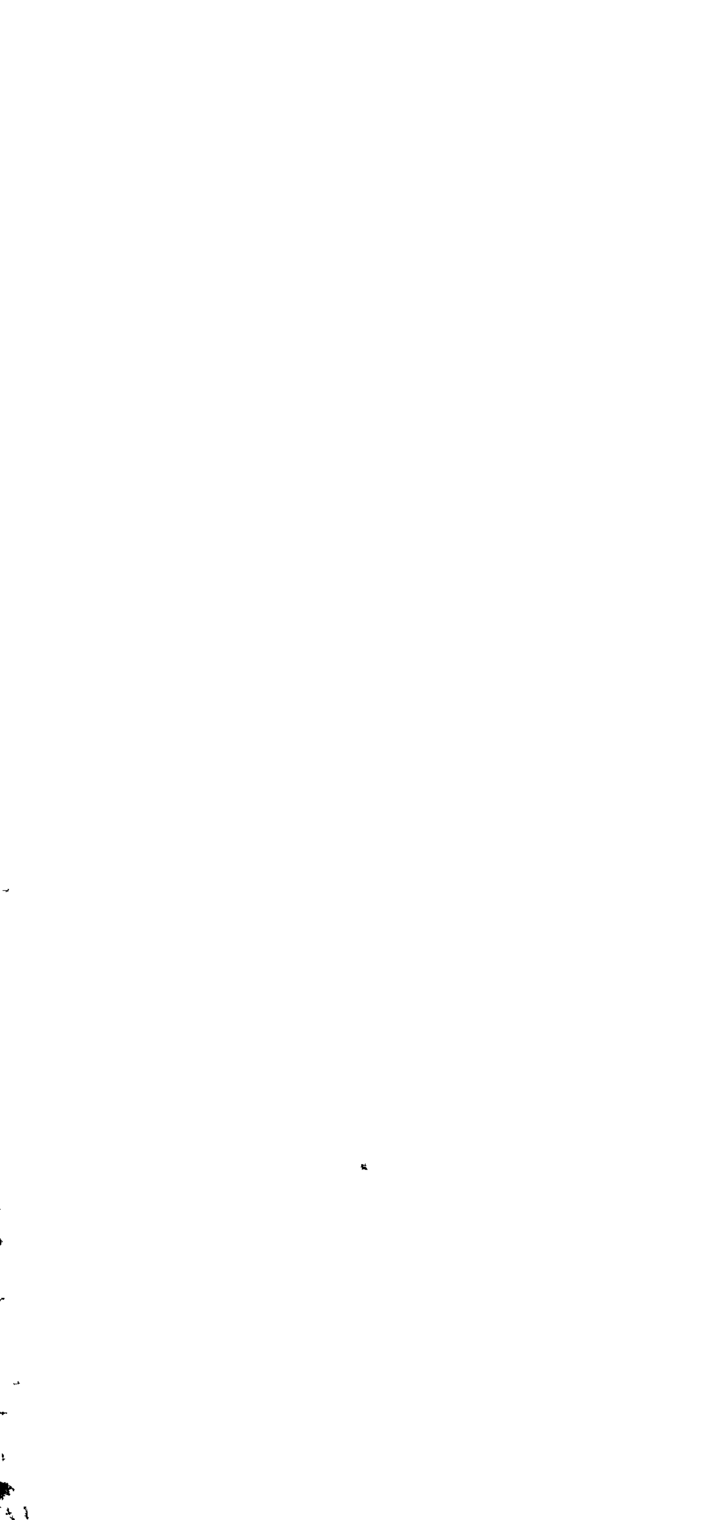




॥ कार्तिक माह स्नान पूजा महिमा ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ ऋषि बोले ॥ हे मुनिश्रेष्ठ वालखिल्यो ! कलियुगमें जिनका पापमें चित्त है, जो दीन वचन बोलते हैं जो ज्ञान और आत्मज्ञानसे रहित हैं और जो उदरके सुखकी इच्छा करते हैं, और जिनकी बुद्धि स्थिर नहीं है, और जिनका मन स्वार्थमें लगा रहता है। और जिनका चित्त जप आदिमें क्षणमात्र भी स्थिर नहीं होता, और जो लोग ऊपरी पूजामें भी असमर्थ हैं उनके ऊपर भगवान् जनार्दन कैसे प्रसन्न होंगे सो उनके उद्धार और सुखके लिये

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ मुनिश्रेष्ठा वालखिल्याः सर्वलोकहितेच्छया ॥ कलौ कलुषचित्तानां लोकानां दीनभाषिणाम् ॥ १ ॥ ज्ञानविज्ञानहीनानां शिश्नोदरसुखेषिणाम् ॥ क्षणभंगुरबुद्धीनां स्वार्थतत्परमानसाम् ॥ २ ॥ कथं प्रसन्नो भगवान् भविष्यति जनार्दनः ॥ श्रुतं च भास्करमुखात्तद्व्रत व्रतमुत्तमम् ॥ ३ ॥ न स्थिरं जायते चित्तं क्षणमात्रं जपादिषु ॥ बाह्य-पूजासमर्थानामुद्धाराय सुखाय च ॥ ४ ॥ इहलोके परत्रापि येन पुण्यमवाप्यते ॥ वाल-खिल्या ऊचुः ॥ सम्यक् पृष्टं मुनिवरैः कलिबुद्धिप्रभंजिताः ॥ ५ ॥ ॥ ॥

तथा सब लोकोंके हितकी इच्छासे उस व्रतको कहिये कि जिसे तुमने सूर्यनारायणके मुखसे सुना है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ जिससे इस लोक और परलोकमें सुख मिलै। वालखिल्या बोले ॥ हे श्रेष्ठमुनियो ! तुमने अच्छी बात पूछी। कलिके बुद्धिहीन ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मूर्ख मनुष्य अनेक मार्गोंका सेवन करते फिरते हैं उन्होंके लिये सूर्यनारायणने अपने सारथी अनूरुसे और नारद आदिसे बड़ा उत्तम व्रत कहा है ॥ ६ ॥ श्रीसूर्यनारायण बोले । हे अनूरु ! हे वालखिल्यो ! हे नारद ! और हे सनक आदि ! तुम इस परमोत्तम व्रतको सुनो ॥ ७ ॥ मेरी गतिके भ्रमणसे चराचर उत्पन्न होता है, बढ़ता है और नाश

विचरंति नरा मूढा नानामार्गोपसेवकाः ॥ तेषामर्थे भास्करेण प्रोक्तं व्रतमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ श्रीभास्कर उवाच ॥ शृण्वनूरो भवंतोऽपि वालखिल्याश्च नारद ॥ सनकाद्या भवंतोऽपि शृण्वंतु व्रतमुत्तमम् ॥ ७ ॥ मद्गतिभ्रमणेनैव जायते सचराचरम् ॥ तथैव वृद्धिमायाति जायतेऽन्तर्हितं ततः ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैरेकदा प्रार्थितस्त्वहम् ॥ कथं तव गतिज्ञानं जायते तद्वदस्व मे ॥ ९ ॥ एवं तैः प्रार्थ्यमानो हि कृताः स्वांगांशसंभवाः ॥ चत्वार एव पुरुषा युगरूपा महोज्ज्वलाः ॥ १० ॥ तत्राद्यः सात्विकः श्वेतवस्त्रमाल्यविभूषणः ॥ ज्ञानमुद्रां करे बिभ्रद्ध्यानस्तिमितलोचनः ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

होता है ॥ ८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेशने एक समय मुझसे प्रार्थना करी थी कि तुम्हारी गतिका ज्ञान कैसे हो सो हमसे कहिये ॥ ९ ॥ जब उन्होंने इस प्रकार प्रार्थना करी तो मैंने अपने अंगके अंशसे बड़े उज्ज्वल सत युग त्रेता द्वापर और कलियुगके समान चार पुरुष उत्पन्न किये ॥ १० ॥ पहिला सतयुगरूप सतोगुणी, श्वेत वस्त्र माला आदि आभू-

पण पहिरें, हाथमे ज्ञानमुद्रा धारण कियें और ध्यानमें नेत्र बंद कियें था ॥ ११ ॥ दूसरा त्रेतारूप रजोगुणी उत्पन्न हुआ । दड और पुस्तकको धारण किये, दाताओंमें वड़ा दानी, शूर, कुल और जातिको अलग २ करनेवाला था ॥ १२ ॥ तीसरा द्वापाररूप तमोगुणी, होता प्रणीता, और पशुको धारण किये वेदको पढ़ता हुआ तथा नाचने गानेवाले लोगोंको संगलिये उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ चौथा कलियुगरूप मदिरामें उन्मत्त, दोनो हाथोंसे लिंगको दवायें,

द्वितीयो राजसो जातो दंडपुस्तकधारकः ॥ दाता वदान्यः शूरश्च कुलजातिविभागकृत् ॥ १२ ॥ तृतीयस्तामसो होता प्रणीतां पशुधारकः ॥ पठन्वेदं गीतनृत्यकरलोकैः समावृतः ॥ १३ ॥ चतुर्थो मदिरोन्मत्तः कराभ्यां लिंगपीडकः ॥ स्कंधयोर्धत्तयुवतिर्हासघूर्णितलोचनः ॥ १४ ॥ श्रीसूर्य उवाच ॥ एतान्पृच्छन्तु भो देवाः कारणं मे गतेः खिलम् ॥ उत्पत्तिस्थितिनाशाय सर्वेषां पर्यटाम्यहम् ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा भास्करस्तूर्णं मेदिनीं तां व्यगाहयत् ॥ ब्रह्माद्याः परिपप्रच्छुः कृतं ज्येष्ठं शनैःशनैः ॥ १६ ॥ ॥ ॥

दोनों कंधोंपर स्त्रीको धरै और हंसीसे नेत्रोंको मतवाले कियें उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ सूर्यनारायण वोले ॥ हे देवताओ ! इन्ही चारोंसे मेरी गतिका संपूर्ण कारण पूछो ॥ मैं सवकी उत्पत्ति पालन और नाशके लिये फिरताहूं ॥ १५ ॥ यह कहकर सूर्यनारायण शीघ्रतासे पृथ्वीपरसे घूमगये और ब्रह्मा आदि देवताओंने धीरे २ सवमें वड़े सतयुगरूपसे पूछा

॥ १६ ॥ देवता बोले ॥ हे सतयुगरूप ! सूर्यनारायणकी गति कैसे होती है और तुम कैसे समयको वितातेहो और यह तुह्मारा क्या वेष है और तुह्मारा क्या कार्य है सो शीघ्र कहो ॥ १७ ॥ सतयुगरूप बोला । हे ब्रह्मन्! जबसे तुम उत्पन्न हुयेहो उस दिनसे १७ लाख २८ हजार सौर वर्षतक मे मनुष्योंको ध्यान तप और ज्ञान आदि मोक्षके साधन

देवा ऊचुः ॥ कथं श्रीभास्करगतिः कथं कालांशको भवान् ॥ क एष वेषः किं कार्यं यत्त्वया तूर्णमुच्यताम् ॥ १७ ॥ कृत उवाच ॥ त्वं सृष्टोऽसि यदारभ्य ब्रह्मंस्तद्दिवसादितः ॥ प्रयुतेकं सप्तलक्षं ह्ययुतं चाष्टसंज्ञकम् ॥ १८ ॥ सहस्रं सौरवर्षाणां पर्यंते तु मया जनाः ॥ ध्यानाय तपसे ज्ञानमोक्षसाधनकर्मणि ॥ १९ ॥ मयि नास्ति नरः कोपि स्वल्पायुश्चिंतयान्वितः ॥ ब्रह्मनिष्ठा नराः सर्वे रविमंडलभेदिनः ॥ २० ॥ त्रेतोवाच ॥ एतस्मादुत्तरश्चाहं त्रेतो नाम महाबलः ॥ नृणां सुखकरोत्यर्थं भ्रातृधर्मविनाशकः ॥ २१ ॥ मया वर्णव्यवस्थात्र जातिभेदाः पृथक् पृथक् ॥ उत्पादिता राजनीतिः सौख्यानि विविधानि च ॥ २२ ॥

कर्ममें लगाताहूं ॥ १८ ॥ १९ ॥ मेरे समयमें कोई मनुष्य थोड़ी आयुवाला और चिंतायुक्त नही होता । सब मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ और सूर्यमण्डलमें जानेवाले होते है ॥ २० ॥ त्रेतारूप बोला ॥ इस सतयुगके पीछे मै त्रेता नाम महाबलीहूं मै मनुष्योंको अत्यंत सुखका करनेवाला और भाइयोंके धर्मका नाशकहूं ॥ २१ ॥ मैने संसारमें वर्णव्यवस्था और

जुदे २ जातिभेद, राजनीति, और अनेक प्रकारके सुख और ऊंचे नीचे धर्म ऐसे उत्पन्न किये है कि जो अपने भाई सतयुगके धर्मको विनाश करनेवाले हैं और १२ लाख ८६ हजार वर्षका मेरा मान है और इतने वर्षतक में ही वुद्धिको प्रेरणा करताहूं ॥ द्वापररूप वोला । हे देवताओ ! मेरी वात सुनो, मै युगोंमे उत्तम युगहूं ॥२२॥२३॥२४॥ मेरा

उच्चावचास्तथा धर्मा भ्रातृधर्मविनाशकाः ॥ प्रयुतैकं द्विलक्षं च नवसंख्यायुतानि च ॥ २३ ॥ षट्सहस्राणि मे मानं बुद्धिं संप्रीणयाम्यहम् ॥ द्वापर उवाच ॥ शृण्वंतु देवा मद्वाचो युगानामुत्तमं युगम् ॥ २४ ॥ द्वापरं नाम विख्यातं नानासौख्यप्रदायकम् ॥ लक्षाणामष्टकं देवाः षट्संख्यान्ययुतानि च ॥ २५ ॥ सहस्राणां चतुष्कं च मत्कालस्य प्रमाणता ॥ अहं बुद्धिं प्रवक्ष्यामि सर्वेषां सुखहेतवे ॥ २६ ॥ जैमिनेस्तु स्वरूपेण कर्ममार्गः प्रकाशितः ॥ वर्णभेदः कृतो भ्रात्रा सर्वेषां जीवने विधिः ॥ २७ ॥ विचारितस्तु तेनातो मया धर्मः प्रकाशितः ॥ तामसाश्च भविष्यंति मद्रूपास्तु सहस्रशः ॥ २८ ॥ ॥ ॥

नाम द्वापर विख्यात है मै अनेक प्रकारके सुखोंका देनेवालाहूं । और हे देवताओ ! मेरे कालका समय ८ लाख ६४ हजार वर्ष है मै सवको सुखकेलिये वुद्धि वतलाताहूं ॥ २५ ॥ २६ ॥ मैने जैमिनके स्वरूपसे धर्मका मार्ग प्रकाश किया है मेरे रूपके समान हजारो तामसी होंगे ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥

और आपसमें शिर काटकर निश्चय करके नाश होंगे । हे देवताओ ! मत्र भाइयोंमें मैं सबसे बड़ाहूं ॥ २९ ॥ कलियुग बोला ॥ हा ! धिक्कार है, कष्टकी बात है कि मेरे माहात्म्यको नहीं जाननेवाले ये बुद्धिहीन मूर्ख किसप्रकार ऐसा कानोंको कडुआ लगनेवाला वचन कहते हैं । मैं कलियुग इन सब धर्मोंसे और सत्यसे रहितहूं और चार लाख

अन्योन्यतः शिरश्छेदाद्यास्यंति विलयं ध्रुवम् ॥ भ्रातृणां चैव सर्वेषामहं ज्येष्ठोस्मि देवताः ॥ २९ ॥ कलिरुवाच ॥ हा धिक्कष्टं कर्णकटु प्रोच्यते भ्रातृभिः कथम् ॥ मन्माहात्म्यमजानद्भिरज्ञानैर्बुद्धिवर्जितैः ॥ ३० ॥ एतद्धर्मैर्विहीनोहं कलिः सत्यविवर्जितः ॥ त्र्ययुतं च चतुर्लक्षं सहस्रद्वितयं तथा ॥ ३१ ॥ मत्कालपरिमाणं तु प्रेरयामीदृशीं धियम् ॥ परस्त्रीगमने द्यूते चौर्ये छद्मनि कूटके ॥ ३२ ॥ पैशून्ये वृत्तिलोपे च मद्यमांसादिभक्षणे ॥ सर्वे लोका जारजाताः शिश्नोदरपरायणाः ॥ ३३ ॥ वाममार्गरता मातृभगिनीभोगकारकाः ॥ मयि स्वल्पायुषो लोका बहुधा विधवांगनाः ॥ ३४ ॥

३२००० हजार वर्ष ॥३०॥३१॥ मेरे कालका प्रमाण है और मैं बुद्धिको ऐसी प्रेरणा करताहूं कि जिससे परस्त्रीगमन, जुआ चोरी, छल, माया ॥ ३२ ॥ चुगली, आजीविका लोप, मद्यमांस आदि भक्षण इत्यादिमें लगे हुये। मेरे समयमें सब लोग जारसे उत्पन्न कामी और अपना पेट भरनेवाले होंगे ॥ ३३ ॥ वाम मार्गमें प्रीति और माता बहिनसे भोग करेंगे

मेरे समयमें लोगोंकी थोड़ी आयु होगी और बहुधा स्त्रियां विधवा होंगीं ॥ ३४ ॥ वृद्धावस्थामें सब लोग बहुधा निर्धन और रोगी होंगे। ब्राह्मण शूद्रोंके कर्म करेंगे और शूद्र ब्राह्मणोंकी आजीविका करेंगे ॥३५॥ सब मनुष्य छलसे युद्ध करेंगे और स्वामीको संग्राममें छोड़ भागेंगे। और स्त्रियां थोड़े कारणसे पतिको छोड़ जायंगी ॥ ३६ ॥ और स्त्रियां जातिवंध्या, काकवन्ध्या और मृतवन्ध्या होंगी और विद्या, लक्ष्मी तथा कला आदि नीचोंमें रमण करेंगी ॥ ३७ ॥

वार्धके बहुधा सर्वे निर्धना रोगसंयुताः ॥ ब्राह्मणाः शूद्रकर्माणः शूद्रा ब्राह्मणवृत्तयः ॥ ३५ ॥
युद्धकूटाः सर्वजनाः पतिं त्यक्षंति संगरे ॥ स्वल्पेन हेतुना नार्यो भर्तृत्यागविधायकाः ॥ ३६ ॥
जातिवंध्याः काकवंध्या मृतवंध्या भवंतिच ॥ विद्यालक्ष्मीकलाद्याश्च नीचेष्वेव रमंति च ॥३७॥
दासीभोगरता लोकाः परित्यज्य कुलस्त्रियम् ॥ एवं धर्मं करिष्यामि भ्रातृधर्मविनाशकम् ॥३८॥
एतन्मम स्वरूपं तु यो जानाति स पंडितः ॥ सर्वधर्मपरित्यक्तं मां जानीत युगं कलिम् ॥ ३९ ॥ देवा
ऊचुः॥कले तव समो नास्ति कश्चिच्चित्तविमोहकः॥किंचिद्व्रतं वा दानं वा येन मुक्तो भवेज्जनः॥४०॥

अपने कुलकी स्त्रीको छोड़कर लोग दासियोंसे भोग करेंगे सो मैं भाइयोंके धर्मको नाश करनेवाला ऐसा धर्म करूंगा ॥ ३८ ॥ जो मेरे इस स्वरूपको जानता है वह पण्डित है मुझ कलियुगको सब धर्मोंसे रहित जानना ॥ ३९ ॥ देवता बोले। हे कलियुग! तेरे समान कोई चित्तका बिगाड़नेवाला नहीं है कोई व्रत वा दान हो कि जिससे मनुष्य मुक्तहो

॥ ४० ॥ तो कृपाकर बताओ कि मनुष्य शीघ्र विष्णुलोकमें जाय ॥ कलियुग बोला ॥ जिस समय सूर्यनारायण अपने सूत अनूरुसे कह रहेथे तब मैंने भी सुनलिया था कि जिससे ॥ ४१ ॥ मेरे होते भी मनुष्य स्वर्गको जाय सो तुम सुनो । सूर्यनारायण बोले ॥ बारहों महीनोंमें मार्गशिर बड़े पुण्यका देनेवाला है ॥ ४२ ॥ उससे अधिक पुण्यका फल वैशाख मासमें नर्मदाके तटका कहा है और उससे लाखगुना अधिक पुण्य प्रयागमें माघमासका कहा है ॥ ४३ ॥ उसमे

कृपां कृत्वा वद क्षिप्रं विष्णुलोकं व्रजेद्यथा ॥ कलिरुवाच ॥ अनूरुं वदता प्रोक्तं भास्करेण श्रुतं मया ॥ ४१ ॥ मय्यपि स्वर्गगमनकारणं श्रूयतां हि तत् ॥ सूर्यनारायण उवाच ॥ द्वादशानां तु मासानां मार्गशीर्षोतिपुण्यदः ॥ ४२ ॥ तस्मात् पुण्यफलः प्रोक्तो वैशाखो नर्मदातटे ॥ ततो लक्षगुणः प्रोक्तः प्रयागे माघमासकः ॥ ४३ ॥ तस्मान्महाफलः प्रोक्तः कार्तिको जलमात्रके ॥ एकतः सर्वदानानि व्रतानि नियमास्तथा ॥ ४४ ॥ एकतः कार्तिकस्नानं ब्रह्मणा तुलया धृतं ॥ संततिश्चैव संपत्तिः कलौ येषां प्रदृश्यते ॥ ४५ ॥ ॥

बड़ा फल कार्तिकमें स्नान करनेका है । एक ओर तो सब दान व्रत और नियम ॥ ४४ ॥ और दूसरी ओर कार्तिकके स्नानको ब्रह्माजीने तराजूमें धरा तो कार्तिकस्नानही भारी रहा । कलियुगमे जिनके यहां संतति और संपत्ति दीखती है ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तो समझलो कि उन्होंने अवश्य आदरपूर्वक कार्तिकस्नान किया ॥ जो मनुष्य स्नान, दीप दान तुलसीके बनका पालन ॥ ४६ ॥ भूमिशयन, ब्रह्मचर्य, दालका छोड़ना, विष्णुका संकीर्तन, सत्य, पुराणका सुनना ॥ ४७ ॥ ये कार्तिक-मासमे करते है तो वे जीवन्मुक्त है । कार्तिकके समान कोई धर्म नहीं है और न कार्तिकसे परे कोई अर्थ है ॥ ४८ ॥ न कार्तिकके समान काम है और न कार्तिकसे बढ़कर कोई मोक्ष देनेवाला है ॥ इसे युधिष्ठिरने धर्मके लिये, ध्रुवने

अवश्यं तैः कृतं विद्धि कार्तिकस्नानमादरात् ॥ स्नानं च दीपदानं च तुलसीवनपालनम् ॥४६॥
भूमिशय्या ब्रह्मचर्यं तथा द्विदलवर्जनम् ॥ विष्णुसंकीर्तनं सत्यं पुराणश्रवणं तथा ॥ ४७ ॥
कार्तिके मासि कुर्वंति जीवन्मुक्तास्त एव हि ॥ न कार्तिकसमं धर्म्यमर्थ्यं नो कार्तिकात्परम् ॥४८॥
न कार्तिकसमं काम्यं मोक्षदानं न कार्तिकात् ॥ युधिष्ठिरेण धर्मार्थमर्थार्थं च ध्रुवेण च ॥४९॥
श्रीकृष्णेन तु कामार्थं मोक्षार्थं नारदेन च ॥ कृतमेतद्व्रतं तस्माच्छ्रेष्ठं कृष्णप्रियं च हि ॥५०॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थके लिये ॥ ४९ ॥ श्रीकृष्णजीने कामके लिये और नारदजीने मोक्षके लिये यह व्रत किया था इसलिये यह श्रेष्ठ और कृष्णजीको प्यारा है ॥ ५० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

॥ अरुण बोला हे सर्वात्मा ! हे भास्कर ! कबसे व्रत करना चाहिये कि जिसमे अच्छी भांति सफल हो और उसमें कौनसे देवताकी पूजा करनी चाहिये ॥१॥ सूर्यनारायण बोले । मैंही विष्णु हूं मैंहीं महादेव हूं मैंही देवी हूं मैंही गणेश हूं यों मैंनेही पांच प्रकारसे रूप धारण किया है जैसे नाटकमे सूत्रधार अनेक रूप धरता है ॥ २ ॥ हे खगेश्वर ! वे सब

अरुण उवाच ॥ ब्रूहि भास्कर सर्वात्मन् कदारभ्य व्रतं कृतम् ॥ सफलं जायते सम्यक् का च पूज्यात्र देवता ॥ १ ॥ भास्कर उवाच ॥ अहं विष्णुश्च शर्वश्च देवी विघ्नेश्वरस्तथा ॥ एकोहं पंचधा जातो नाट्ये सूत्रधरो यथा ॥ २ ॥ अस्माकं सर्व एवैते भेदा विद्धि खगेश्वर ॥ तस्मात्सौरैश्च गाणेशैः शाक्तैः शैवैश्च वैष्णवैः ॥ ३ ॥ कर्तव्यं कार्तिकस्नानं सर्वपापापनुत्तये ॥ सूर्यस्य प्रीतये कार्यं तुलासंस्थे दिवाकरे ॥ ४ ॥ इषपूर्णां समारभ्य यावत्कार्तिकपूर्णिमा ॥ तावत्स्नानं विधातव्यं शिवसंतुष्टये नरैः ॥ ५ ॥ देवीपक्षं समारभ्य महारात्रिचतुर्दशी ॥ तावत्स्नानं विधातव्यं देवी संप्रीयतामिति ॥ ६ ॥ ॥ ॥

मेरेही भेद हैं ऐसा जानो । इसलिये सूर्य, गणेश, देवी, शिव और विष्णु इनके उपासकोंको ॥ ३ ॥ सब पाप दूर करनेके लिये कार्तिकस्नान करना चाहिये ! और जब तुलाके सूर्य हो तब सूर्यके प्रसन्नताके लिये ॥ ४ ॥ आश्विनकी पूर्णिमासे लेकर कार्तिकी पूर्णिमातक मनुष्योंको शिवजीके प्रसन्नार्थ स्नान करना चाहिये ॥ ५ ॥ और देवीपक्षसे लेकर

अर्थात् नव दुर्गाकी प्रतिपदासे महारात्रिकी चौदसतक देवीके प्रीत्यर्थ स्नान करना चाहिये ॥ ६ ॥ और गण कहिये पितृपक्षकी चौथसे लेकर कार्तिक कृष्णपक्षकी चौथतक गणेशजीके प्रसन्नार्थ स्नान करना चाहिये ॥ ७ ॥ और आश्विनशुक्लपक्षकी एकादशीसे कार्तिकशुक्ला एकादशीतक जो मनुष्य स्नान पूरा करता है ॥ ८ ॥ उसपर भगवान् संतुष्ट होते हे । न तो कार्तिकके समान कोई मास है और न काशीके समान पुरी है ॥ ९ ॥ न प्रयागके समान तीर्थ है

गणपक्षं समारभ्य कृष्णा या कार्तिके भवेत् ॥ चतुर्थी तावदेव स्यात्स्नानं गणपतुष्टये ॥ ७ ॥
एकादशीं समारभ्य आश्विनस्यासितेतराम् ॥ एकादश्यां कार्तिकस्य शुक्लायां परिपूर्यते ॥८॥
कृतं येन तु तस्य स्यात्परितुष्टो जनार्दनः ॥ न कार्तिकसमो मासो न काशीसदृशी पुरी ॥९॥
न प्रयागसमं तीर्थं न देवः केशवात्परः ॥ प्रसंगाद्वा वलात्कारैर्ज्ञात्वाज्ञात्वा कृतं भवेत् ॥१०॥
स्नानं कार्तिकमासस्य न पश्येद्यमयातनाम् ॥ स्नानार्थं चेन्न सामर्थ्यं दत्त्वान्यस्मै धनादिकम् ॥११॥
स्नातस्य तस्य हस्तस्य ग्रहणात्पुण्यभाग् भवेत् ॥ अथवा कार्तिकस्नानं ये कुर्वंति द्विजातयः ॥१२॥

न भगवान्से परे कोई देव है । प्रसंगसे वा बलपूर्वक, जानकर वा बे जाने जिसने कार्तिक मासका स्नान किया हो वह यमकी यातना नही देखता है । और जो स्नानकी सामर्थ्य नहो तो दूसरेको धन आदि दे करावै ॥१०॥११॥ और उस स्नान करनेवालेके हाथसे अपने हाथको मिलानेसे पुण्यका भागी होजाता है । अथवा जो ब्राह्मण कार्तिक स्नान

करते हैं ॥ १२ ॥ उनको वरण देकर स्नानका फल मिल जाता है। कार्तिकमें विशेषकर राधादामोदरका पूजन करना चाहिये ॥ १३ ॥ सौनेकी वा चांदीकी और इनकी न हो तो तांबेकी और तांबेके अभावमें मट्टीकी वा चित्रकी वा चूनकी सुन्दर मूर्ति बनवावै ॥ १४ ॥ जो लोग तुलाके सूर्यमें राधादामोदरकी मूर्तिकी पूजा करते हैं उन मनुष्योंको जीवन्मुक्त जानना चाहिये इसमें संदेह नहीं है ॥ १५ ॥ मनुष्य हजार पापसे युक्त क्यों न हो कार्तिकमें स्नान

तेषां प्रावरणं दत्त्वा स्नानजं फलमाप्नुयात् ॥ राधादामोदरः पूज्यः कार्तिके तु विशेषतः ॥१३॥
स्वर्णस्य वाथ रौप्यस्याप्यभावे शुल्बजामपि ॥ मृज्जां वा चित्रजातां वाथवा पिष्टविचित्रताम् ॥१४॥
दामोदरस्य राधायास्तुलस्याधोर्चयंति ये ॥ मूर्तिं ते तु नरा ज्ञेया जीवन्मुक्ता न संशयः ॥ १५ ॥
अपि पापसहस्राढ्यः कार्तिकस्नानतो नरः ॥ मुक्तोवश्यं स भवति नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥
कृतं यैः कार्तिके मासि दीपदानं विधानतः ॥ दृश्यंते ये रत्नभाजस्ते त एव प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥
यो वेदाभ्यासिने दद्याद्दीपार्थं तैलमादरात् ॥ को वा तस्य फलं वक्तुं भुवि तिष्ठति मानवः ॥१८॥

करनेसे अवश्य मुक्त होजाता है इसमें विचारका काम नही है ॥ १६ ॥ जिन मनुष्योंने कार्तिकमे विधिसे दीप दान किया है वेही रत्नोंके भोगी और बड़े यशस्वी दीखते हैं ॥ १७ ॥ जो मनुष्य वेदपाठीको आदरसे दियेके लिये तेल देता है उसका फल पृथ्वीपर कौनसा मनुष्य कह सक्ता है अर्थात् कोई नही ॥ १८ ॥ ॥ ॥

जो दीपदान करनेके लिये असमर्थ हो तो दूसरेके दियोंकी रक्षा करा ले और हे खग ! कार्तिकमें आंवलेके वृक्षके नीचे भगवान्‌की पूजा अवश्य करनी चाहिये ॥ १९ ॥ मुख्य पूजाका विधान सूर्यके मंडलमें करना चाहिये क्योंकि सब देवता तो प्रत्यक्ष नहीं है और ये सूर्य भगवान् प्रत्यक्ष हैं ॥ २० ॥ ये सब प्राणियोंके नेत्ररूप हैं और मरे हुये जगतको जीव दान देते हैं और इन्हींके अंशसे रुद्र आदि सब देवता उत्पन्न हुये हैं ॥ २१ ॥ ये ईश भगवान् प्रत्यक्ष हैं और

दीपदानासमर्थश्चेत्परदीपं तु रक्षयेत् ॥ तुलस्यभावे कर्तव्या पूजा धात्रीतले खग ॥ १९ ॥
मुख्यपूजाविधानं तु कर्तव्यं सूर्यमंडले ॥ अप्रत्यक्षा सर्वदेवाः प्रत्यक्षो भगवानयम् ॥ २० ॥
सर्वेषामेव नेत्रोयं जगज्जीवयते मृतम् ॥ एतदंशसमुद्भूता रुद्राद्याः सर्व देवताः ॥ २१ ॥
प्रत्यक्षो भगवानीशश्चतुर्वेदेषु गीयते ॥ सर्वे देवाः कालवशाः कालकालो दिवाकरः ॥ २२ ॥
एतस्य मंडले पूज्याः सर्वे देवाः प्रयत्नतः ॥ एतदाराधने शक्तः प्रतिमां पूजयेन्नरः ॥ २३ ॥
प्रतिमातोधिकं पुण्यं ब्राह्मणस्य तु पूजने ॥ अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥२४॥

चारो वेदोंमे इनका गान है । सब देवता कालके वश हैं और सूर्यनारायण कालके भी काल हैं ॥ २२ ॥ इनके मंडलमें सब देवताओंकी पूजा यत्नपूर्वक करनी चाहिये । और जो इनके आराधनमें अशक्त हो तो मनुष्य मूर्तिकीही पूजा करै ॥ २३ ॥ और मूर्तिसे अधिक पुण्य ब्राह्मणकी पूजनसे होता है । वह ब्राह्मण विद्यावान् हो वा मूर्ख हो ब्राह्मण मेरा

शरीर है ॥ २४ ॥ कलियुगमें ब्राह्मण वहुधा शूद्रोंकासा आचरण करैंगे और वहुधा वाममार्गमें प्रीति करेंगे और संध्यास्नानसे रहित होंगे ॥ २५ ॥ ऐसे भी ब्राह्मणोंकी पूजा करै क्यौंकि वे ब्राह्मणके वीजसे उत्पन्न हैं। जैसे वड़ी दुर्गन्ध आनेसे भी गुणके कारण ॥ २६ ॥ लहसनके रसको पीलेते हैं वैसेही वड़े यत्नसे ब्राह्मणोंको भी पूजना चाहिये। रुद्रके शापसे गौयें विष्ठा खायंगी ॥२७॥ तौभी उनका पूजन करै ये दोनों पूजा लोकके फलको देनेवाली है। ब्रह्मवीजमे भी

प्रायः कलियुगे विप्राः शूद्राचारपरायणाः ॥ वाममार्गरताः प्रायः संध्यास्नानविवर्जिताः ॥२५॥
ईदृशा अपि संपूज्या ब्रह्मबीजसमुद्भवाः ॥ महादुर्गंधयुक्तोपि गुणवत्वात्सुसेव्यते ॥ २६ ॥
यथा रसो लशुनजो द्विजाः पूज्याः प्रयत्नतः ॥ रुद्रशापवशाद्गावो विष्ठाभक्षणतत्पराः ॥ २७ ॥
तथापि ताः पूजनीया लोकद्वयफलप्रदाः ॥ ब्रह्मबीजेष्वपि श्रेष्ठो कृतोपनयनस्तु यः ॥ २८ ॥
तस्माच्छ्रेष्ठतरः संध्यां यः करोति द्विजोत्तमः ॥ ततोप्यधिगुणो ज्ञेयो यः स्नानं कुरुते द्विजः ॥२९॥
उत्कृष्टस्तु ततो ज्ञेयः स्यात्स्वाचारेण संयुतः ॥ ततोप्यधीतशास्त्रस्तु वेदवेत्ता ततोपि च ॥ ३० ॥

जिसका यज्ञोपवीत होगया है वह श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ उससे अच्छा और उत्तम ब्राह्मण वह है कि जो संध्या करता है उससे भी अधिक गुणवाला उस ब्राह्मणको जाने जो स्नान करता है ॥ २९ ॥ उससे भी बहुत अच्छा वह है जो आचारसे युक्त है और उससे अधिक शास्त्र पढ़ा हुआ और उससे अधिक वेद जाननेवाला है ॥ ३० ॥ ॥

वेदके पाठीसे श्रेष्ठ वह है कि जिसका शुद्ध आचार है दूसरेके यहां भोजन नहीं करता, अपनी स्त्रीसे प्रीति करता है और क्रोधरहित है ॥ ३१ ॥ जो उत्तम ब्राह्मण जितेन्द्री होकर मध्यान्हमें संध्या करता है और अयाचित व्रत होम, और देवता तथा ब्राह्मणको पूजता है ॥ ३२ ॥ बांटकर भोजन करता है और सत्यवादी है ऐसा ब्राह्मण जहां रहता है तो उस स्थानमें कलिकालके उपद्रव नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥ इसलिये कार्तिकमें सब प्रकारसे ब्राह्मणका पूजन करै ।

वेदार्थवित्ततः श्रेष्ठः सदाचारपरायणः ॥ अपरान्नरुचिः स्वस्त्रीनिरतः क्रोधवर्जितः ॥ ३१ ॥
मध्याह्ने प्रयतः संध्यां यः करोति द्विजोत्तमः ॥ अयाचितव्रतो होमी देवब्राह्मणपूजकः ॥ ३२ ॥
विभज्याशी सत्यवादी द्विजो यत्र तु तिष्ठति ॥ कलिकालोपसर्गाद्यास्तत्स्थले न विशंति हि ॥ ३३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्तिके द्विजमर्चयेत् ॥ दरिद्रो दानपात्रं स्याद्विद्यावांस्तु विशेषतः ॥ ३४ ॥
मोक्षायैकाकिने दद्याद्दानं द्रव्यच्युताय च ॥ सपत्नीकाय धर्मार्थं विशेषेण कुटुंबिने ॥ ३५ ॥
यत्सेवाकारिणे दत्तं दत्तं वार्धुषिकाय च ॥ दासीशाय च यद्दत्तं यद्दत्तं छद्मकारिणे ॥ ३६ ॥

वह ब्राह्मण निर्धन दानपात्र, और विशेष करके विद्यावान् हो ॥ ३४ ॥ और अकेला तथा द्रव्य करके रहित हो ऐसेको मोक्षके लिये दान दे । और जिसके स्त्रीहो और अधिक कुटुंब हो उसे धर्मकें लिये दान दे ॥ ३५ ॥ और सेवा करने-वालेको, व्याजखोरको, वा दासीसे भोग करनेवालेको, छलीको, ॥ ३६ ॥ ॥ ॥

तीर्थमें दान लेनेवालेको तथा तीर्थमे भोजन करनेवालेको, धनुषधारीको, प्रेतभोजीको ॥ ३७ ॥ वैद्यक करनेवालेको, ग्रहगोचर बतानेवालेको जो दान दिया जाता है तो दानी मनुष्य नरकको जाता है ॥ ३८ ॥ और हे खगोत्तम ! सदा पत्नीसहित ब्राह्मणका पूजन करै और जो ब्राह्मण न मिलै तो सुन्दर कृष्णा गौओंका पूजन करै ॥ ३९ ॥ गौओंमे कपिला श्रेष्ठ है और उसके अभावमे पीली गौका पूजन करै। और उसके अभावमें स्वेतका और उसके अभा-

तीर्थप्रतिग्राहिणे च यद्दत्तं तीर्थभोजिने ॥ धनुर्धराय यद्दत्तं दत्तं यत्प्रेतभोजिने ॥ ३७ ॥
वैद्यविद्याजीविने च तथा नक्षत्रसूचिने ॥ ईदृशे दीयते दानं येनासौ नरकं व्रजेत् ॥ ३८ ॥
सर्वत्र पूजयेद्विप्रं सपत्नीकं खगोत्तम ॥ विप्राभावे पूजनीया गावः कृष्णा मनोहराः ॥ ३९ ॥
कपिला गोषु च श्रेष्ठा तदभावे तु पिंगला ॥ तदभावे सिता तस्या अभावे च सितेतरा ॥ ४० ॥
तदभावे च या काचिद्दोग्ध्री वत्सेन संयुता ॥ विष्णोर्मूर्तिर्जंगमतः स्थावरा तु प्रशस्यते ॥४१॥
शूद्रस्थापितमूर्तीनां नमस्कारं करोति यः ॥ पितृभिर्निरयं याति दशपूर्वैर्दशापरैः ॥ ४२ ॥

वमें भूरीका पूजन करै ॥ ४० ॥ जो वह भी न हो तो दूध देनेवाली वछड़ेसहित चाहै जैसी गौहो उसका पूजन करै। विष्णुभगवान्की चलायमान मूर्तिसे स्थिर मूर्तिकी अधिक महिमा है ॥ ४१ ॥ जो कोई शूद्रसे स्थापित कीहुई मूर्तिको नमस्कार करता है तो वह अपने दश पूर्वके और दश पीछेके पितरोंसहित नरकको जाता है ॥ ४२ ॥ ॥

शूद्रसे पूजीहुई मूर्तिके स्पर्श करनेसे सात कुलतकका नाश होजाता है इस लिये विचारकर जिसको ब्राह्मणोंने स्थापित कीहो उसी मूर्तिका पूजन करै ॥ ४३ ॥ जिस मूर्तिको देवताओंने स्थापन किया है वह भुक्तिमुक्तिकी देनेवाली है। और जो मूर्ति नहीं मिलै तो वड़ अथवा पीपलकी पूजा करै। क्योंकि पीपल विष्णुका और वड़ महादेवजीका रूप है ॥ ४४ ॥ कार्तिकमें जो नीच मनुष्य, तुलसीका शाक वा तांवूल इनको जानकर वा वेजाने खा लेता

शूद्रार्चितस्य संस्पर्शाद्दहेदासप्तमं कुलं ॥ तस्माद्विचार्य विप्रैर्या स्थापिता तां समर्चयेत् ॥ ४३ ॥
ततोपि या देवताभिः कृता सा भुक्तिमुक्तिदा ॥ मूर्त्यभावे पूजनीयोऽश्वत्थो वाथ वटोथवा ॥
अश्वत्थरूपी विष्णुः स्याद्वटरूपी शिवो यतः ॥४४॥ कार्तिके तुलसीशाकं तांवूलं वा नराधमः ॥
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि भुंजानो निरयं व्रजेत् ॥४५॥ धात्रीछायातले येन सकृद्भुक्तं तु कार्तिके ॥
दंपतीभोजनं दत्तमन्नदोषात्प्रमुच्यते ॥ ४६ ॥ संपूर्णकार्तिके यस्तु संपूज्यामलकीं शुभाम् ॥
राधादामोदरप्रीत्यै भोजनीयौ च दंपती ॥ ४७ ॥ ॥ ॥

है वह नरकमें जाता है ॥ ४५ ॥ कार्तिकमें आंवलेकी छायाके नीचे जिसने एकवार भोजन किया और जोड़ेको जिमाया वह अन्नके दोपसे छूट जाता है ॥ ४६ ॥ जो कार्तिकभर सुन्दर आमलेके वृक्षकी पूजा करके राधा दामोदरके प्रसन्नताके लिये जोड़ा जिमाता है ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥

और फिर आप भोजन करता है उसकी लक्ष्मी नाश नहीं होती है। शालग्रामकी शिलाके चक्रमें भगवान् नित्य वास

पश्चात्स्वयं तु भुंजीत न श्रीस्तस्य क्षयं व्रजेत् ॥ शालग्रामशिलाचक्रे नित्यं संनिहितो हरिः ॥ ४८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शालग्रामं प्रपूजयेत् ॥ ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

करते हैं ॥ ४८ ॥ इसलिये सब प्रकारसे शालग्रामकी पूजा करै ॥ ४९ ॥ ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥



॥ ऋषि बोले ॥ गौओंने शिवजीका क्या किया था और किस कारण उन्होंनें उनको श्राप दिया सो हे वालखिल्या ! हमें इसके सुननेकी वड़ी लालसा है सो कहिये ॥ १ ॥ वालखिल्या बोले। एक समय ब्रह्माजी हंसपर सवार होकर अपनी बनाई चार प्रकारकी सृष्टिका कौतुक देखनेकी इच्छासे आये ॥ २ ॥ और देखा कि सुन्दर हिमालय पर्वतपर

ऋषय ऊचुः ॥ शिवस्य किं कृतं गोभिः शप्तास्ता केन हेतुना ॥ उत्कंठा जायतेस्माकं वालखिल्या ब्रुवंतु तत् ॥ १ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ एकदाहं समारुह्य विधाता समुपागतः ॥ कृत्वा चतुर्विधां सृष्टिं तत्कौतुकसमुत्सकः ॥ २ ॥ पश्यन् हिमालयं दिव्यं नानामृगसमन्वितम् ॥ गंगादिकसरिद्भिश्च प्लाव्यमानमितस्ततः ॥ ३ ॥ नानाऋषिगणाकीर्णं सिद्धगंधर्वसेवितम् ॥ पक्षिणां कलनिह्रादैर्मोहयंतं श्रुतिद्वयम् ॥ ४ ॥ नानापक्षिगणाकीर्णमगम्यं च क्वचित्क्वचित् ॥ क्वचिद्रुद्रश्रियं बिभ्रद्धिमेन भरितं क्वचित् ॥ ५ ॥ मेघसंसर्गतः श्यामं छायया मेघजातया ॥ पश्यन्सकौतुकं दिव्यं गंगाद्वारमुपागमत् ॥ ६ ॥ ॥ ॥

नाना प्रकारके मृग फिर रहे हैं और गंगा आदि नदियोंसे वह पर्वत इधर उधरसे जलपूर्ण होरहा है ॥ ३ ॥ वह अनेक प्रकारके पक्षियोंसे भराहुआ कहीं २ वड़ा ऊंचा नीचा; कही वड़ी भयंकर शोभाको धारण कियें और कहीं वरफसे भरा हुआ है ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

वहां उन्होंने विष्णुभक्त और श्रेष्ठ मत्र ऋषियोंको कार्तिकस्नानमें लगे हुये और राधादामोदरकी पूजा करते हुये देखा ॥ ७ ॥ और हे वासुदेव, हे जगन्नाथ ! हे हरे ! हे विष्णु ! हे जनार्दन ! इत्यादि नाम कहते हुये उन्हें देखकर बड़े कोपित हुये ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले ॥ यहा तुम्हारे पास यह दुष्ट बुद्धि कहांसे आई ! मुझ पितामहको छोड़ तुम किस

तत्र पश्यन् ऋषीन्सर्वान्कार्तिकस्नानतत्परान् ॥ विष्णुभक्तिपरान् श्रेष्ठान् राधादामोदरार्चकान् ॥ ७ ॥ वासुदेव जगन्नाथ हरे विष्णो जनार्दन ॥ इत्यादिनाम ब्रुवतो दृष्ट्वा कोपसमन्वितः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इह दुर्बुद्धिता कस्मात् भवतां समुपस्थिता ॥ पितामहं परित्यज्य कोत्र देव उपास्यते ॥ ९ ॥ अहं सर्वस्य जगतः कर्ता मां त्यज्य भूतले ॥ आराध्यते तद्वध्वं नो चेच्छापं ददाम्यहम् ॥ १० ॥ वसुंधरा भवंतश्च नाशनीया मया ध्रुवम् ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा त्रस्तास्ते ऋषिसत्तमाः ॥ ११ ॥ ध्यायंतश्चेतसा विष्णुं प्रत्यक्षोभूज्जनार्दनः ॥ विष्णुरुवाच ॥ निमित्तमात्रं त्वं ब्रह्मन् विश्वस्यास्य तु पालकः ॥ १२ ॥

देवताकी पूजा कर रहेहो ॥ ९ ॥ मैं सब जगतका कर्ताहूं पृथ्वीतलपर मुझे छोड़कर जिसकी आराधना कर रहेहो उसे बताओ नहीं तो मैं तुमको शाप देताहूं ॥ १० ॥ और पृथ्वीको और तुम सबको मैं नाश करदूंगा इसमें संदेह नही ॥ वालखिल्या बोले ॥ ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर वहां जितने श्रेष्ठ ऋषि थे ॥ ११ ॥ उन्होंने ज्योंही चित्तसे

विष्णुभगवान्का ध्यान किया सोही जनार्दनजी प्रकट होगये ॥ विष्णु बोले ॥ हे ब्रह्माजी ! तुम तो निमित्तमात्र हो इस संसारके पालक तो नारायण हैं ॥ १२ ॥ सो यहां कार्तिकमे ऋषिजन सदा उनकाही पूजन किया करते है ॥ ब्रह्माजी बोले ॥ मै पितामह संसारका साक्षात् कर्ता और जगतमें बड़ाहूं ॥ १३ ॥ मैंही पूज्यहूं सबलोक और वेद यही मानते हैं ॥ वालखिल्या बोले ॥ जब उन दोनोंका झगड़ा होने लगा और दोनोंमेंसे कोई नहीं हारनेलगा ॥ १४ ॥

नारायणः सोत्र विप्रैः पूज्यते कार्तिके सदा ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहं पितामहः साक्षाद्विश्वकर्त्ता जगद्गुरुः ॥ १३ ॥ पूज्योस्मि सर्वलोकानां वेदानामिति संमतम् ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ एवं तयोर्विवदतोर्न कस्यापि पराजयः ॥ १४ ॥ तदा विष्णुरुवाचेदं ब्रह्मन् शृणु वचो मम ॥ आवयोर्यच्च माहात्म्यं सामर्थ्यं यत्तदावयोः ॥ १५ ॥ महेशो वेत्ति तत्त्वं तत्र न्यायोऽस्तु चावयोः ॥ ब्रह्मणा तु तथेत्युक्त्वा जग्मतुः काशिकां प्रति ॥ १६ ॥ प्रणिपत्य महादेवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवाकर्णय विश्वस्य कर्ताहं च पितामहः ॥ १७ ॥ ॥

तब विष्णु यह बोले कि हे ब्रह्माजी ! मेरी बात सुनों कि मुझमे और आपमें जो सामर्थ्य है और हम दोनोंका जो माहात्म्य है ॥ १५ ॥ उसके भेदको शिवजी जानते हैं उनके सामने हमारा तुह्मारा न्याय हो जाय । यह कहकर विष्णुभगवान् ब्रह्माजीके साथ काशीमें गये ॥ १६ ॥ और ब्रह्माजी शिवजीको नमस्कार करके यह वचन बोले ॥

ब्रह्माजी बोले ॥ हे देव ! सुनिये संसारका कर्ता और पितामह मैं हूं ॥ १७ ॥ और मेरी आज्ञापर चलनेवाले विष्णु कैसे पूज्य होंगे ॥ विष्णु बोले ॥ हे देव ! हे देव ! हे महादेव ! तुम सदासे धर्मके आसनपर बैठेहो ॥ १८ ॥ हम दोनोंमेंसे कौनसा श्रेष्ठ है हे जगतके स्वामी ! सो सत्य २ कहिये ॥ शिवजी बोले ॥ यह मेरा महालिंग कितना ऊंचेको और कितना नीचेको है ॥ १९ ॥ जो इसके अंतको जानलेगा वह संसारमें पूज्य होगा । इसलिये हे ब्रह्माजी ! तुम

मदाज्ञानुचरो विष्णुः कथं पूज्यो भविष्यति ॥ विष्णुरुवाच ॥ देवदेव महादेव सदा धर्मासनस्थित ॥ १८ ॥ कः श्रेष्ठ आवयोर्मध्ये सत्यं ब्रूहि जगत्प्रभो ॥ शिव उवाच ॥ एतन्मम महालिंगं कियदूर्ध्वं तले कियत् ॥ १९ ॥ यो ज्ञास्यत्येतदंतं स लोके पूज्यो भविष्यति ॥ तस्मादेकत्र याहि त्वं ब्रह्मन्विष्णो त्वमेकतः ॥ २० ॥ एतद्वचः समाकर्ण्य वेधाश्चोपरि संययौ ॥ अधस्ताच्च गतो विष्णुर्ययौ पंचशतं समाः ॥ २१ ॥ विश्रांतखेदखिन्नश्च न प्राप्तोंतस्तु तस्य च ॥ पुनः परावृत्य ययौ प्रणमद्रुद्रमादरात् ॥ २२ ॥ ॥ ॥

एक ओर जाओ और हे भगवन् ! तुम भी एक ओर जाओ ॥ २० ॥ यह वचन सुनकर ब्रह्माजी ऊपर गये और विष्णुभगवान् नीचे गये और पांचसौ वर्षतक ॥ २१ ॥ जाते २ बड़े थक गये और दुःखसे व्याकुल हुये परंतु जब शिवलिंगका अंत नहीं मिला । तब फिर लौट आकर बड़े आदरसे शिवजीको प्रणाम किया ॥ २२ ॥ ॥

शिवजी बोले ॥ हे मधुसूदन ! कहिये लिंगका अंत किस प्रकार है ! कितने दिनमें तुम वहां पहुंचे और वहां कैसा चिन्ह है ॥ २३ ॥ विष्णु बोले ॥ हे भगवन् ! मैं दुःखसे विकल होगया और ५०० वर्ष वीतगये । सात पातालोंको और ब्रह्मांड गोलकको फोड़कर ॥ २४ ॥ कि जहां सूर्यकी धूप भी नहीं पहुंचती उससे भी आगे मै चलागया परंतु

रुद्र उवाच ॥ कथमंतोस्ति लिंगस्य कथ्यतां मधुसूदन ॥ कियद्भिर्दिवसैः प्राप्तः किं चिह्नं तत्र विद्यते ॥ २३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ खेदखिन्नोस्मि भगवन् गताः पंचशतं समाः ॥ सप्तपातालमुद्भिद्य तथा ब्रह्मांडगोलकम् ॥ २४ ॥ भास्करस्यातपो नास्ति ततोप्यग्रे गतोस्म्यहम् ॥ तेजोरूपस्य लिंगस्य पारः प्राप्तो मया न तु ॥ २५ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य तूष्णीं भूय व्यवस्थितः ॥ ब्रह्मा वर्षसहस्राणि ययावूर्ध्वं सुदुःखितः ॥ २६ ॥ विचारयन्मनस्येव किं कर्त्तव्यं मयाऽधुना ॥ विष्णुनांतो यदा प्राप्तस्तदा श्रेष्ठो भविष्यति ॥ २७ ॥ न प्राप्तश्चेत्तदा तुल्यौ जायेतां नौ शिवाज्ञया ॥ तस्माच्छद्म करिष्यामि यथा स्यां लोकपूजितः ॥ २८ ॥ ॥

मैंने तेज रूप लिंगका पार नहीं पाया ॥ २५ ॥ उनका यह वचन सुनकर शिवजी चुपके होकर वैठे रहे । और उधर ब्रह्माजी एक हजार वर्षमें ऊपर पहुंचे और वड़े दुखीहो ॥ २६ ॥ मनमें विचारने लगे कि मुझे अव क्या करना चाहिये । जो विष्णुभगवान्ने अंत पा लिया होगा तो वे श्रेष्ठ होजांयगे ॥ २७ ॥ और जो नहीं पाया होगा तो शिव-

जीकी आज्ञासे बराबर रहेंगे । इसलिये मैं छल करूंगा कि जिसमें मैं संसारमें पूज्य होजाऊं ॥ २८ ॥ मनमें ऐसा निश्चय करके कामधेनुसे बोले । हे कामधेनु ! मै ब्रह्माहूं शब्दसे मेरी सहायता कर ॥ २९ ॥ तुझे सब प्रकारसे मेरी सहायता करनी चाहिये नहीं तो मैं शाप देताहूं । और हे कल्याणी ! यहां मेरी तूही सहायक होगी ॥ ३० ॥ फिर मैं शीघ्र तेरे मनोरथोंको पूरा करूंगा ॥ धेनु बोली ॥ आप जो कुछ आज्ञा करते हैं वह सब मैं करूंगी ॥ ३१ ॥ मैं

इति निश्चित्य मनसा कामधेनुमभाषत ॥ कामधेनो विधाताहं साहाय्यं मम शब्दतः ॥ २९ ॥
त्वया कार्यं सर्वथैव नो चेच्छापं ददाम्यहम् ॥ अत्र साहाय्यकर्त्री च त्वं भविष्यसि शोभने ॥३०॥
तदा मनोरथान्पूर्णांस्ते करिष्यामि सत्वरम् ॥ धेनुरुवाच ॥ भवान्यदा ज्ञापयति तत्सर्वं करवाण्यहम्
॥ ३१ ॥ शिवाग्रे कथयिष्यामि लिंगांतादागतं त्वया ॥ ततो गां तां समादाय विधाता स ययौ पुनः
॥ ३२ ॥ ददर्श मध्यमार्गेसौ केतकं कुसुमान्वितं ॥ उवाच वचनं साधु ब्रह्मा तं केतकं प्रति ॥ ३३ ॥
पुष्पोत्तमास्तु कल्याणं साहाय्यं क्रियतां मम ॥ शिवाग्रे कथ्यतां धाता लिंगस्यांतं गतस्तदा ॥३४॥

शिवजीके आगे कहदूंगी कि तुम लिंगके अंततक आयेहो । फिर वे विधाता उस गायको लेकर गये ॥ ३२ ॥ और इन विधाताने मार्गके बीचमे पुष्पोंसे युक्त केतकीके वृक्षको देखा और ब्रह्माने उस केतकीके वृक्षसे सुन्दर वचन कहा ॥ ३३ ॥ हे पुष्पोत्तम ! तेरा भला होय तू मेरी सहायता कर कि शिवजीके आगे कह दे कि ब्रह्मा लिंगके अंततक गये ॥३४॥

ब्रह्माजीके इस वचनको सुनकर केतकीका वृक्ष भी साथ होलिया । फिर ब्रह्माजीने शिवजीके आगे जाकर और हँसकर कहा ॥ ३५ ॥ ब्रह्मा बोले ॥ मैंने एक हजार वर्षमे तुह्मारे सब लिंगांतको देखलिया और कोई देखनेको समर्थ नहीं था मेरा बनाया था इसी कारण मैंने देखलिया ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर क्रोधके मारे शिवजीके होठ फड़कनेलगे पर अंतमें क्रोधको रोककर शिवजी यह कहनेलगे ॥ ३७ ॥ शिवजी बोले ॥ हे ब्रह्माजी ! विना साक्षीके

इति श्रुत्वा ब्रह्मवाक्यं केतकोपि समाययौ ॥ ततो ब्रह्मा शिवपुरो गत्वा हास्यं चकार ह ॥ ३५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सहस्रवर्षैर्लिंगांतो मया दृष्टस्तवाखिलः ॥ न शक्तो वीक्षितुं चान्यः स्वकृतत्वान्निरीक्षितः ॥ ३६ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य क्रोधप्रस्फुरिताधरः ॥ अंतः क्रोधं समासाद्य शिवो वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ शिव उवाच ॥ विना तु साक्षिणं ब्रह्मन्नन्यायो वदतो भवेत् ॥ आनीयतां विश्वदर्शी साक्षी विश्वासकारकः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एषा धेनुः केतकोयं उभौ तत्रैव संस्थितौ ॥ प्रष्टव्यौ तौ महादेव त्वया शपथपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ ॥

कहनेवालेका अन्याय होता है इसलिये विश्वका देखनेवाला और विश्वास करानेवाला साक्षी लाओ ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले । ये गाय और केतकीका वृक्ष दोनों यहां खड़े हैं सो हे महादेव ! तुम इन दोनोंसे सौगंद दिलाकर पूछ लीजिये ॥ ३९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ शिवजी बोले ॥ कृतघ्नियोंको जो पाप होता है वह तुम्हारे सिर पड़े जो तुम झूठ बोलो तो कि इन ब्रह्माने लिंगका अंत देखा है या नहीं ॥ ४० ॥ गौ बोली ॥ ब्रह्माजी तुम्हारे लिंगके अंततक गये और उनके ऊपर कुछ नहीं था और फिर लौटकर आये हैं और मैंने भी वह देखा ॥ ४१ ॥ केतक वृक्षने कहा ॥ मैं तुम्हारे लिंगके ऊपर रहताहूं मैंने

शिव उवाच ॥ कृतघ्नानां तु यत्पापं युवयोर्मस्तके पतेत् ॥ यद्यसत्यं प्रभाषेत लिंगांतो वीक्षितोमुना ॥ ४० ॥ धेनुरुवाच ॥ लिंगांतं ते गतो ब्रह्मा यदूर्ध्वं नास्ति किंचन ॥ ततः परावृत्य ययौ मयैतच्च विलोकितम् ॥ ४१ ॥ केतक उवाच ॥ त्वल्लिंगोर्ध्वं निवसता मया दृष्टः पितामहः ॥ ततोप्यग्रे गतः स्वेयं परावृत्य समागतः ॥ ४२ ॥ ततः परावृत्य ययौ ममैतच्च विलोकितम् ॥ शिव उवाच ॥ मिथ्या ब्रूते योऽधमो मां विष्ठा पतति तन्मुखे ॥ ४३ ॥ अपवित्रं मुखं तस्मात्तद्भविष्यत्यसंशयम् ॥ गवामंगेषु तिष्ठंति सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ४४ ॥ पुच्छेषु सर्वतीर्थानि सर्वधर्माश्च मस्तके ॥ मुखेषु सर्वपापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ ४५ ॥ ॥

ब्रह्माजीको देखा । ये उससे भी आगे आकाशमें गये और वहांसे लौटकर आये ॥ ४२ ॥ फिर वहांसे लौटकर यहां आये यह मैंने देखा ॥ शिवजी बोले ॥ जो नीच मुझसे झूठ बोले उसके मुखमें विष्ठा पड़े ॥ ४३ ॥ इसलिये तुम्हारा मुख अपवित्र होगा इसमें संदेह नहीं है । गौओंके अंगमें इन्द्रसहित सब देवता निवास करते हैं ॥ ४४ ॥ पुच्छोंमें सब तीर्थ

और मस्तकमें सब धर्म रहते हैं। और मुखमें ब्रह्महत्याके समान सब पाप रहते हैं ॥ ४५ ॥ और हे केतक वृक्ष! सुन जो मनुष्य तेरे पुष्पोंसे मेरी पूजा करैगा वह लक्ष्मी और संततिसे हीन होगा और रौरव नरकको जायगा ॥ ४६ ॥ और हे ब्रह्माजी! सुनो—जो मनुष्य तुह्मैं पूजैगा वह शीघ्र कोढ़ी, दरिद्री होजायगा और उसकी संतति मर जायगी ॥ ४७ ॥ हे विष्णु! हे महाभाग! सुनो, इस कार्तिकमें तुम जीते इसलिये तुह्मारी प्रीतिके लिये मनुष्य जो कुछ करैंगे

शृणु केतक ते पुष्पैर्नरो मामर्चयिष्यति ॥ लक्ष्मीसंततिहीनोसौ रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ४६ ॥ शृणु ब्रह्मन्नरो यस्तु जनस्त्वां पूजयिष्यति ॥ सद्यो भवत्यसौ कुष्ठी दरिद्रो मृतसंततिः ॥ ४७॥ शृणु विष्णो महाभाग कार्तिकेऽस्मिन् जितं त्वया ॥ तस्मात्त्वत्प्रीतये लोकैः कृतं भवति चाक्षयम् ॥ ४८ ॥ ब्रह्मांशकसमुद्भूते पालाशे यस्तु भोजनम् ॥ कुर्यात्कार्त्तिकमासेसौ विष्णुलोकं प्रयास्यति ॥ ४९ ॥ गोशापकारणं प्रोक्तमित्थं किं कथ्यतामथ ॥ ५० ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये गोशापकथनं नाम तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

वह अक्षय होगा ॥ ४८ ॥ और कार्तिकमासमें जो कोई ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न पालाशपर भोजन करै वह विष्णुलोकमें जायगा ॥ ४९ ॥ यह गौके शापका कारण इस प्रकार कहा गया अब क्या कहैं सो कहो ॥ ५० ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये गोशापकथनंनाम तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥

॥ ऋषि बोले ॥ ब्रह्माजी पलाशरूप महादेवजी वटरूप और विष्णु पीपलरूप कैसे होगये यह कथा कहिये ॥ १ ॥ वालखिल्या बोले ॥ ब्रह्माजीने पहिले इन्द्र सहित सब देवताओंको रचा फिर उन सबने ब्रह्माजीसे यह बात कही कि ॥ २ ॥ हे ब्रह्माजी ! सब देवताओंमें सबमें बड़े महादेवजी हैं सो हे देव ! हम सब आपके साथ उनके दर्शनको चलें

॥ ऋषय ऊचुः ॥ पलाशत्वं कथं जातं ब्रह्मणः शंकरस्य च ॥ वटत्वं च तथा विष्णोः पिप्पलत्वं ब्रुवंतु तत् ॥१॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ ब्रह्मणा च पुरा सृष्टाः सर्वे देवाः सवासवाः ॥ मिलित्वा सर्व एवैते ब्रह्माणं वाक्यमब्रुवन् ॥ २ ॥ ब्रह्मन् सर्वाधिको रुद्रः सर्वदेवेषु पठ्यते ॥ कर्तुं तद्दर्शनं देव गच्छामो भवता सह ॥ ३ ॥ इतींद्रादिवचः श्रुत्वा सर्वदेवपुरोगमः ॥ ब्रह्मा कैलासमगमन्नानादेवगणैर्वृतः ॥ ४ ॥ शिवद्वारं समासाद्य देवाः सर्वेपि संस्थिताः ॥ न दृश्यते द्वारपालः शिवश्चाभ्यंतरे स्थितः ॥ ५ ॥ गंतव्यं वा न गंतव्यमस्माभिः शिवसन्निधौ ॥ परावृत्याथवा स्वस्य स्थाने गंतव्यमेव वा ॥ ६ ॥ ॥ ॥

॥ ३ ॥ इन्द्र आदिका यह वचन सुनकर सब देवताओंके मुखिया होकर ब्रह्माजी कैलाशपर गये कि जो अनेक देवोंसे भरा था ॥ ४ ॥ और शिवजीके द्वारपर जाकर सब देवता खड़े होगये, वहां द्वारपाल नहीं दीखता था और शिवजी भीतर बैठे थे ॥ ५ ॥ शिवजीके पास हमें जाना चाहिये वा नहीं जाना चाहिये अथवा लौटकर अपने ही स्थानको

चलना चाहिये ॥ ६ ॥ इस प्रकार विचार करते हुये उनको सामने श्रेष्ठ नारदमुनि दीखे सोही सब देवताओंने उनको उत्तम रीतिसे प्रणामकर कहा ॥ ७ ॥ देवता बोले ॥ हे वेदज्ञाताओंमें श्रेष्ठमुनिजी ! हमारे सुन्दर प्रश्नका उत्तर दीजिये कि महादेवजी क्या कर रहे हैं और उनके पास भीतर जाना चाहिये वा नहीं ॥ ८ ॥ नारदजी बोले । हे देवताओ ! तुम खोटे चन्द्रमामें घरसे चलेहो इसलिये, तुमको कोई बड़ा भारी विघ्न होगा ॥ ९ ॥ तुमने जो यह प्रश्न किया कि

एवं चिंतयमानैस्तैर्नारदो मुनिसत्तमः ॥ पुरो दृष्टो देववृंदैस्तं प्रणम्योचुरुत्तमम् ॥ ७ ॥ देवा ऊचुः ॥ मुने वेदविदां श्रेष्ठ ब्रूहि प्रश्नं सुशोभनम् ॥ किं करोति महादेवो गंतव्यं वा न वांतरे ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ चंद्रनाशदशायां तु देवाः संप्रस्थिता गृहात् ॥ तस्मात्कश्चिन्महाविघ्नो भवतां संभविष्यति ॥ ९ ॥ किं करोति शिवश्चेति प्रश्ने रतिदशा विभोः ॥ तस्मात्संभोगकार्येयं वर्तते त्रिपुरांतकः ॥ १० ॥ इंद्र उवाच ॥ सर्वेषामेव दुःखानां नाशकर्ता दिवस्पतिः ॥ मय्यागते कथं नाशो देवतानां भविष्यति ॥ ११ ॥ ॥

शिवजी क्या कर रहे हैं सो प्रश्नमें शिव भगवान्की रति दशा आती है इसलिये त्रिपुरांतक शिवजी इस समय संभोग कार्यमें लग रहे हैं ॥ १० ॥ इन्द्र बोले ॥ सब दुःखोंका नाश कर्ता तो इन्द्र है सो मेरे आनेपर देवताओंका कैसे नाश होगा ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मुनितो देवताओंके डरानेके लिये वकवाद करते हैं । इन्द्रका यह वचन सुनकर मुनि बड़े व्याकुल हुये कि ॥ १२ ॥ आज कैसे मेरा वचन इन्द्रके सामने सच्चा होगा । जो आज मेरा वचन शीघ्र सच्चा होगा तो ॥ १३ ॥ राधा दामोदरके प्रसन्नार्थ कार्तिकका व्रत करूंगा । मनमें ऐसा विचारकर मुनीश्वर चुपके होगये ॥ १४ ॥ इन्द्र भी देवताओंसे विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये फिर इन्द्र यह बोले कि हे अग्नि ! तुम मेरा वचन सुनो ॥ १५ ॥ तुम

विभीषणाय देवानां वल्गनं कुरुते मुनिः ॥ इतींद्रस्य वचः श्रुत्वा व्याकुलोभून्मुनिस्तदा ॥ १२ ॥
कथं मद्वचनं सत्यं भविष्यत्यद्य वज्रिणि ॥ अद्य मद्वचनं शीघ्रं यदि सत्यं भविष्यति ॥ १३ ॥
राधादामोदरमुदे करिष्ये कार्तिकव्रतम् ॥ एवं संचिंत्य मनसा तूष्णींभूतो मुनीश्वरः ॥ १४ ॥
इंद्रो विचारयद्देवैः किमिदानीं विधीयतां ॥ तत इंद्र उवाचेदं वह्ने मद्वचनं शृणु ॥ १५ ॥
गृहीत्वा विप्ररूपं त्वं शिवस्याभ्यंतरे व्रज ॥ यदि प्रसंगोस्त्यस्माकं तदा वार्ता निगद्यताम् ॥१६॥
यदि नास्ति प्रसंगश्चेद्याचकत्वेन याहि च ॥ अवध्यत्वादताड्यत्वाद्भिक्षुकत्वेन तं व्रज ॥ १७ ॥

ब्राह्मणका रूप धरके शिवजीके पास भीतर जाओ और जो हमारा प्रसंग चलै तो बात कह देना ॥ १६ ॥ और जो प्रसंग न चलै तो भिक्षुक बनजाना क्योंकि भिक्षुकको न कोई मारता है न पीड़ा देता है सो तुम भिक्षुकही बन-कर उनके पास जाओ ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इन्द्रका वचन सुनकर अग्निने वैसाही किया। और भीतर जाकर शिवजीको पार्वतीजीके साथ रमण करते देखा ॥ १८ ॥ और पार्वतीजीने भी अग्निरूप भिक्षुकको देखलिया और उन्होंने लजाकर भोग छोड़ दिया और पूछनेलगीं कि तुम कौनहो कौनहो तब अग्निने कहा कि मै भूखा भिखारीहूं ॥ १९ ॥ मैं बूढ़ा अंधा और गरीब हूं मुझे भोजन दो। पार्वतीजीने यह जानकर कि इसने कुछ नहीं देखा उसे भोजन कराया ॥ २० ॥ और वह अग्नि भी खाकर समाचार

इति देवेंद्रवचनं श्रुत्वा वह्निस्तथाकरोत् ॥ अभ्यंतरे ददर्शेशं शिवया सह संगतं ॥ १८ ॥
शिवयापि च दृष्टः स लज्जिता भोगमत्यजत् ॥ कोसि कोसीति संपृष्टो भिक्षुकोहं क्षुधातुरः ॥१९॥
वृद्धोस्म्यंधोस्मि दीनोस्मि भोजनं दीयतां मम ॥ तेनादृष्टमिति ज्ञात्वा पार्वती तमभोजयत् ॥ २० ॥
सोपि भुक्त्वा समाचारं वक्तुं संप्रस्थितो वहिः ॥ तस्मिन्नेव क्षणे गुप्तो नारदः पार्वतीं ययौ ॥२१॥
शिरो निधाय पार्वत्याः पादयोः स रुरोद ह ॥ अहो बालक किं जातं तच्छीघ्रमभिधीयताम् ॥२२॥
करोमि निष्कृतिं तस्य साध्यासाध्यस्य वान्यथा ॥ मातुर्वक्तुं न शक्नोमि ह्युपहासस्य कारणम् ॥२३॥

कहनेके लिये बाहर निकल आये। उसी समय नारदजी छुपकर पार्वतीजीके पास गये ॥ २१ ॥ और पार्वतीके चरणोंमें शिरधरकर वे रोदिये। पार्वतीजीने पूछा कि हे बालक! क्या हुआ सो शीघ्र कहो ॥ २२ ॥ तो मै उस साध्यवा असाध्य जैसाहो उसका उपाय करूं। नारद बोले कि मैं उस हंसीकी बातको मातासे नहीं कह सक्ताहूं ॥ २३ ॥ ॥

जैसा इन्द्र आदि देवताओंने किया है वैसा कौन दूसरा करैगा । उनका यह वचन सुनकर पार्वतीजीने उनसे वारंवार पूछा ॥ २४ ॥ फिर उन मुनीश्वरने दौंनो हाथोंसे दौंनो नेत्र तो बंदकर लिये और वह मूर्ख मुनि गद २ अक्षरोंमे यह नीच वचन बोले कि ॥ २५ ॥ इस इन्द्रने तुम दोनोंके भोगको देवताओंसे वर्णन किया है और तुम दोनोंकी निन्दा करी है उसे सुनकर मैं दुखी हुआ हूं ॥ २६ ॥ उसने तुह्मारा भोग छुडानेके लिये ब्राह्मणका भेस बनाकर अग्निको भेजा था

कृतं यथेंद्रादिदेवैस्तथाकोन्यः करिष्यति ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य पुनः पुनरपृच्छत ॥ २४ ॥
मुद्रयित्वा ततो नेत्रे कराभ्यां स मुनीश्वरः ॥ उवाच वचनं नीचं मूर्खोसौ गद्गदाक्षरं ॥ २५ ॥
इंद्रोयं युवयोर्भोगं देवताभ्यो ह्यवर्णयत् ॥ युवयोश्च कृता निंदा तां श्रुत्वा दुःखितोस्म्यहं ॥२६॥
भोगविच्छित्तये वह्निः प्रेषितो द्विजरूपकः ॥ अथवा किमनेनापि कथनेन ममांबिके ॥ २७ ॥
जगन्मातासि देवि त्वं का ते स्यादुपहास्यता ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा पार्वती क्रुद्धमानसा ॥२८॥
स्फुरदोष्ठा रक्तनेत्रा दृष्ट्वा तां नारदो ययौ ॥ गत्वा देवानुवाचेदं संभोगाद्विरतो हरः ॥ २९ ॥

नहीं तो हे पार्वतीजी ! मुझे इसके कहनेकी क्या पड़ीथी ॥ २७ ॥ हे देवी ! तुम जगतकी माताहो तुह्मारी हंसी क्या करना । नारदजीका यह वचन सुनकर पार्वतीजी मनमें बड़ी क्रोधित हुई ॥ २८ ॥ होठ फड़कने लगे, नेत्र लाल होगये उन्है ऐसा देख नारदजी चल दिये । और जाकर देवताओंसे यह बोले कि महादेवजी संभोगकर चुके ॥ २९ ॥ ॥

यह दूरसे देख लिया है सो दर्शनके लिये चलो । अग्नि और मुनिका वचन सुनकर देवगण सहित इन्द्र वहां गये ॥ ३० ॥ और महादेवजीको प्रणाम करके हाथ जोड़ खड़े होगये । इन्द्रको ऐसे खड़ा देख पार्वतीजी यह वचन बोलीं ॥ ३१ ॥ हे अहिल्याजार ! हे दुष्ट ! हे सहस्रभग ! हे इन्द्र ! तैंने आज मेरी हंसी उड़ाई इसलिये तू उसका फल पावेगा ॥ ३२ ॥ देवताओंकी जितनी ज्ञातियां हैं वे सब स्त्रीके सुखोंको नहीं जानते हुये अपनी २ स्त्रियों समेत वृक्ष

आगम्यतां दर्शनार्थं दूरतोसौ विलोकितः ॥ वह्नेर्मुनेर्वचः श्रुत्वा देवेंद्रः सगणो ययौ ॥ ३० ॥
प्रणिपत्य महादेवं कृतांजलिपुटोभवत् ॥ दृष्ट्वा तथाविधं शक्रं पार्वती वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥
अहल्याजार दुष्टात्मन् सहस्रभग वासव ॥ उपहासः कृतो मेद्य फलं तस्य समाप्नुहि ॥ ३२ ॥
यावंत्यः संति देवानां ज्ञातयः सर्व एव ते ॥ अजानंतः स्त्रीसुखानि शाखिनः संतु सस्त्रियः ॥ ३३ ॥
इति देवीवचः श्रुत्वा कंपिताः सर्वदेवताः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तुष्टुवुर्जगदंबिकां ॥ ३४ ॥
ततो देवी प्रसन्नाभूद्देवेंद्रं वाक्यमब्रवीत् ॥ देवा मद्वचनं मिथ्या त्रिलोकेपि न जायते ॥ ३५ ॥

होजाओ ॥ ३३ ॥ पार्वतीजीका यह वचन सुनकर सब देवता कांप उठे । और ब्रह्मा विष्णु और महेश आदि जगतकी माता पार्वतीको प्रसन्न करने लगे ॥ ३४ ॥ फिर देवी प्रसन्न हुई और इन्द्रसे बोलीं कि हे देवताओ ! तीनोलोकमें भी मेरा वचन झूठा नहीं होता है ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इसलिये तुम सब एक साथ वृक्ष होजाओ । पार्वतीजीका यह वचन सुनकर सब देवता वृक्ष होगये ॥ ३६ ॥ भगवान् पीपलरूप, सदाशिव वटरूप ब्रह्मा पलाशरूप और इन्द्र आम्रका रूप होगये ॥ ३७ ॥ इन्द्राणी लता होगई, देवताओंकी स्त्रियां मालती आदि होगई और उर्वशी आदि अप्सरायें पुष्पलता होगई ॥ ३८ ॥ इसलिये सब प्रकारसे कार्तिकमें पीपलकी पूजा करनी चाहिये । जो स्त्री कार्तिकमासमें पीपलकी एक लाख परिक्रमा करैगी ॥ ३९ ॥ और शनिवा-

तस्मादेकांशतो वृक्षा यूयं सर्वे भवंतु वै ॥ इति देव्या वचः श्रुत्वा जाता देवास्तु पादपाः ॥३६॥
अश्वत्थरूपी भगवान् वटरूपी सदाशिवः ॥ पलाशोभूद्विधाता च आम्रः शक्रो बभूव ह ॥३७॥
इंद्राणी सा लता ज्ञेया देवानां योषितस्तथा ॥ मालत्याद्याः पुष्पलता उर्वश्याद्याप्सरसोभवन् ॥३८॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्तिकेश्वत्थमर्चयेत् ॥ या नारी कार्तिके मासि लक्षं कुर्यात्प्रदक्षिणाः ॥३९॥
राधादामोदरं पूज्य मंदवारे च तत्तले ॥ दंपती भोजयेद्राधादामोदरस्वरूपिणौ ॥ ४० ॥
भोजयित्वा सपत्नीकान्पश्चाद्भुंजीत वाग्यतः ॥ वंध्यापि लभते पुत्रं इतरासां तु का कथा ॥४१॥

रको उसके नीचे राधादामोदरको पूजकर राधादामोदरके स्वरूप स्त्रीपुरुषके जोड़ेको जिमावैगी ॥ ४० ॥ और पत्नी सहित ब्राह्मणोंको जिमाकर उनके वचनसे फिर आप भोजन करैगी तो बाझको भी पुत्र प्राप्त होगा औरोंकी क्या कथा है ॥ ४१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

(और पूजा समय यह मंत्र पढै) "हे अश्वत्थ ! तुम मूलमें ब्रह्मरूप, मध्यमें विष्णुरूप और शाखामें शिवरूपहो ऐसे तुमको वार २ नमस्कार है ॥ ४२ ॥ जो विष्णुभगवान्‌की मूर्ति नहो तो भगवान्‌का कीर्तन और जागरण पीपलके वृक्षके नीचै करै यही विष्णुकी वड़ी आराधना है ॥ ४३ ॥ सदा विष्णुभगवान् वहां ऐसे रहते हैं कि जैसे दो चरण वालोमेंसे ब्राह्मणोंमें, वृक्षोंमेंसे पीपलमें, शिलाओंमेंसे शालग्राममें ॥ ४४ ॥ कार्तिकमासके लगनेपर जो उसका व्रत नहीं

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ॥ अग्रतः शिवरूपाय अश्वत्थाय नमो नमः ॥ ४२ ॥
विष्णोश्च प्रतिमाभावे कीर्तनं जागरादिकं ॥ अश्वत्थमूले कर्तव्यं विष्णोराराधनं परं ॥ ४३ ॥
सदा संनिहितो विष्णुर्द्विपत्सु ब्राह्मणे यथा ॥ वोधिद्रुमे पादपेषु शालग्रामे शिलासु च ॥ ४४ ॥
कार्तिके मासि संप्राप्ते यो न तद्व्रतमाचरेत् ॥ यथा करस्थितं रत्नं तथा त्यजति बालिशः ॥ ४५ ॥
कार्तिकान्नापरो मासो विष्णुप्रीतिकरो विभुः ॥ स्वल्पक्लेशेनैव यस्मिन्मासे विष्णुः प्रसीदति ॥४६॥
दुर्लभं मानुषं जन्म आर्यावर्ते ततोपि च ॥ ततोपि दुर्लभं ज्ञानं ज्ञात्वा ये तु न कुर्वते ॥ ४७ ॥

करता है वह मूर्ख हाथपर धरे हुये रत्नको खोता है ॥४५॥ कार्तिकसे बढकर कोई वड़ा महीना भगवान्‌को प्रसन्न करने वाला नही है कि जिस मासमें थोड़ेही क्लेशसे भगवान् प्रसन्न होजाते है ॥ ४६ ॥ एक तो मनुष्यका जन्म मिलना कठिन फिर सो भी आर्यावर्तमें । फिर उसमे भी ज्ञान मिलना कठिन है ऐसा जानकर जो ॥ ४७ ॥ ॥

कार्तिकमासका व्रत नहीं करते है वे मनुष्य बड़े मूर्ख हैं। यह कार्तिकमास ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाशक माना गया

व्रतं कार्तिकमासस्य ते नरा मंदबुद्धयः ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां नाशनः कार्त्तिको मतः ॥ ४८ ॥
तमुत्सृज्य नरः कोसौ योन्यं धर्मं समाचरेत्॥ अश्वत्थपूजा स्पर्शेन कर्तव्या शनिवासरे ॥४९॥
अन्यवारेश्वत्थसंगाद्दरिद्रो जायते नरः ॥ ५० ॥ ॥ ॥
॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्येऽश्वत्थकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

है ॥ ४८ ॥ उसे छोड़कर ऐसा कौनसा दूसरा धर्म है कि जिसे मनुष्य करै शनिवारके दिन पास जाकर पीपलकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४९ ॥ और दिन पीपलके पास जानेसे मनुष्य दरिद्री होता है ॥ ५० ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहिताया कार्तिकमाहात्म्ये अश्वत्थकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



॥ अनूरु बोले । हे भगवान् ! पृथ्वीपर शनिवारके विना पीपलको क्यों नहीं स्पर्श करना चाहिये यह कहिये मुझे सुन-
नेकी बड़ी लालसा है ॥ १ ॥ सूर्य बोले । द्वापरके अंतमें देवता और दैत्योंने विष्णु और राजा बलि आदिके सहित
समुद्र मथा था ॥ २ ॥ मंदराचलको मथना बनाकर और वासुकीको रस्सी बनाकर पांच वर्षतक मथा तब झाग उठे

अनूरुरुवाज ॥ मंदं विना कथं जातो ह्यस्पृश्यः पिप्पलो भुवि ॥ एतदाख्याहि भगवन्नुत्कंठा
श्रवणे मम ॥ १ ॥ सूर्य उवाच ॥ देवैर्दैत्यैर्द्वापरांते समुद्रमथनं कृतम् ॥ पुरोपायो विष्णुयुतै-
र्बलिराजादिसंयुतैः ॥ २ ॥ मंथानं मंदरं कृत्वा रज्जुं कृत्वा तु वासुकिं ॥ ममंथुः पंचवर्षाणि
ततः फेनोभ्यजायत ॥ ३ ॥ ततो वर्षत्रयेणैव समुत्पन्ना सुराभवत् ॥ ततो जाता कामधेनुर्व-
र्षेणैकेन भो खग ॥ ४ ॥ वर्षादैरावतो हस्ती वर्षात्सप्तमुखो हयः ॥ त्रिभिर्मासैरप्सरसस्ततो
वर्षेण चन्द्रमाः ॥ ५ ॥ ततो वर्षत्रयाज्जातं ज्वालामालातिभीषणम् ॥ कालकूटं विषं घोरं
तद्ददाह जगत्त्रयं ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ३ ॥ फिर तीन वर्षमें सुरा उत्पन्न हुई फिर हे खग ! एक वर्षमें कामधेनु हुई ॥ ४ ॥ एक वर्षमें ऐरावत हाथी और
एक वर्षमें सात मुखका घोड़ा और तीन मासमें अप्सरायें, फिर एक वर्षमें चन्द्रमा हुआ ॥ ५ ॥ फिर तीन वर्षमें बहु-
तसी ज्वालाओंसे भयंकर घोर कालकूट विष निकला कि जिससे तीनों लोक जलने लगे ॥ ६ ॥ ॥

और उसकी ज्वालाकी चमक देहपर पड़नेसे विष्णुभगवान् नीले पड़ गये चराचर तीनों लोकोंमें बड़ा भारी हाहाकार मच गया ॥ ७ ॥ हे खगोत्तम ! उस समय हमतो अचंभेमें आगये और पृथ्वी तलपर अपनी किरणोंसे बहु तेरे जल छिड़के ॥ ८ ॥ तब मैंने, ब्रह्मा और विष्णुने शिवजीसे प्रार्थना करी और उन कृपालुने उस हालाहल विषको पीलिया ॥ ९ ॥ और उसके दाह दूर करनेके लिये गंगाजीको अपने मस्तकपर धर लिया और ललाटपर चन्द्रमाकी कलाको

तज्ज्वालाक्रांतदेहस्तु विष्णुर्नीलो बभूव ह ॥ हाहाकारो महाञ्जातो त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७ ॥
वयं तु चकिता जाता तस्मिन्काले खगोत्तम ॥ स्वकरैर्बहुतोयानि निक्षिप्तानि धरातले ॥ ८ ॥
ततः संप्रार्थितः शर्वो मया धात्रा च विष्णुना ॥ कृपालुना तेन पीतं विषं हालाहलाभिधम् ॥ ९ ॥
तद्दाहविनिवृत्त्यर्थं धृता गंगा स्वमस्तके ॥ कृता ललाटे चंद्रस्य कला कर्पूरलेपनं ॥ १० ॥
ततः कोदंडमभवद्वर्षाच्छंखश्च मासतः ॥ पारिजातस्ततो वर्षादभून्मासाच्च कौस्तुभः ॥ ११ ॥
ततो ज्येष्ठासमुत्पन्ना कापायांबरधारिणी ॥ पिंगकेशा रक्तनेत्रा कूष्मांडसदृशस्तनी ॥ १२ ॥

धरा और कर्पूरका लेपन किया ॥ १० ॥ फिर वर्ष भरमें धनुप और महीने भरमे शंख ये दोंनो उत्पन्न हुये । फिर एक वर्षमे पारिजात हुआ । और एक मासमें कौस्तुभमणि हुआ ॥ ११ ॥ फिर कापाय वस्त्र पहिरें पिंगल केशवाली लाल नेत्र कियें पेठेके फलोंके समान स्तनवाली ॥ १२ ॥

॥ ॥ ॥

बड़ी बूढी, पोपली जीभको निकालें, घटके समान पेटवाली ऐसी स्त्री जेष्ठा उत्पन्नहुई कि जिसे देखकर यह संसार घबरा जाय ॥ १३ ॥ फिर तिरछी आंखे चलाती हुई सुन्दरताकी खान पतली कमरवाली, सुवर्ण कैसे रंगकी तथा बड़े और उंचे स्तनवाली ॥ १४ ॥ क्षीर समुद्रके समान स्वेत साड़ी पहिरे हुये दोनों हाथोंमें कमलकी माला लिये लक्ष्मी उत्पन्न हुई कि जिसके दर्शन मात्रसे देवता और दानव मोहित होगये ॥ १५ ॥ फिर वारह वर्षतक मथनेपर समुद्रसे अमृतका

अतिवृद्धा दंतहीना ललजिन्हा घटोदरी ॥ यां दृष्ट्वैव च लोकोयं समुद्विग्नः प्रजायते ॥ १३ ॥
ततोभूच्चंचलापांगी सौंदर्यस्येव शेवधिः ॥ कृशोदरी स्वर्णवर्णा पीनोन्नतपयोधरा ॥ १४ ॥
दधत्क्षीरोदकं वासः कराभ्यां कमलस्रजम् ॥ यस्या दर्शनमात्रेण मोहिता देवदानवाः ॥१५॥
ततः पुनर्मथ्यमाना द्वादशाब्दैस्तु सागरात् ॥ गृह्य पीयूषकलशं स्वयं धन्वंतरिर्ययौ ॥ १६ ॥
आदौ पीत्वामृतं देवा रत्नानि व्यभजंस्ततः ॥ सुरा दत्ता दानवेभ्यो धेनुः संस्थापिता सुरैः ॥१७॥
ऐरावतः सुरेन्द्रेण भानुनाश्वो हयेश्वरः ॥ देवैराप्ताश्चाप्सरसः कोदंडं शूलपाणिना ॥ १८ ॥

कलश लियें स्वयं धन्वंतर वैद्य निकले ॥ १६ ॥ पहिले देवताओंने अमृत पीकर फिर रत्नोंको वांट लिया। वारुणी दानवोंको देदी और धेनु देवताओंने रख लीनी ॥१७॥ इन्द्रने ऐरावत हाथी लेलिया, सूर्य देवताने सप्त मुखका घोड़ा लिया, देवताओंको अप्सरायें मिलीं और शिवजीने कोदंड धनुप लिया ॥ १८ ॥ ॥ ॥

पांचजन्य नाम शंख विष्णुने लिया और पारिजात वृक्ष भी भगवान्‌ने लिया और जब कौस्तुभमणि भी ले चुके तो विष्णुने लक्ष्मीजीका मुख देखा ॥ १९ ॥ और उधर लक्ष्मीजी भी भगवान्‌का मुख देखकर नीचा मुख किये खड़ी होगई । सब देवता उन लक्ष्मीजीको देखते हैं परंतु किसीसे उनका बांट नहीं होसक्ता है ॥ २० ॥ आपसमें एक दूसरेके मुख देखते हैं और फिर लक्ष्मीजीकी स्तुति करते हैं । फिर ब्रह्माजी आधे अंगको धारण करनेवाले शिवजीसे

पांचजन्यो विष्णुनैव पारिजातस्तु विष्णुना ॥ गृहीत्वा कौस्तुभं विष्णुरपश्यच्चेंदिरामुखं ॥१९॥ लक्ष्मीरपि हरेरास्यं दृष्ट्वा चाधोमुखी स्थिता ॥ सर्वे पश्यंति तां लक्ष्मीं न केनापि विभज्यते ॥ २० ॥ पश्यंत्यन्योन्यमास्यानि स्तुवंति च रमां पुनः ॥ ततः पितामहः प्राह शिवमर्द्धांगधारकम् ॥ २१ ॥ लक्ष्मीरियं कस्य देयेत्यादिश्य परमेश्वर ॥ सर्वान् दृष्ट्वा ततो देवान् रुद्रो वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ रुद्र उवाच ॥ एष नारायणः साक्षाल्लक्ष्मीयोग्यो मतो मम ॥ तथापि प्रौढया लक्ष्म्या क्रियतां वा स्वयंवरः ॥ २३ ॥

बोले कि ॥ २१ ॥ हे परमेश्वर ! यह लक्ष्मी किसे देनी चाहिये सो आज्ञा करिये ॥ फिर शिवजीने सब देवताओंको देखकर यह बात कही ॥ २२ ॥ शिवजी बोले ॥ मेरी समझमें तो ये साक्षात् नारायण लक्ष्मीके योग्य हैं तो भी तरुण लक्ष्मीके साथ स्वयंवर करो ॥ २३ ॥

॥ लक्ष्मी बोलीं ॥ हे देवोंके देव महादेव ! अनुग्रहकारक ! जो तुह्मारे मुखसें निकला है वह मिथ्या नहीं होसक्ता ॥ २४ ॥ शिवजी बोले ॥ इनका पिता समुद्र विवाहके लिये कार्तिकमासकी आज द्वादशीके दिन शीघ्र सामग्री तयार करै ॥ २५ ॥ सूर्य बोले ॥ फिर ब्रह्माजीने समुद्रको बुलाया और उसने विवाहकी तयारी करी। नारदजीने लग्न

श्रीरुवाच ॥ देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक ॥ निःसृतं यत्तवमुखात्तन्मिथ्या नैव जायते ॥ २४ ॥ शिव उवाच ॥ आकार्यतां सागरोस्याः पिता पाणिग्रहाय च ॥ तूर्णं करोतु सामग्रीं द्वादश्यामद्य कार्तिके ॥ २५ ॥ श्रीसूर्य उवाच ॥ तत आकारितो धात्रा कृतवैवाहको नदीट् ॥ नारदो दत्तवान् लग्नं ततो लक्ष्मीर्व्यजिज्ञपत् ॥ २६ ॥ श्रीरुवाच ॥ आदौ ज्येष्ठां समुद्वाह्य कनिष्ठामुद्वहेत्ततः ॥ एष पंथा तु वेदोक्तस्तस्मादेषा विवाह्यताम् ॥ २७ ॥ इति लक्ष्मीवचः श्रुत्वा सर्वे ह्युद्विग्नमानसाः ॥ अतः परं किं विधेयं एतां को वरयिष्यति ॥ २८ ॥ इत्युद्विग्नान्सुरान्दृष्ट्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ विष्णो तवातीव भक्तो मुनिरुद्दालको महान् ॥२९॥

निकाली फिर लक्ष्मीजीने सबको जताया ॥ २६ ॥ लक्ष्मी बोलीं ॥ पहिले वड़ीको व्याहकर फिर छोटीको व्याहना चाहिये यही मार्ग वेदमें कहा है इसलिये इस ज्येष्ठाका विवाह करो ॥ २७ ॥ लक्ष्मीका यह वचन सुनकर सब मनमें घबराये कि अब क्या करना चाहिये इस ज्येष्ठाको कौन वरेगा ॥ २८ ॥ इस बातसे देवताओंको घबराया हुआ देख

नारदजी यह बात बोले कि हे भगवान् ! उद्दालक नाम महामुनि तुम्हारे बड़े भक्त हैं ॥ २९ ॥ और वह विवाहके
लिये इसको निस्संदेह वर लेंगे । विष्णु बोले ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उद्दालक मुनिको बुलाओ, यह वचन ॥ ३० ॥ सुनतेही
महात्मा नारदजी उन्हें शीघ्र बुलालाये । उनको नीची गरदन कियें देखकर विष्णुने कहा ॥ ३१ ॥ भगवान बोले ॥
हे मुनिश्रेष्ठ उद्दालक ! गृहस्थाश्रमके विना तपस्या वृथा होती है इसलिये विवाह करलो ॥ ३२ ॥ समुद्रकी यह ज्येष्ठा

ततोद्वाहार्थमेनां स वरयिष्यत्यसंशयम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ आकार्यतां मुनिवर उद्दालक इदं-
वचः ॥ ३० ॥ श्रुत्वैवानीत एवैषो नारदेन महात्मना ॥ तं नम्रकंधरं दृष्ट्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत्
॥ ३१ ॥ विष्णुरुवाच ॥ उद्दालक मुनिश्रेष्ठ गृहस्थस्याश्रमं विना ॥ वृथा तपस्या भवति
तस्मात्पाणिग्रहं कुरु ॥ ३२ ॥ समुद्रस्य तु कन्येयं ज्येष्ठा नाम्नी पतिव्रता ॥ एनां वरय त्वं
विप्र कनिष्ठांवरयाम्यहं ॥३३॥ इति विष्णुवचः श्रुत्वा तूष्णीमासीन्मुनीश्वरः ॥ दत्त्वा समुद्रस्य
हस्ते जलं तां नारदोर्पयत् ॥ ३४ ॥

नाम कन्या पतिव्रता है हे मुनिराज ! तुम इसे व्याहलो और मैं छोटीको व्याहें लेताहूं ॥ ३३ ॥ भगवान्का यह
वचन सुनकर मुनीश्वर चुपके होगये । फिर नारदजीने समुद्रके हाथमें जल देकर उस ज्येष्ठाको उद्दालक मुनिको
संकल्प करादी ॥ ३४ ॥

उसके पीछेही लक्ष्मीजीका भी विवाह होगया । भगवान्ने हाथसे लक्ष्मीको पकड़कर मुनीश्वरसे यह कहा कि ॥ ३५ ॥ हे ऋषि ! तुम इस ज्येष्ठाको आश्रमको लेजाओ मैं सदा तुमसे प्रसन्नहूं । मैं वैकुंठको जाताहूं और हे मुनि तुम आश्रमको जाओ ॥ ३६ ॥ यह कहकर भगवान् लक्ष्मीको साथ ले वैकुंठको चलदिये और उद्दालकमुनि भी उस ज्येष्ठाका लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥ ३७ ॥ उद्दालकमुनिके आश्रममें होमका धुआं होरहा था वह वेदोंकी ध्वनिके शब्दसे

तदुत्तरक्षणे तस्मिन् श्रियः पाणिग्रहः कृतः ॥ लक्ष्मीं करे हरिर्धृत्वा मुनींद्रं वाक्यमब्रवीत् ॥३५॥ नयेमामाश्रममृषे तवतुष्टोस्मि सर्वदा ॥ अहं गच्छामि वैकुंठं गच्छ त्वं मुनिमंदिरम् ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वा निर्गतो विष्णुर्वैकुंठं रमया सह ॥ उद्दालकोपि तां गृह्य प्रययौ स्वीयमाश्रमम् ॥ ३७॥ होमधूम्रसमायुक्तं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ स्वकर्मनिष्ठविप्रेंद्रैर्व्याप्तमुद्दालकाश्रमम् ॥ ३८॥ विलोक्य दुःखिता ज्येष्ठा पतिं वचनमब्रवीत् ॥ ज्येष्ठोवाच ॥ शिरःपीडाकरश्चायमाश्रमो मम वर्त्तते ॥ न वसाम्यत्र भो स्वामिन्नयमामन्यमाश्रमम् ॥ ३९ ॥ ॥ ॥

गूंज रहा था और उसमें बड़े २ कर्मनिष्ठ मुनि विराजमान थे ॥ ३८ ॥ यह देखकर ज्येष्ठाने दुखी होकर अपने पतिसे कहा ॥ ज्येष्ठा बोली ॥ इस आश्रममें तो मेरे शिरमें पीड़ा होती है सो हे स्वामी ! मैं तो यहां नहीं रहूंगी मुझे दूसरे आश्रममें लेचलो ॥ ३९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

हे खगराज ! यों उद्दालकमुनिने उसे हजारों आश्रम दिखाये पर उसके मनमें एक भी आश्रम न आया ॥ ४० ॥ फिर मुनिने उससे पूछा कि तुझे कैसा स्थान अच्छा लगता है ॥ ज्येष्ठा बोली ॥ नित्य रात्रिको जहां घरमें स्त्री और पतिमें लड़ाई होतीहो ॥ ४१ ॥ जहां कुलके धर्मको छोड़कर ज्वारी, शरावी और वेश्या गामी मनुष्य रहतेहों ॥ ४२ ॥ और

एवं सहस्रशस्तेन दर्शिता आश्रमाः खग ॥ एकोपि तस्या मनसि समायाति न चाश्रमः ॥४०॥ तदा मुनिः पर्यपृच्छत्कीदृशं रोचते स्थलम् ॥ ज्येष्ठोवाच ॥ रात्रौ रात्रौ गृहे यत्र दंपत्योः कलहो भवेत् ॥ ४१ ॥ सकौलं धर्ममुत्सृज्य यत्र तिष्ठंति वै जनाः ॥ द्यूतकारा मद्यपाश्च यत्र वेश्योपगामिनः ॥ ४२ ॥ गुरुमातृद्विजातीनां द्वेष्टारो यत्र संति च ॥ नित्यं परान्नं भुंजंति आवाद्यं वादयंति च ॥ ४३ ॥ ये पृष्ठमैथुनं कुर्युर्वेदनिंदां प्रकुर्वते ॥ मैत्र्यंतराया ये लोका यत्र यत्र च संति च ॥ ४४ ॥ तत्र तत्र रतिर्मेस्ति नान्यस्थानेषु वर्तते ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या मुनींद्रो भृशदुःखितः ॥ परं चिंतार्णवे मग्नो मनस्येवं व्यचिंतयत् ॥ ४५ ॥ ॥

जहां गुरु माता, और ब्राह्मणोंसे वैर करनेवाले, नित्य पराया अन्न खानेवाले तथा वृथाके बाजे बजानेवाले रहतेहों ॥ ४३ ॥ और जो बालकोंके साथ बुरा कर्म और वेदकी निंदा करतेहों और जहां २ मित्रतामें विघ्न करानेवाले बसतेहों ॥ ४४ ॥ मेरी प्रीति उसी स्थानमें रहनेकी है और स्थानोंमें नहीं होती । उसका यह वचन सुनके मुनीश्वर

बड़े दुखी हुये और चिन्तारूपी अथाह समुद्रमें डूबकर मनमें यह विचारने लगे कि ॥ ४५ ॥ जो वास मेरे रहनेके योग्य है सो अच्छा नहीं लगता फिर अब क्या करना चाहिये विष्णु भगवान्ने इसे मेरे पल्ले बांधदी है ॥ ४६ ॥ देवता अपने कामको साधनेवाले होते हैं दूसरेके सुख दुखको नहीं जानते अब मुझे क्या करना योग्य है ॥ ४७ ॥ अथवा भगवान्का विवाह तो निश्चय होही गया है सो मैं इसको छोड़कर चला जाऊं नहीं तो मेरा तप भंग होजायगा

यो वासो मम योग्यस्तु सोस्या वासो न रोचते ॥ अतः परं किं विधेयं विष्णुना ग्राहितास्त्वियं ॥ ४६ ॥ स्वकार्यसाधका देवा भवंति न परस्य तु ॥ सुखंदुखं न जानंति किं कार्यं नु मयाऽधुना ॥ ४७ ॥ अथवा जात एवास्य विवाहस्तु हरेः खलु ॥ एनां त्यज्य गमिष्यामि नान्यथा मे तपो भवेत् ॥४८॥ विचार्यैवं स्वमनसि तां भार्यां वाक्यमब्रवीत् ॥ उद्दालक उवाच ॥ शृणु मद्वचनं कांते अश्वत्थाधःस्थिरा भव ॥ ४९ ॥ शरत्कालस्य धर्मेण शिरःपीडा भविष्यति ॥ तस्मादहं गमिष्यामि तव योग्यं यथास्थलम् ॥ ५० ॥ ॥ ॥

॥ ४८ ॥ ऐसा अपने मनमें विचारकर अपनी भार्यासे बोले ॥ उद्दालकमुनि कहने लगे ॥ तू मेरा वचन सुन और इस पीपलके नीचे निचली होकर बैठ ॥ ४९ ॥ शरत्कालके कारण शिरमें पीड़ा होगी इसलिये मैं तेरे योग्य स्थान देखने जाऊंगा ॥ ५० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

और उसे तेरे योग्य देखकर तुझे शीघ्र वहां ले चलूंगा । इस प्रकार उस ज्येष्ठाको भरोसा देकर उद्दालकमुनि भाग गये ॥ ५१ ॥ उसने भी बैठकर सूर्य अस्ततक उन ऋषिकी राह देखी । जब सायंकाल होगया तब उनके आनेकी आशा जाती रही ॥ ५२ ॥ फिर ऐसी करुणा और दीनतासे रोई कि तीनो लोकोंको बहिरा करदिया और वैकुंठमें लक्ष्मी-

विलोक्य तादृशं तत्र त्वां नयामि च माशुचः ॥ इत्थमाश्वास्यतां ज्येष्ठां पलायनमचीकरत् ॥ ५१ ॥ सापि स्थित्वा तस्य मार्गमासूर्यं प्रददर्शह ॥ सायंकाले ततो जाते निराशाभूत्तदागमे ॥ ५२ ॥ रुरोद करुणं दीनं त्रैलोक्यं वधिरं कृतम् ॥ वैकुंठेपि श्रुतं लक्ष्म्या विष्णुं सापि व्यजिज्ञपत् ॥ ५३ ॥ श्रीरुवाच ॥ रोदनं श्रूयते चाद्य मद्भगिन्या कृतं विभो ॥ गतस्तां त्यज्य स मुनिः सांत्वनाय समाव्रज ॥ ५४ ॥ श्रुत्वैतद्वचनं लक्ष्म्याः खगारूढो जनार्दनः ॥ श्रिया सह ययौ तत्र यत्र रोदति सा चिरम् ॥ ५५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ जाने ज्येष्ठे विहायैव त्वां गतोसौ मुनीश्वरः ॥ मदंशसंभवश्चायमश्वत्थोस्ति गयापुरे ॥ ५६ ॥

जीने भी सुना और उन्होंने विष्णुभगवान्को जताया ॥ ५३ ॥ लक्ष्मीजी बोलीं ॥ हे स्वामी ! आज मेरी बहिनका रोदन सुनाई देता है । वह मुनि उसे छोड़कर चले गये सो आप उसे धीरज धराने जाइये ॥ ५४ ॥ लक्ष्मीजीका यह वचन सुनके भगवान् गरुड़पर सवारहो लक्ष्मीजीको साथले वहा गये कि जहां वह बहुत देरसे रोरही थी ॥५५॥ विष्णु बोले ॥

हे ज्येष्ठा ! मै जानताहूं वह मुनीश्वर तुझे छोड़कर चले गये मेरे अंशसे उत्पन्न यह पीपलका वृक्ष गया पुरमें है ॥ ५६ ॥ इसका नाम बोधि है सो तू बहुत कालतक यहां बैठी रह और ये जितने पिशाच यहां रहते हैं वे सब तेरे सेवक हैं ॥ ५७ ॥ उन्हीके साथ यहां रह शोकको छोड़ सुखीहो । आज अर्कपुत्र कहिये शनि योग है और आजसे सातवें २ दिन ॥ ५८ ॥ तेरी बहिन अवश्य तुझसे मिलने आया करैगी । और जो लोग पीपलको और वारोंमे स्पर्श करैं तू

बोधिनामा त्वमत्रैव चिरकालं स्थिरा भव ॥ तवैवानुचराः सर्वे वसंति च पिशाचकाः ॥ ५७ ॥
तैः साकं स्थीयतामत्र शोकं त्यक्त्वा सुखी भव ॥ अद्यार्कपुत्रयोगोस्ति सप्तमे सप्तमेहनि ॥५८॥
भगिनी तेऽवश्यमेव मिलनायागमिष्यति ॥ यैः स्पृश्यतेन्यवारेषु पिप्पलस्तद्गृहं व्रज ॥ ५९ ॥
मंदवारे तु यैस्पृष्टस्तत्र यास्येति मत्प्रिया ॥ इमामाश्वास्य वैकुंठं जगाम स हरिः स्वयम्
॥ ६० ॥ तस्मान्मंदं विनानूरो न स्पृश्योऽश्वत्थपादपः ॥ इत्थमश्वत्थपूजां तु कुर्यात्कार्तिक-
मासके ॥ ६१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उनके घर चली जइयो ॥ ५९ ॥ और जो शनिवारको स्पर्श करैंगे उनके यहां मेरी प्यारी लक्ष्मी जायगी । फिर भगवान् इसको धीरज देकर आप वैकुंठको चले गये ॥ ६० ॥ इसलिये हे अनूरु ! शनिवारको छोडकर पीपल वृक्षको नहीं छूना चाहिये । इस प्रकार कार्तिकमासमे पीपलकी पूजा करनी चाहिये ॥ ६१ ॥ ॥ ॥

कार्तिकसे बड़ा कोई मास नहीं है मैं तुमसे सत्य २ कहताहूं । मैंने जो ज्येष्ठाकी कथा कही है उसे जो सुनेंगे उनका

न कार्त्तिकात्परो मासः सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ज्येष्ठाख्यानं मया प्रोक्तं शृण्वतां पापनाशनम् ॥ ६२ ॥ अतः परं ब्रूहि वत्स किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६३ ॥ ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पाप नाश होगा ॥ ६२ ॥ हे वत्स ! अब कहो क्या सुनना चाहते हो ॥ ६३ ॥ ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



॥ ऋषि वोले ॥ हे वालखिल्या ! हे तपोधन ! स्नान कव करना चाहिये और दिनभर कैसे रहना चाहिये सो आप कहिये ॥ १ ॥ वालखिल्या वोले ॥ पंडितको चाहिये कि रात्रिका जब चौथा भाग रह जाय तो शयनसे उठै ॥ और वहुतसे स्तोत्रोंसे विष्णुभगवान्‌की स्तुति करके दिनका काम विचारै ॥ २ ॥ मैं प्रातःकाल संसारके भय और महादुःखके नाश करनेके लिये नारायणका स्मरण करता हूं नारायण कैसे है कि गरुड़पर विराजमान हैं जिनके नाभिकमलमें

॥ ऋषय ऊचुः ॥ कदा स्नानं प्रकर्तव्यं कथं स्थेयं दिनावधि ॥ एतदाख्यातुमर्हंति वालखिल्यास्तपोधनाः ॥ १ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायामुत्तिष्ठेच्छयनात्सुधीः ॥ विष्णुं स्तुत्वा बहुस्तोत्रैर्दिनकार्यं विचारयेत् ॥ २ ॥ प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशांत्यै नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभं ॥ ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं चक्रायुधं तरुणवारिजपद्मनेत्रं ॥ ३ ॥ प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तं प्राक् देहजन्मकृतपापभयापहत्यै ॥ यो ग्राहवक्रपतितांघ्रिगजेंद्रघोरशोकप्रणाशनमकरोद्धृतशंखचक्रः ॥ ४ ॥ ॥ ॥

ब्रह्माजी शोभायमान है तथा ग्राहसे पकड़े हुये सुन्दर हाथीको छुडानेवाले, चक्रको धारण किये और तरुण कमलके समान नेत्रवाले है ॥ ३ ॥ मै प्रातःकाल पूर्वजन्ममें किये गये पापोंके भयको नाशकरनेके लिये भगवान्‌को भजताहूं जो भजनेवालोंको अभय करनेवाले हैं और जिन भगवान्‌ने ग्राहके मुखमें पड़ा हुआ चरण जिसका ऐसे गजेन्द्रके

भयंकर शोकका नाश करदिया और शंखचक्र धारण किये हैं ॥ ४ ॥ मैं प्रातःकाल परम पुरुष भगवान्के चरण कमलोंको मन वाणी और शिरसे भजताहूं । वे नरक रूपी समुद्रसे पार करनेवाले और पारायण करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके भक्त हैं ॥ ५ ॥ जो मनुष्य इन तीन पवित्र श्लोकोंको नित्य प्रातःकाल पढै तो वह तीनों लोकमें वडा होजाता है और भगवान् उसे अपना पद देते हैं ॥ ६ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र, भौम, वुध, गुरु शुक्र शनि

प्रातर्भजामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना पादारविंदयुगलं परमस्य पुंसः ॥ नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य पारायणप्रवरविप्रपरायणस्य ॥ ५ ॥ श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातः प्रातः पठेन्नरः ॥ लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥ ६ ॥ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरांतकारी भानुः शशी भूमिसुतो वुधश्च ॥ गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कुर्वंतु सर्वे मम सुप्रभातं ॥ ७ ॥ पृथ्वी सगंधा सरसास्तथापः स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः ॥ नभश्च शब्दं महता सहैव कुर्वं० ॥ ८ ॥ भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरंगिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः ॥ रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः कुर्वंतु० ॥ ९ ॥

राहु और केतु ये सव मेरे प्रभातको शुभ करैं ॥ ७ ॥ गंधयुक्त पृथ्वी, जल, स्पर्श करनेवाली पवन, ज्वलित तेज, बड़े शब्दयुक्त आकाश ये सब मेरे प्रभातको शुभ करैं ॥ ८ ॥ भृगु, वसिष्ठ क्रतु, अंगिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन, और दक्ष ये सब मेरे प्रभातको शुभ करैं ॥ ९ ॥

॥ ॥

सनत्कुमार, सनक, सनंदन, सनातन, आसुरि, पिंगल, सप्तस्वर, सप्त रसातल ये सब मेरा प्रभात शुभ करें ॥ १० ॥
सात समुद्र, सात कुलाचल, सप्त ऋषि, सात द्वीप वन, पृथ्वी आदि सातों भुवन ये सब मेरे प्रभातको शुभ करें ॥११॥
जो कोई इस प्रकार प्रातःकाल इस परम पवित्र स्तुति पढ़ैगा, स्मरण करैगा वा सुनेगा तो संसारमें उसके बुरे स्वप्नका फल नाश होजायगा और भगवान्‌के प्रसादसे नित्य प्रभात मंगलकारी होगा ॥ १२ ॥ इत्यादि स्तुतियोंसे भगवान्‌की

सनत्कुमारः सनकः सनंदनः सनातनोप्यासुरिपिंगलौ च ॥ सप्तस्वराः सप्तरसातलानि कुर्वंतु० ॥ १० ॥ सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त ॥ भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त कुर्वंतु सर्वे मम सुप्रभातं ॥ ११ ॥ इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत्स्मरेद्यः शृणुयाच्च तद्वत् ॥ दुःस्वप्ननाशस्त्विह सुप्रभातं भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात् ॥ १२ ॥ इत्यादिस्तुतिभिर्विष्णुं स्तुत्वा हस्तावलोकनं ॥ कुर्याद्वा दर्पणं स्वर्णं दूर्वां गां मंगलं च यत् ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा ग्रामाद्बहिर्यायात्रिशरे जनवर्जिते ॥ ग्रामनैर्ऋत्यदिग्भागे रथ्यास्थानादिवर्जिते ॥ १४ ॥ ॥

स्तुति करके अपने हाथोंको देखै, अथवा दर्पण, सुवर्ण दूव, गौ, अथवा जो मंगल वस्तु हो ॥ १३ ॥ उसे देखकर एक शर जितनी दूर फिंके उससे तिगुनी दूर मनुष्योंसे रहित स्थानमे गांवके नैर्ऋत्य दिशाकी ओर सड़कके मार्गको छोड़कर ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एकसी जगहमें तृण फैलाकर मल त्याग करें । चारों ओर न देखे और वस्त्रके टुकड़ेसे अपना मुख ढककर ॥ १५ ॥ न श्वासले, न थूके, न बोले, और न छींके । फिर गंध लेपके क्षय करनेवाले शौचका आरंभ करे ॥ १६ ॥ मट्टी लगाकर एकवार लिंगको सातवार गुदाको दशवार बायें हाथको फिर सातवार दोनों हाथोंको और तीनवार दोनों पैरोंको धोवै ॥ १७ ॥ यह तो गृहस्थियोंका कहा ब्रह्मचारीको इससे दूना करना, वानप्रस्थोंको तिगुना, और यतियोंको

समप्रदेशे तु तृणान्यास्तीर्य मलमुत्सृजेत् ॥ दिशो नेक्षेत च मुखं पिधायांबरखंडतः ॥ १५ ॥
न श्वसेत न च ष्ठीवेन्न भाषेन्न च संछिकेत् ॥ गंधलेपक्षयकरं ततः शौचं समाचरेत् ॥ १६ ॥
एका लिंगे गुदे सप्त दश वामे करे तथा ॥ उभयोः सप्त दातव्याः पादयोर्मृत्तिकात्रयं ॥ १७ ॥
एतदुक्तं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणां ॥ त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् ॥ १८ ॥
एवं शौचं विधायाथो दंतधावनमाचरेत् ॥ दग्धकंटकवृक्षांश्च हित्वा स्याद्दंतधावनम् ॥ १९ ॥
सद्वासनं मृदुतरं दंतधावनमाचरेत् ॥ उपवासे नवम्यां च षष्ठ्यां श्राद्धतिथौ रवौ ॥ २० ॥

चौगुना करना ॥ १८ ॥ इसप्रकार पवित्र होकर दंतधावन करे । जले हुये और काटे जिसमें हों इन्हें छोड़कर अन्य वृक्षकी ॥ १९ ॥ कि जिसमें अच्छी सुगंधि हो ऐसी बड़ी कोमल दातन करे । व्रतके दिन तथा नौमी, षष्ठी, श्राद्धकी तिथि रविवार ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अमावास्या इनको दातन करनेसे सौकुलका नाश होता है । जिसदिन दातन नहीं कही है उसदिन वारह कुले करले ॥ २१ ॥ फिर पूजाकी सामग्री लेकर भगवान्के मंदिरमें जाय । जो वह नहो तो शिव, देवी सूर्य ॥ २२ ॥ अथवा गणेशजीके मंदिरमें, वा पीपलके नीचे वा गौशाला वा नदीके किनारे पूजा करै ॥ २३ ॥ फिर बुद्धिमान् पूजा करके गावै और नृत्य करै और जो गान आदि न करसकै तो गानेवालोंकाही सत्कार करै ॥ २४ ॥ जो कोई कार्तिकमें

अमायां दंतकाष्ठस्य योगाच्छतकुलक्षयः ॥ कुर्याद्वादशगंडूषाननुक्ते दंतधावने ॥ २१ ॥
गृहीत्वार्चनसामग्रीं ततो हरिगृहं व्रजेत् ॥ तदभावे शिवगृहे देव्या वा भास्करस्य च ॥ २२ ॥
अथवा तु गणेशस्य स्थाने पिप्पलसन्निधौ ॥ गोष्ठे वाथ नदीतीरे धृत्वा पूजां समाचरेत् ॥२३॥
ततो गायेत नृत्येत पूजा कृत्वा तु बुद्धिमान् ॥ अशक्तो गायनाद्येषु गायकानेव पूजयेत् ॥२४॥
तांडवेनापि नृत्यंति कार्तिके विष्णुसन्निधौ ॥ यद्वा तद्वापि गायंति यांति ते वैष्णवं पदं ॥२५॥
दीपान्दद्याद्बहुविधान्कार्तिके विष्णुसन्निधौ ॥ कार्तिके मासि संप्राप्ते गगने स्वच्छतारके ॥२६॥

भगवान्के सामने तांडव नृत्य करते हैं और जो कुछ मन आवै सो गाते हैं वे विष्णुपदको पाते हैं ॥ २५ ॥ कार्तिकमासमें विष्णुके समीप अनेक प्रकारके दीपक चढ़ावै । और कार्तिकमासमें जब आकाशमें निर्मल तारे छिटक रहेहों ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उसमय रात्रिमें लक्ष्मी संसारका कौतुक देखने आती है और वह लक्ष्मी जहांजहां दीपकोंको देखती है ॥ २७ ॥ वहां २ प्रीति करती है अंधेरेमें कभी वास नहीं करती । इसलिये कार्तिकमासमें सदा दीपक रखना चाहिये ॥ २८ ॥ लक्ष्मी चाहनेवालोंको विशेषकर दीपदान कहा गया है सो देवमंदिर, नदीके तीर, राजमार्ग, और विशेष करके ॥ २९ ॥ निद्राकी जगह जो दीपक चलाता है लक्ष्मी सदा उसके सामने रहती है । गरीबके दीपकशून्य घरको देखकर जो दिया

रात्रौ लक्ष्मीः समायाति द्रष्टुं भुवनकौतुकं ॥ यत्र यत्र च दीपान्सा पश्यत्यब्धिसमुद्भवा ॥२७॥
तत्र तत्र रतिं कुर्यान्नान्धकारे कदाचन ॥ तस्माद्दीपः स्थापनीयः कार्तिके मासि वै सदा ॥२८॥
लक्ष्मीरूपार्थिनां प्रोक्तं दीपदानं विशेषतः ॥ देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेषतः ॥ २९ ॥
निद्रास्थले दीपदाता तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ दुर्बलस्यालयं वीक्ष्य दीपशून्यं तु यो ददेत् ॥३०॥
विप्रस्य वान्यवर्णस्य विष्णुलोके महीयते ॥ कीटकंटकसंकीर्णे दुर्गमे विषमस्थले ॥ ३१ ॥
कुर्याद्यो दीपदानानि नरकं स न गच्छति ॥ एवं संकीर्त्तनं कृत्वा नाडीद्वयनिशामुखे ॥३२॥

देता है ॥ ३० ॥ वा ब्राह्मण वा अन्य वर्णके घर दिया जलाता है वह विष्णुलोकमें सुख भोगता है । कीडे कांटोंसे भरे हुये और जहां कोई न जाताहो ऐसे ऊंचे नीचे स्थलमें ॥ ३१ ॥ जो दीप दान करता है वह नरकमें नहीं जाता है । इसप्रकार संकीर्तन करके दोघड़ी रात रहे ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥

जलके पास आकर देश काल आदि संकल्प बोलै । गंगा आदि नदियोंका और विष्णु, शिव आदि देवताओंका स्मरण करै ॥ ३३ ॥ और कमरतक जलमें खड़ा होकर इस मंत्रका उच्चारण करै कि "हे जनार्दन ! कार्तिकमें मैं प्रातःस्नान करूंगा ॥ ३४ ॥ और हे देवेश ! हे कृष्ण ! हे दामोदर हे पापनाशक ! लक्ष्मीसहित तुम्हारे प्रीत्यर्थ इस नित्य नैमि-

आगत्य तोयनिकटे देशकालादि चोच्चरेत् ॥ स्मरेद्गंगादिका नद्यो विष्णुशर्वादिदेवताः ॥ ३३ ॥ नाभिमात्रे जले स्थित्वा मंत्रमेतमुदीरयेत् ॥ कार्तिकेहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ॥३४॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशन ॥ ३५ ॥ गृहणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती ॥ गंगा च यमुना चैव पंचनद्यः पुनंतु मां ॥ ३६ ॥ एतान्मंत्रान्समुच्चार्य मलस्नानं समाचरेत् ॥ ततस्तु पावमानीभिरभिषिंचेत्स्वमस्तकम् ॥ ३७ ॥ अघमर्षणकं कृत्वा वासः परिदधेत्ततः ॥ जाह्नवीस्मरणं कुर्यात्सर्वतीर्थेषु मानवः ॥ ३८ ॥ ॥ ॥ ॥

त्तिक कार्य युक्त कार्तिकमें ॥ ३५ ॥ हे विष्णुभगवन् ! तुम राधासहित मेरे दिये हुये अर्घको ग्रहण करो । और किरणा, धूतपापा, पवित्र जलवाली सरस्वती, गंगा और यमुना ये पाच नदियां मुझे पवित्र करें ॥ ३६ ॥ इन मंत्रोंको उच्चारण करके मल २ के स्नान करै । फिर उन पवित्र नदियोंसे अपने मस्तकपर अभिषेचन करै ॥३७॥ फिर अघमर्षण

करके वस्त्र धारण करै । मनुष्य सब तीर्थोंमें गंगाका स्मरण करै ॥ ३८ ॥ और गंगामें और तीर्थका स्मरण कभी न करै । स्नानांग और तर्पण करके बाहर आकर वस्त्र निचोड़ै ॥ ३९ ॥ शरीरके मलोंसे जो मैंने जलको अपवित्र किया है उसके दोष दूर करनेके लिये मैं कमलके पुष्पोंका तर्पण करताहूं ॥ ४० ॥ वस्त्रको निचोड़कर फिर तिलक लगावै । फिर

नान्यत्तीर्थं तु जाह्नव्यां स्मरणीयं कदाचन ॥ स्नानांगतर्पणं कृत्वा चांचलं पीडयेद्बहिः ॥ ३९ ॥
यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसंचयैः ॥ तद्दोषपरिहारार्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम् ॥ ४० ॥
वस्त्रनिष्पीडनं कृत्वा कुर्याच्च तिलकं ततः ॥ ततः संध्यामुपासीत स्वसूत्रोक्तेन वर्त्मना ॥ ४१ ॥
ततः कार्यो जपो देव्या यावदर्कोदयो भवेत् ॥ एतत्प्रोक्तं रात्रिशेषकृत्यं दैनमथोच्यते ॥ ४२ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अपने सूत्रसे कही हुई रीतिसे संध्या करै ॥ ४१ ॥ फिर जबतक सूर्योदय हो तबतक देवीका जप करै । यह रात्रिशेषका कृत्य कहा है अब दिनका कहा जाता है ॥ ४२ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ वालखिल्या बोले । हे मुनीश्वरो ! कार्तिकमासमे जो दिनका कृत्य है उसे सुनो । जिसके करनेसे यह सब कार्तिक सफल होय ॥ १ ॥ प्रातःसंध्याके अंतमें पहिले विष्णुसहस्र नामका पाठ करै फिर देव मंदिरमें आकर पूजाका आरंभ करै ॥ २ ॥ नृत्य और गान आदि कार्योंमें एक प्रहर दिन वितावै फिर आधे प्रहर अच्छी भांति पुराण सुनैं ॥ ३ ॥

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिके दिनकृत्यं यत्तच्छृण्वंतु मुनीश्वराः ॥ यस्मिन्कृते कार्तिकोयं सकलं सफलो भवेत् ॥ १ ॥ विष्णोः सहस्रनामाद्यं संध्यांते च पठेत्ततः ॥ देवालये समागत्य पुनः पूजनमारभेत् ॥ २ ॥ नृत्यगानादिकार्येषु प्रहरं दिवसं नयेत् ॥ ततः पुराणश्रवणं यामार्धं सम्यगाचरेत् ॥ ३ ॥ पौराणिकस्य पूजां च तुलसीपूजनं तथा ॥ कृत्वा माध्याह्निकं कर्म भुंजीत द्विदलोज्झितम् ॥ ४ ॥ बलिदानं वैश्वदेवमतिथीनां समर्पणम् ॥ कृत्वा भुंक्ते तु यो मर्त्यः केवलं चामृतं हि तत् ॥५॥ यथाशक्तिद्विजा भोज्याः प्रत्यहं वाथपर्वणि ॥ हविष्यभोजनं कुर्याद्धविष्यमथ चोच्यते ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

फिर पुराण सुनानेवालेकी और तुलसीकी पूजा करके, फिर मध्यान्हका कर्म करके दालको छोड़कर भोजन करै ॥ ४ ॥ वलिदान वैश्वदेव और अतिथियोंको समर्पण करके जो मनुष्य भोजन करता है वह केवल अमृत है ॥ ५ ॥ यथाशक्ति ब्राह्मणोंको नित्य वा पर्वके दिन भोजन करावै । और हविष्य भोजन करै ॥ अब हविष्य कहते है ॥ ६ ॥ ॥

हेमंतऋतुमें उत्पन्न हुआ स्वेत और कृष्ण धान्य मूंग, जव, तिल। नागरमोथा, कंगनी, सामा वथुआ, हिलसाका शाक यह हविष्यान्न है ॥ ७ ॥ और साठीके चावल नरईका शाक मूली और पान इनको छोड़दे। और कंद, सेंधानोन, समुद्रफेन, गौका दही और घी ॥ ८ ॥ और विना घी निकाला दूध, कटहर, आम, हड्ड। पीपल, जीरा, नारंगी, इमली

हैमंतिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः ॥ कलापकंगुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ॥७॥
षष्टिकाः कालशाकं च मूलकं क्रमुकेतरम् ॥ कंदः सैंधवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥ ८ ॥
पयोनुद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकी ॥ पिप्पली जीरकं चैव नारिंगं चैव तिंतिणी ॥ ९ ॥
कदलीलवलीधात्रीफलानि गुडमैक्षवम् ॥ अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते ॥ १० ॥
सर्वथैव न भोक्तव्यमामिषान्नं तु कार्तिके ॥ तत्सर्वदा वर्जनीयं कार्तिके तु विशेषतः ॥ ११ ॥
दग्धमन्नं द्विपक्वं च मसूरान्नं सवल्कलम् ॥ उद्दालकाः पर्युषितमन्नमामिषमुच्यते ॥ १२ ॥
वृंताकानि पटोलानि तुंबिका च कलिंगकम् ॥ विंबीफलानि त्रपुसं फलं शाकेषु चामिषम् ॥१३॥

॥ ९ ॥ केला, सुगंध मूली, आंवला, गन्नेका गुड़, और विना तेलकी वस्तु इसको मुनि हविष्यअन्न कहते हैं ॥ १० ॥ आमिषान्न सर्वथा भोजन नहीं करना चाहिये और विशेष करके कार्तिकमें तो सदा वर्जनीय है ॥ ११ ॥ जला हुआ अन्न, दोवार पकाया हुआ छिलके समेत दाल, मसूर, निसोढ़ा और वासी अन्न इसको आमिष कहते हैं ॥१२॥ वैगन, पड़वल,

घिया, तरबूज, कुंदरू, खीरा ये शाकमें आमिष हैं अर्थात् ये वर्जित हैं ॥ १३ ॥ रताल्, तुलसी, चौलाईका शाक, मजीठ खस २ के पत्ते, जटामांसी, ये पत्र शाकमें आमिष हैं अर्थात् वर्जनीय हैं ॥ १४ ॥ गाजर, सलगम, प्याज, लहसन, और जिमीकंद ये कार्तिकमे सदा आमिष हैं इन्हें कार्तिकमें कभी न खाना चाहिये ॥ १५ ॥ जो अधम मनुष्य औरोंके माससे अपने मांसको पुष्ट करता है वह दूसरे जन्ममें उसीकी विष्टामे कीड़ा होता है ॥ १६ ॥ जो दुष्ट

दोरका तुलसी चिल्ली छत्राकं पोस्तपत्रकम् ॥ चक्रवर्ती राजगिरिः पत्रशाकेषु चामिषम् ॥१४॥
गृंजरं रक्तमूलं च पलांडुं लशुनं तथा ॥ सर्वदैवामिषाणि स्युः कार्तिके सूरणं त्यजेत् ॥ १५ ॥
परमांसैः स्वमांसानि यः पुष्णाति नराधमः ॥ परजन्मनि तस्यैव विष्ठायां जायते कृमिः ॥१६॥
बालान् मृगान् पक्षिणो वा तथा बालफलानि च॥घातयंति दुरात्मानो जायंते मृतबालकाः॥१७॥
सर्वाण्येकत्र दानानि सर्वतीर्थान्यथैकतः ॥ सर्वव्रतान्येकतश्च अहिंसा कलया समं ॥ १८ ॥
एवं विचार्य भुंजीयादन्नं विष्णुनिवेदितं ॥ वैश्वदेवस्यांतरे तु य आगच्छति भिक्षुकः ॥ १९ ॥

मृग पक्षीके बच्चे और कच्चे फलोंका नाश करते हैं वे मरे हुये बालक उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥ एक २ करके सब दान एक २ करके सब तीरथ और एकसे लेकर सब व्रत अहिंसाकी एक कलाके समान है ॥ १८ ॥ ऐसा विचारकर भगवान्के अर्पण करके भोजन करे और वैश्वदेवके अनन्तर जो कोई भिक्षुक आजाय ॥ १९ ॥ ॥

वह चांडालहो वा चोरहो वह विष्णुका रूप है इसमें संदेह नहीं है । सायंकाल और प्रातःकाल वैश्वदेवके अनन्तर ॥ २० ॥ जो अतिथि विमुख जाता है तो वह मनुष्य दुख पाता है । इसप्रकार भोजन करै कि जूठा न वचै और फिर आचमन करै ॥ २१ ॥ दांतोंमें लगे हुये जूठे अन्नको वाहर निकाले परंतु दातोंको पीड़ा न दे । दातमे जो उच्छिष्ट दृढतासे लगा है वह तो दांतकेही समान है ॥ २२ ॥ उसके निकालनेसे जो कदाचित् रुधिर निकलै तो उसकी शुद्धिके

चांडालो वाथ चोरो वा विष्णुरूपी न संशयः ॥ सायंकाल उपःकाले वैश्वदेवस्य चांतरे ॥ २० ॥
अतिथिर्विमुखो याति स तु दुःखस्य भाजनं ॥ एवं भुक्त्वाचमेत्पश्चाद्यथोच्छिष्टं न तिष्ठति ॥ २१ ॥
दंतोच्छिष्टं शलाकाभिनिर्हरेन्नैव पीडयेत् ॥ दृढं यद्दंतसंलग्नमुच्छिष्टं तत्तु दंतवत् ॥ २२ ॥
तन्निष्कासनतश्चेत्स्यात्कदाचिद्रुधिरागमः ॥ चांद्रायणत्रयं कुर्यात्तस्य संशुद्धिहेतवे ॥ २३ ॥
भक्षयेत्तुलसीं वक्त्रशुध्यर्थं तीर्थवारिणा ॥ तुलस्याधारणं कार्यं कार्तिके तु विशेषतः ॥ २४ ॥
तुलस्यां सर्वतीर्थानि तुलस्यां सर्वदेवताः ॥ कार्तिके मासि तिष्ठंति नात्र कार्या विचारणा ॥२५॥

लिये तीन चांद्रायण व्रत करने चाहियें ॥२३॥ और मुखशुद्धिके लिये तीर्थके जलके साथ तुलसीदल खाले और विशेषकर कार्तिकमे तुलसी धारण करै ॥ २४ ॥ कार्तिकमें तुलसीमें सब तीर्थ और तुलसीमेंही सब देवता रहते है इसमें कुछ विचारका काम नही है ॥ २५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मरते समय जिसके मुखमें तुलसी गेरी जाती है वह महापापी, दुराचारी मगध देशमेंहीं क्यों न रहताहो ॥ २६ ॥ वह यमपुरीको नहीं जाता और विष्णुलोकमें सुख भोगता है ॥ तुलसीकी मंजरियोंसे विष्णुकी वा शिवकी ॥ २७ ॥ पूजा जो मनुष्य भक्तिमें तत्परहो सहस्रनामोंसे करता है उसे दान और व्रतोंसे क्या है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥२८॥ (तुलसी लेते समय यह मंत्र पढै) " हे तुलसी ! तुम अमृतसे उत्पन्न हुईहो तुम सदा भगवान्की प्रियाहो मैं भग-

यस्यैव मृत्युसमये तुलसी मुखसंस्थिता ॥ महापापो दुराचारः कीकटे वाससंस्थितः ॥ २६ ॥
न यात्यसौ संयमिनीं विष्णुलोके महीयते ॥ तुलसीमंजरीभिश्च विष्णोर्वाथ शिवस्य च ॥२७॥
सहस्रनामभिः कुर्यात्पूजां यो भक्तितत्परः ॥ किं दानैः किं व्रतैस्तस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२८॥
तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ॥ केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥ २९ ॥
मंत्रेणानेन तुलसीस्तुद्याद्वा हरितुष्टये ॥ अंगणे तु समालोक्य तुलसीनां कदंबकम् ॥ ३० ॥
तद्गृहं न विशंत्येव यमदूता न संशयः ॥ यत्किंचिद्दीयते दानं तुलस्या च समन्वितम् ॥ ३१ ॥

वान्के लिये तोड़ताहूं इसलिये हे सुन्दरी ! तुम वर देनेवाली होउ ॥ २९ ॥ इस मंत्रसे तुलसियोंको भगवान्के प्रीत्यर्थ तोड़ै । आंगनमें तुलसीके वनोंको देखकर ॥ ३० ॥ यमके दूत उस घरमें नहीं घुसते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ जो कुछ दान तुलसी धरकर दिया जाता है ॥ ३१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उसका अपार पुण्य कहा है और दानी मनुष्य नरकको नहीं जाता ॥ शेष दिनको संसारके व्यवहारसे बितादे ॥ ३२ ॥ फिर सायंकालको भगवान्के मंदिरको जाय । और संध्या करके अपनी शक्तिके अनुसार दीपदान करै ॥ ३३ ॥ फिर रात्रिके पहिले प्रहरमें जागरण करै और ब्रह्मचर्य करके जब स्त्रीका आदर कर चुकै ॥ ३४ ॥ फिर जो कामकी इच्छा हो तो भार्याके पास जानेमें दोषका भागी नहीं होता और भगवान्की प्रीतिके लिये अपनी प्यारी भोजन

अपारं तु प्रयुक्तं तन्न व्रजेन्नरकं नरः ॥ संसारव्यवहारेण दिनशेषं समापयेत् ॥ ३२ ॥ सायंकाले पुनर्गच्छेद्विष्णोर्देवालयं प्रति ॥ संध्यां कृत्वा प्रयुंजीत तत्र दीपान्यथाबलं ॥ ३३ ॥ निशायाः प्रहरे चाद्ये कुर्याज्जागरणं तथा ॥ ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्याद्भार्यायामादृतो तथा ॥ ३४ ॥ तया कामयमानो वा भार्यां गच्छेन्न दोषभाक् ॥ हरिसंतुष्ट्यै कार्यस्त्यागो वा स्वेष्टवस्तुनः ॥ ३५ ॥ मासांते द्विजवर्याय दद्यात्तद्व्रतपूर्त्तये ॥ सर्वव्रतानि चैकत्र सत्यव्रतमथैकतः ॥ ३६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं भाषेत सर्वदा ॥ अन्यधर्मेष्वधिकृतिः कुलजातिविभागतः ॥ ३७ ॥ ॥

आदिकी वस्तुओंका त्याग करना चाहिये ॥ ३५ ॥ और मासके अंतमें श्रेष्ठ ब्राह्मणको उस व्रतके सफल होनेके लिये छोड़ी हुई वस्तुओंका दानदे । देखो सब व्रत एक और हैं और सत्यव्रत एक और हैं ॥३६॥ इसलिये सब प्रकारसे सदा सत्य बोले । यद्यपि अन्य धर्मोंमें कुल और जातिके अनुसार जुदा २ अधिकार है ॥ ३७ ॥

परंतु कार्तिकमें सब लोग अधिकारी होते है। और कलियुगमें पापचित्तवालोंका कोई और उपाय नहीं है ॥ ३८ ॥ इसलिये अपने उद्धारके लिये मनुष्य यत्नपूर्वक कार्तिकका व्रत करै। ब्रह्महत्यादिक पाप तभीतक गर्जते हैं कि ॥ ३९ ॥ जबतक प्राणी आदरपूर्वक कार्तिकस्नान नहीं करता। जो कार्तिकमासमें अच्छे २ भोजन पदार्थसे गौग्रास दिया जाता है

अधिकारी कार्तिके तु सर्व एव जनो भवेत् ॥ कलौ कलुषचित्तानामुपायो नैव वर्तते ॥ ३८ ॥
उद्धारार्थं कार्तिकस्य व्रतं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ तावद्गर्जंति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ ३९ ॥
न कृतं कार्तिकस्नानं यावज्जंतुभिरादरात् ॥ गोग्रासः कार्तिके मासि विशेषाद्यैस्तु दीयते ॥ ४० ॥
तेषां पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोति पितामहः ॥ विष्णुदेवालयं प्रातः संमार्जयति कार्तिके ॥ ४१ ॥
तस्य वैकुंठभवने जायते सुदृढं गृहं ॥ दद्यात्कार्तिकमासे तु धर्मकाष्ठानि भूरिशः ॥ ४२ ॥
न तत्पुण्यस्य नाशोस्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥ सुधादि लापयेद्यस्तु कार्त्तिके विष्णुमंदिरे ॥ ४३ ॥
चित्रादिकं लिखेद्वापि मोदते विष्णुसन्निधौ ॥ रात्रिशेषे भवेत्स्नानमुत्तमं विष्णुतुष्टिकृत् ॥ ४४ ॥

॥ ४० ॥ उन पुण्योंका फल विधाता भी नहीं कह सक्ता है। जो कार्तिकमें प्रातःकाल विष्णुके मंदिरको झाड़ता है ॥ ४१ ॥ उसका वैकुंठभवनमें वड़ा पक्का घर बनता है। जो कार्तिकमासमें वहुतसा चंदन दान करता है ॥ ४२ ॥ तो सैंकडों किरोड़ों वर्षतक उसके पुण्यका नाश नहीं होता। जो कार्तिकमें विष्णुके मंदिरमें गोवर आदि लीपनेकी वस्तुसे लीपता है ॥ ४३ ॥ वा चित्र आदि

लिखता है वह विष्णुके पास सुख भोगता है। जो थोड़ी रात रहे स्नान होता है वह उत्तम और भगवान्को प्रसन्न करनेवाला है ॥ ४४ ॥ और सूर्योदयपर मध्यम इसलिये जबतक कृत्तिका अस्त नहो तबतक स्नान होना चाहिये नहीं तो कार्तिक स्नान नहीं है ॥ ४५ ॥ देवमंदिरमें वा तीर्थमे दुष्ट राजाओंने जो कर लगाया है उसे जो लोग छुड़वाते हैं उन्होका सदा धर्म रहता है ॥ ४६ ॥ स्त्रियोंको पतिकी आज्ञा लेकर स्नान करना चाहिये । जो पतिसे विना पूछे धर्म किया जाता है वह भर्ताके क्षय करनेवाला है

सूर्योदये मध्यमं स्याद्यावन्नास्ता तु कृत्तिका ॥ तावदेव भवेत्स्नानमन्यथा तन्न कार्तिकम् ॥४५॥ देवालये वा तीर्थे वा कृतो दुष्टैर्नृपैः करः ॥ तं मोचयंति ये लोकास्तेषां धर्मः सनातनः ॥ ४६ ॥ स्नानं स्त्रीभिर्विधातव्यं गृहीत्वाज्ञां धवस्य च ॥ अपृष्ट्वा यत्कृतं धर्म्यं भर्तारं तत्क्षयं नयेत् ॥ ४७ ॥ स्त्रीणां नास्त्यपरो धर्मो भर्तारं प्रोज्झ्य काश्यप ॥ कुर्यात्सहस्रपापानि भर्त्राज्ञां या समाचरेत् ॥ ४८ ॥ सैषा धर्मवती लोके न जायेत व्रतादिना ॥ दरिद्रः पतितो मूर्खो दीनोपि यदि चेत्पतिः ॥ ४९ ॥ तादृशः शरणं स्त्रीणां तत्त्यागान्निरयं व्रजेत् ॥५०॥ इति सनत्कु॰संहि॰कार्ति॰नियमकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ७

॥ ४७ ॥ हे काश्यप ! भर्ताको छोड़ स्त्रियोका दूसरा धर्म नहीं है । जो हजारों पापकरे परंतु भर्ताकी आज्ञापर चलै ॥ ४८ ॥ वही संसारमें पतिव्रता है कोई व्रत आदि करनेसे पतिव्रता नहीं होती है । जो पति दरिद्री, पतित, मूर्ख, और दीन, भी हो ॥ ४९ ॥ तो वैसेही पतिकी शरणमे स्त्रियोंको रहना चाहिये उसके त्यागनेसे स्त्री नरकको जाती है ॥ ५० ॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये नियमकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥

॥ अरुण बोले । हे भगवन् ! हे भूतभावन ! कार्तिकका फल विशेष करके किस तीर्थमें वा क्षेत्रमें होता है सो कहिये ॥ १ ॥ सूर्य बोले । कार्तिकमें जहां कहीं हो जलमें स्नान करना चाहिये परंतु कार्तिकमें गरम जलमें कहीं भी स्नान करै ॥ २ ॥ पहिले कहे हुये जलसे दश गुणा पुण्य शीत जलसे स्नान करनेका है । उससे सो गुणा पुण्य वाहर

॥ अरुण उवाच ॥ कस्मिंस्तीर्थे विशेषेण फलं कार्तिकसंभवम् ॥ क्षेत्रे वा एतदाख्याहि भगवन् भूतभावन ॥ १ ॥ सूर्य उवाच ॥ यत्र कुत्रापि कर्त्तव्यं जले स्नानं तु कार्तिके ॥ उष्णोदकेन कर्त्तव्यं स्नानं कुत्रापि कार्तिके ॥ २ ॥ ततो दशगुणं पुण्यं शीततोयनिमज्जनात् ॥ ततः शतगुणं पुण्यं वहिः कूपोदके कृतम् ॥ ३ ॥ कूपात्सहस्रगुणितं फलं वापीनिषेकतः ॥ ततो युतगुणं पुण्यं तडागस्नानतो भवेत्॥४॥ ततो दशगुणं पुण्यं निर्झरेषु निमज्जनात् ॥ ततोधिकतरं पुण्यं नदीस्नानस्य कार्तिके ॥ ५ ॥ नद्यां दशगुणं प्रोक्तं तीर्थस्नाने खगोत्तम ॥ ततो दशगुणं पुण्यं नद्योर्यत्र च संगमः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

कूपके जलसे स्नान करनेका है ॥ ३ ॥ कूपसे हजार गुना फल वावड़ीमें न्हानेका है और उससे दस हजार गुना फल तालावमें स्नान करनेसे होता है ॥ ४ ॥ उससे दसगुना पुण्य झरनोंमें न्हानेसे होता है । उसमे अधिकतर पुण्य कार्तिकमें नदीके स्नानसे होता है ॥ ५ ॥ और हे खगोत्तम ! नदीसे दसगुना पुण्य तीर्थमें स्नान करनेका कहा है । और

उससे दसगुना पुण्य नदियोंके संगममे करनेसे होता है ॥ ६ ॥ जहां तीन नदियोंका संगम है उसमे स्नान करनेके पुण्यका अंत नहीं है समुद्र, कृष्णा, त्रिवेणी, यमुना और सरस्वती ॥ ७ ॥ गोदावरी, विपाशा नर्मदा, तमसा, मही, कावेरी, सरजू, क्षिप्रा, और चर्मण्वती नदी ॥ ८ ॥ वितस्ता, वेदिका, शोण, वेत्रवती, अपराजिता गंडकी, गोमती पूर्णा, ब्रह्मपुत्र सरोवर ॥ ९ ॥ वाग्मती, शतद्रु, और वदरिकाश्रम हे श्रेष्ठ अरुण ! ये तीर्थ कार्तिकमें दुर्लभ है ॥ १० ॥

नदीत्रयस्य संयोगे पुण्यस्यांतो न विद्यते ॥ सिंधुः कृष्णा च वेणी च यमुना च सरस्वती ॥७॥
गोदावरी विपाशा च नर्मदा तमसा मही ॥ कावेरी शरयू क्षिप्रा तथा चर्मण्वती नदी ॥८॥
वितस्ता वेदिका शोणो वेत्रवत्यपराजिता ॥ गंडकी गोमती पूर्णा ब्रह्मपुत्रसरोवरम् ॥ ९ ॥
वाग्मती च शतद्रुश्च तथा वदरिकाश्रमः ॥ दुर्लभाः कार्तिके त्वेते तीर्थाश्चारुणसत्तम ॥ १० ॥
सर्वेभ्यश्च स्थलेभ्यश्च आर्यावर्तस्तु पुण्यदः ॥ कोल्हापुरी ततः श्रेष्ठा ततः कांचीद्वयं स्मृतम् ॥११॥
अवंतसेवनं पुण्यं वराहक्षेत्रमेव च ॥ चक्रक्षेत्रं ततः पुण्यं मुक्तिक्षेत्रं ततोधिकम् ॥ १२ ॥

सब जगहोसे आर्यावर्तमें पुण्य अधिक है। और उससे कोल्हापुरी श्रेष्ठ है और उससे दोनों कांची श्रेष्ठ कही हैं ॥११॥ और उससे वराह क्षेत्रमें भगवान्का पूजनका अधिक फल है। और उससे चक्र क्षेत्रका और उससे मुक्ति क्षेत्रका अधिक फल है ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उससे अवंतिका क्षेत्र श्रेष्ठ है और उससे बदरिकाश्रम श्रेष्ठ है। और उससे अयोध्या तथा उससे गंगोत्री श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ उससे कनखल तीर्थ और उससे मधुपुरी श्रेष्ठ है। मथुराके यमुना जलमें एक भी कार्तिक ॥ १४ ॥ जिन्होंने स्नानकर लिया वे वैकुंठमें बहुत कालतक वास करते हैं। क्योंकि वहा कार्तिकमें राधा दामोदरने स्वयं स्नान किया है ॥१५॥ इससे मधुपुरी श्रेष्ठ है और विशेष करके यमुनाजी। और मधुपुरीसे द्वारावती श्रेष्ठ है कि जहां भगवान् नित्य ॥ १६ ॥

अवंतिका ततः श्रेष्ठा ततो बदरिकाश्रमः॥ अयोध्या च ततः श्रेष्ठा गंगाद्वारं ततोधिकम् ॥१३॥
ततः कनखलं तीर्थं ततो मधुपुरी वरा ॥ एकोपि कार्तिको मासो मथुरायमुनाजले ॥ १४ ॥
यैः स्नातस्ते तु वैकुंठे बहुकालं वसंति हि ॥ राधादामोदरस्तत्र स्वयं स्नातस्तु कार्तिके ॥ १५ ॥
अतो मधुपुरी श्रेष्ठा यमुना च विशेषतः ॥ द्वारावती ततः श्रेष्ठा प्रत्यहं स्नाति केशवः ॥ १६ ॥
षोडशस्त्रीसहस्रेण सार्धं यादवसंयुतः ॥ द्वारकायां मृत्तिकायास्तिलको येन मस्तके ॥ १७ ॥
धार्यतेसौ नरो ज्ञेयो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ द्वारकास्नानमाहात्म्यं न वक्तुं शक्यते मया ॥१८॥

सोलह हजार गोपिकाओंके साथ और यादव सहित स्नान करते हैं। द्वारकामें जो मृत्तिकाके तिलकको मस्तकपर लगाता है ॥ १७ ॥ उस मनुष्यको जीवन्मुक्त जानना चाहिये इसमें संदेह नहीं है। द्वारकाके स्नानका माहात्म्य मैं नहीं कह सक्ता हूं ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

जिन्होंने भगवान्में चित्त लगा रक्खा है उनको बड़ा भारी पुण्य होता है । और सब जगहोंसे भागीरथी श्रेष्ठ है कि जिसका किंचिन्मात्रसे संगम होजाता है ॥१९॥ और उससे दशगुना पुण्य प्रयागमें प्राप्त होता है । गंगाजीके नामका उच्चारणमात्रसे जो फल होता है ॥ २० ॥ वह हजार तीर्थोंमें स्नान और ध्यान करनेसे नहीं मिलता । जो मनुष्य

गोविंदार्पितचित्तानां जायते पुण्यभास्करः ॥ नदी भागीरथी श्रेष्ठा यत्र क्विचन संगता ॥ १९ ॥
तस्माद्दशगुणं पुण्यं तीर्थराजे प्रजायते ॥ नामोच्चारणमात्रेण गंगाया यत्फलं भवेत् ॥ २० ॥
न तत्सहस्रतीर्थानां स्नानाद्ध्यानाच्च लभ्यते ॥ गंगागंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ २१ ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ येषां येषां न पापानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २२ ॥
तानि तानि विनश्यंति गंगाबिंदोस्तु स्पर्शतः ॥ ये निंदंति नदीं गंगां ते नरा नरकौकसः ॥
अयं ब्रह्मद्रवः साक्षान्महेशेन धृतः स्वके ॥ २३ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सर्वे गंगामुपासते ॥
कल्पो दशसहस्रांते विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीं ॥ २४ ॥ ॥ ॥

सौ योजनसे गंगा गंगा कहता है ॥ २१ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है । जिन २ पापोंका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ २२ ॥ वेही २ पाप गंगाजीकी बूंदके स्पर्शसे नाश होजाते हैं । जो कोई गंगा नदीकी निन्दा करते हैं वे नरकमें वास करते हैं ॥ इस साक्षात् ब्रह्मद्रवको शिवजीने अपने मस्तकपर धरा है ॥ २३ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश

सब गंगाजीकी उपासना करते हैं। कलियुगमें दश हजार वर्षके अंतमें भगवान् पृथ्वीको छोड़देंगे ॥ २४ ॥ उससे आधे वर्षोंमें अर्थात् ५००० वर्षोंमें गंगाजी और उससे आधेमें अर्थात् ढाई हजार वर्षमें देवता चले जांयगे जबतक पृथ्वीपर गंगाजी है तबतक तीर्थ है ॥ २५ ॥ और तभीतक वे अपने २ स्थानमें मनुष्योंके पाप हरते हैं। जब गंगाजी नष्ट होजायंगी तो कौन उस पापको हरैगा ॥ २६ ॥ ऐसा विचारकर श्रेष्ठ तीर्थ पृथ्वीतलमें चले जायंगे । इसलिये सब

तदर्धं जाह्नवीतोयं तदर्धं देवतागणाः ॥ यावत्तिष्ठति गंगात्र तावत्तीर्थानि संति च ॥ २५ ॥
स्वस्वस्थाने नृणां पापं तावदेव हरंति च ॥ यदैव गंगा नष्टा स्यात्को वा तत्पापमाहरेत् ॥२६॥
विचार्यैवं सुतीर्थानि गमिष्यंति धरातले ॥ तस्मान्मुनीश्वरैः सर्वैर्यावत्तिष्ठति जाह्नवी ॥ २७ ॥
तावच्च क्रियतां धर्मस्ततो भूमौ निलीयतां ॥ समाधिं गृह्य सुदृढां यावत्कृतयुगं भवेत् ॥२८॥
अन्यथा कलिकालेन भ्रंशनीया मुनीश्वराः ॥ ततः श्रेष्ठतरा काशी यस्या नाशो न जायते ॥२९॥
यदाश्रयेण गंगापि सर्वपापं व्यपोहति ॥ काशिकाया नैव नाशो ब्रह्मण्यपि मृतौ सति ॥ ३० ॥

मुनीश्वर जबतक गंगाजी है ॥ २७ ॥ तबतक धर्म करलें फिर वह पृथ्वीमें लय होजायगा। और जबतक सतयुग नहीं होगा तबतक बड़ी दृढ़ समाधिको लेकर बैठेंगे ॥ २८ ॥ नहीं तो कलिकाल मुनीश्वरोंका नाशकर देगा। इसलिये काशी बड़ी श्रेष्ठ है कि जिसका नाश नहीं होता ॥२९ ॥ और जिसके आश्रयसे गंगा भी सब पापोंको दूरकर देती है।

ब्रह्मके नाश होने पर भी गंगाका नाश नहीं होता ॥ ३० ॥ और काशीमें पुण्य और पाप जो कुछ काम करो सैंकडों करोड़ों कल्पतक नाश नहीं होता ॥ ३१ ॥ जिस काशीके दर्शनके लिये गंगा भी उत्तरवाहिनी होगई हैं उसमें पंच गंगा तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है ॥ ३२ ॥ मैंने वहां तप किया है और मेरे पसीनेसे किरणा नदी निकली और

तथा काशीकृतं कर्म सुकृतं चापि दुष्कृतं ॥ नैव नाशं समायाति कल्पकोटिशतैरपि ॥ ३१ ॥ यद्दर्शनार्थं गंगापि जाता चोत्तरवाहिनी ॥ तस्यां पंचनदीतीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतं ॥ ३२ ॥ मया तत्र तपस्तप्तं प्रस्वेदात्किरणा नदी ॥ गभस्तीशादधोभागे गंगया सह संगता ॥ ३३ ॥ धूतपापापि तत्रैव चंद्रांशकसमुद्भवा ॥ रुद्रांशकसमुद्भूता स्वयं भागीरथी स्थिता ॥ विष्णोरंशसमुद्भूता यमुना यत्र संगता ॥ ३४ ॥ ब्रह्मांशसंभवा यत्र दृश्यते तु सरस्वती ॥ तीर्थं पंचनदं नाम भूमावेकं विराजते ॥ ३५ ॥ आगते कार्तिके मासि रौरवं नरकं गताः ॥ आक्रोशंते तु पितरो वंशेस्माकं भविष्यति ॥ ३६ ॥ ॥ ॥

गभस्तीश्वरके नीचे गंगाजीमें मिलगई ॥ ३३ ॥ और वहांही चंद्रके अंशसे उत्पन्न हुई धूतपापा नदी है। और अंशसे उत्पन्न स्वयं गंगाजी है। और विष्णुके अंशसे उत्पन्न यमुना आ मिली है ॥ ३४ ॥ और ब्रह्मके अंशसे उत्पन्न वहां सरस्वती दीख रही है। सो पृथ्वीपर यह एकही पंचनद नाम तीर्थ विराजमान है ॥ ३५ ॥ जब कार्तिक मास आता

है तब रौरव नरकमें गिरे हुये पितर पुकार मचाते हैं कि हमारे वंशमें ॥ ३६ ॥ कोई भाग्यवानोंमें श्रेष्ठ होगा कि जो सुन्दर पंचनदपर जाकर नरकसे तारनेवाले हमारे तर्पणको करैगा ॥३७॥ जब कार्तिक आता है तो प्रयाग आदि जितने तीर्थ है पंच गंगापर स्नान करने आते है इसमें संदेह नहीं है ॥ ३८ ॥ पवित्र पंचनदमें स्नान करतेही और बिंदुमाधवकी पूजा करनेसे उसी क्षण लाखों पाप नाश होजाते हैं ॥ ३९ ॥ जिसने जन्मभरमें एकवार भी पवित्र पंचनदमें स्नान

कश्चित् भाग्यवतां श्रेष्ठो गत्वा पंचनदे शुभे ॥ अस्माकं तर्पणं कुर्यान्नरकार्णवतारकम् ॥३७॥
तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्तिकमासके ॥ स्नानार्थं पंचगंगं तु समायांति न संशयः ॥ ३८ ॥
कृत्वा तु लक्षपापानि स्नात्वा पंचनदे शुभे ॥ बिंदुमाधवमभ्यर्च्य विलयं यांति तत्क्षणात् ॥ ३९ ॥
जन्ममध्ये सकृदपि स्नानं पंचनदे शुभे ॥ बिंदुमाधवमभ्यर्च्य मुक्तो जन्मांतरे भवेत् ॥ ४० ॥
दद्याद्रात्रौ पंचनदे दीपं यो विधिपूर्वकम् ॥ तस्य वंशे प्रजायंते बालकाः कुलदीपकाः ॥ ४१ ॥
कार्तिके मासि यो विप्रो गभस्तीश्वरसन्निधौ ॥ शतरुद्रीजपं कृत्वा मंत्रसिद्धिः प्रजायते ॥ ४२ ॥

और बिंदुमाधवका पूजन किया है वह जन्मांतरमें मुक्त होजाता है ॥ ४० ॥ जो रात्रिमें विधिपूर्वक पंचनदको दीपक चढाता है उसके वंशमें कुलदीपक बालक उत्पन्न होते हैं ॥ ४१ ॥ जो ब्राह्मण कार्तिकमासमें गभस्तीश्वरके सामने रुद्रीके सौ पाठ सुनाता है वह मंत्र सिद्ध होजाता है ॥ ४२ ॥ ॥ ॥ ॥

और हे सारथि! दिनमें निश्चय सब तीर्थ उस तीर्थपर जाते हैं और काशीके तीर्थयात्राके अर्थ कहीं भी नहीं जाते ॥ ४३ ॥ परंतु वे सब पवित्र पंचनदपर स्नानके लिये आते हैं। मणिकर्णिका भी आती है फिर और पुरवालोंका क्या कहना है वे तो आतेही हैं ॥ ४४ ॥ प्रथमतो मनुष्य देह दुर्लभ है फिर काशीपुरी दुर्लभ और उसमें भी कार्तिकमासमें पंचगंगा बहुतही दुर्लभ है ॥ ४५ ॥ जिन्होंने कार्तिकमासमें एकवार भी शुभ पंचनदमें गोता लगया है उसका फल सब तीर्थोंके स्नानसे करोड़ गुना अधिक होता है

सर्वतीर्थानि गच्छंति तत्तीर्थं दिने खलु ॥ यात्रार्थं काशिकास्थानि न यांति क्वापि सारथे ॥४३॥ तानि सर्वाणि चायांति स्नातुं पंचनदे शुभे ॥ मणिकर्ण्यपि चायाति पुर्यादीनां च का कथा ॥ ४४ ॥ दुर्लभो मानुषो देहो दुर्लभा काशिकापुरी ॥ तत्रापि कार्तिके मासि पंचगांगं सुदुर्लभम् ॥ ४५ ॥ यैः स्नातं कार्तिके मासि सकृत्पंचनदे शुभे ॥ सर्वतीर्थकृतात्स्नानात्फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ ४६ ॥ वाराणस्यां तु यैः स्थित्वा त्रिवर्षं कार्तिकव्रतम् ॥ सोपांगं सांगं यैर्मर्त्यैः कृतं भक्त्यैकतत्परैः ॥ ४७ ॥ इह लोके फलं तेषां प्रत्यक्षं जायते खग ॥ संपत्त्या चैव संतत्या यशोभिर्धर्मबुद्धिभिः ॥ भवंति संयुता ब्रूहि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४८॥ इति श्रीसनत्कु॰संहि॰कार्ति॰पुण्यतीर्थकथनं नाम अष्टमोऽध्यायः॥८॥

॥४६॥ काशीमें रहकर जो मनुष्य एक भक्त होकर तीन वर्षतक कार्तिका व्रत सांगोपांग करते हैं ॥ ४७ ॥ तो हे खग इस संसारमें उन लोगोंको प्रत्यक्ष फल मिलता है। औ वे लोग संपत्ति, संतान यश और धर्म बुद्धि इनको पाते हैं। अब कहो क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४८ ॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये पुण्यतीर्थकथनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥

॥ ऋषि बोले । अब हमसे कार्तिकके उपांग कहिये कि जिनके करनेसे संपूर्ण कार्तिकके व्रतका फल होजाय ॥ १ ॥ ॥ वालखिल्या बोले ॥ आश्विनशुक्लपक्षकी जो पूर्णिमा होती है उसे कोजागरी कहते हैं उसदिन लक्ष्मीका पूजन और रात्रिको जागरण करे ॥ २ ॥ नारियलका जल पीकर पासोंसे खेले रातमें वरके देनेवाली लक्ष्मी कौन जागता है ऐसे

॥ ऋषय ऊचुः ॥ कार्तिकस्य उपांगानि व्रतानि कथयंतु नः ॥ कृतेषु येषु भवति संपूर्णं कार्तिकव्रतम् ॥ १ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ आश्विने शुक्लपक्षे तु भवेद्या चैव पूर्णिमा ॥ तत्रादौ पूजनं कुर्यात् श्रियो जागृतिपूर्वकम् ॥ २ ॥ नारिकेरोदकं पीत्वा अक्षक्रीडां समाचरेत् ॥ निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी ॥ ३ ॥ जगत्प्रभ्रमते तस्यालोकचेष्टावलोकिनी ॥ तस्मै वित्तं प्रयच्छामि यो जागर्ति महीतले ॥ ४ ॥ सर्वथैव प्रकर्त्तव्यं व्रतं दारिद्र्यभीरुभिः ॥ एतद्व्रतप्रभावेण वलितोप्यभवद्धनी ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वलितः प्रोच्यते कोसौ लब्धवान्स कुतो व्रतम् ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूत वालखिल्यास्तपस्विनः ॥ ६ ॥ ॥

कहती हुई कि ॥ ३ ॥ "पृथ्वीतलपर जो जागता है उसको धन देतीहूं ॥" संसारमें भ्रमण करती है और जागनेवालेकी मुख और काम देखती है ॥ ४ ॥ दरिद्रसे डरनेवालोंको सदा उसका व्रत करना चाहिये । इस व्रतके प्रभावसे वलित ब्राह्मण धनी होगया ॥ ५ ॥ ऋषि बोले ॥ जिसकी बात कह रहे हो वह वलित कौन है और उसने व्रत कहांसे पाया

हे वालखिल्या ! हे तपस्विओ ! यह हमसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ ६ ॥ वालखिल्या बोले । मगध देशमें कुशका पुत्र वलित नाम एक ब्राह्मण था । वह अनेक विद्याओंका जाननेवाला और स्नानसंध्याशील था ॥ ७ ॥ और वह श्रेष्ठ ब्राह्मण मांगनेको मरणके समान मानता था । घर आ जाता सो लेलेता पर कभी दूसरेसे याचना नहीं करता ॥ ८ ॥ उसकी स्त्री बड़ी कर्कशा थी नित्य क्लेश किया करे कि मेरी बहिन तो सोने चान्दीके गहनोंसे मजी रहती है ॥ ९ ॥ और

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ ब्राह्मणो वलितो नाम मागधः कुशसंभवः ॥ नानाविद्याप्रवीणोसौ स्नानसंध्यापरायणः ॥ ७ ॥ याचनं मरणं तुल्यं मन्यतेसौ द्विजोत्तमः ॥ गृहागतं स गृह्णाति नान्यं याचयते क्वचित् ॥ ८ ॥ तस्य भार्या महाचंडी नित्यं कलहकारिणी ॥ मद्भगिन्यः स्वर्ण-रौप्यालंकारादिविभूषिताः ॥ ९ ॥ नानामाल्यांबरधरा दृश्या देवांगना इव ॥ अहं दरिद्रस्य गृहे पतितास्मि दुरात्मनः ॥ १० ॥ लज्जा मां वाधतेत्यर्थं ज्ञातीनां मुखदर्शने ॥ धिगस्तु चैतद्विद्याया निर्धनस्य कुलस्य च ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

अनेक प्रकारकी माला और वस्त्र पहिरती है और वह दूसरी देवांगनाके समान दीखती है और मैं दुष्ट दरिद्रीके घर आगिरीहूं ॥ १० ॥ मुझे तो जातिवालोंके सामने मुख दिखाते बड़ी लाज आती है । सो ऐसी विद्या और निर्धन कुलको धिक्कार है ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

लोगोंके सामने ऐसा कहती और पतिका कहा नहीं करती । और उसने एक संकल्प करलिया था कि जो भर्ता कहै गा ॥ १२ ॥ उससे उलटा करूंगी कि जबतक लक्ष्मी प्रसन्न न होगी । उसने पतिसे कहा हे भर्ता ! हे पाषाणबुद्धि ! तू राजाके घरमें चोरी कर ॥ १३ ॥ और बहुतसा धन ला नहीं तो मैं तुझे मारूंगी । कभी रोती कभी नहीं खाती कभी बहुत खाती ॥ १४ ॥ वह उसके सिरपर मारती और इस प्रकार पतिको बड़ा क्लेश देती ॥ और वह याचनाके

एवं वदति लोकेषु न करोति पतीरितम् ॥ संकल्पं कृतवत्येकं यद्यद्भर्ता वदिष्यति ॥ १२ ॥
विपरीतं करिष्यामि यावल्लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ भर्तः पाषाणबुद्धे त्वं चौर्यं कुरु नृपालये ॥ १३ ॥
आनीयतां धनं भूरि नो चेत्संताडयाम्यहम् ॥ क्षणं रोदिति नाश्नाति कदाचिद्बहु खादति ॥१४॥
सा कपालं ताडयति एवं क्लेशयते पतिम् ॥ सोढा तस्यास्तु चरितं याचना दुःखभीतितः ॥१५॥
नोवाच वचनं किंचिद्यथालाभेन तोषितः ॥ एकस्मिन् श्राद्धपक्षे तु उद्विग्नोभूद्द्विजोत्तमः ॥ १६ ॥
एतस्मिन्वत्सरे सर्वं श्राद्धसामग्रिकं गृहे ॥ वर्तते गृहिणी चेयं न करिष्यति किंचन ॥ १७ ॥

दुःखके डरसे उसके चरित्रको सह लेता था ॥ १५ ॥ और कुछ नहीं कहता था। जैसे मानो कोई लाभमें संतुष्ट बैठा हो । एक दिन श्राद्ध पक्षमें वह श्रेष्ठ ब्राह्मण बड़ा घबराया कि ॥ १६ ॥ इस वर्ष श्राद्धकी सब सामग्री घरमें है परंतु यह घरवाली कुछ नहीं करेगी ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इससे ब्राह्मणका मन तो दुखी हुआ परंतु कुछ कह नहीं सका और जब वह चिंतामें मग्न था उस समय उसके पास एक उत्तम मित्र आया ॥ १८ ॥ उसका नाम गणपति विख्यात था और जब वह पास आया तो वलितने पहिलेके समान वात नही की तब मित्रने कहा ॥ १९ ॥ हे वलित ! किस कारण तुह्मारा चित्त चिंतायुक्त होरहा है । मै अवश्य

इत्युद्विग्नमना विप्रो भाषते न च किंचन ॥ चिंतयाविष्टमेवं तमाययौ मित्र उत्तमः ॥ १८ ॥
नाम्ना गणपतिः ख्यातस्तस्मिन्नभ्यागते सति ॥ नोवाच पूर्ववद्वार्तां मित्रं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
भो भो वलित चित्तं ते किमर्थं चिंतयान्वितम् ॥ अवश्यं स्वधिया कृत्वा चिंतां ते निर्हराम्यहम्
॥ २० ॥ वलित उवाच ॥ अधुना पितृपक्षे तु पितुः श्राद्धं समागतम् ॥ सामग्रिकं चास्ति गृहे
विपरीतकरी प्रिया ॥ २१ ॥ कथं संपाद्यते श्राद्धमितिचिंतायुतोस्म्यहम् ॥ गणपतिरुवाच ॥
धन्योसि कृतकृत्योसि भार्या यस्येदृशी गृहे ॥ २२ ॥ ब्रूहि त्वं वैपरीत्येन भार्या कार्यं करि-
ष्यति ॥ वलितस्तु तथेत्युक्त्वा सायं भार्यामभाषत ॥ २३ ॥ ॥ ॥

अपनी बुद्धिसे तुह्मारी सब चिंता दूरकर दूंगा ॥ २० ॥ वलित बोला । अब पितृपक्षमें पिताका श्राद्ध आया सो घरमें सामग्री तौ है परंतु स्त्री उलटा करनेवाली है ॥ २१ ॥ श्राद्ध कैसेहो यही चिंता मुझे लग रही है । गणपति बोला । तुमको धन्य है तुम कृतकृत्य हो कि जिसके घरमें ऐसी स्त्री है ॥ २२ ॥ तुमें जो करनाहो उससे उलटा कहो तो स्त्री

काम करैगी । वलितने अच्छा ऐसा कहकर संध्याको स्त्रीसे कहा ॥ २३ ॥ हे अनर्थ करनेवाली ! हे चंडी ! परसो मेरे पिताका श्राद्ध है उन पापात्माने मेरे लिये कुछ धन नहीं छोड़ा ॥ २४ ॥ इसलिये तू शीघ्र रसोई मत करियो और जो करै तो ज्वारी और शुद्धाचारसे रहित ब्राह्मणोंको ॥ २५ ॥ न्यौता दीजियो हे कल्याणि ! अच्छे ब्राह्मणोंको कभी न दीजो ॥ भर्ताका यह वचन सुनकर उसने वड़ी तयारी करी ॥ २६ ॥ उसने अच्छे २ ब्राह्मणोंको न्यौता दिया और

अनर्थकारके चंडी परश्वः श्राद्धकं पितुः ॥ न स्थापितं धनं यस्मान्मदर्थे तैस्तु पापकैः ॥२४॥
तस्मान्न पाकं शीघ्रं त्वं कुरु दुष्टे करोपि चेत् ॥ ब्राह्मणा ये द्यूतकाराः शौचाचारविवर्जिताः॥२५॥
निमन्त्र्यास्ते त्वया भद्रे नोत्तमास्तु कदाचन ॥ इति भर्तृवचः श्रुत्वा संभारस्तु महान्कृतः ॥२६॥
निमंत्रिताश्च सद्विप्राः काले पाकस्तया कृतः ॥ विपरीतैरेव वाक्यैः श्राद्धं संपादितं तया ॥ २७ ॥
पिंडदानं ततः कृत्वा भार्यां वचनमब्रवीत् ॥ विस्मृत्य पिंडान्नीत्वा त्वं क्षिप गंगाजले शुभे ॥२८॥
पिंडा नीतास्तथेत्युक्त्वा शौचकूपे व्यपक्षिपत् ॥ तज्ज्ञात्वा वलितो दुःखी वभूवाकुलिताननः॥२९॥

समयपर पाक भी तयार करलिया । और पतिके कहनेके विपरीत उसने अच्छे प्रकारसे श्राद्ध करलिया ॥ २७ ॥ फिर वलितने पिंडदान करके स्त्रीसे भूलकर यह कहदिया कि पिंडोंको लेजाकर पवित्र गंगाजलमें वहा आ ॥ २८ ॥ पर उस स्त्रीने अच्छा कहकर और पिंडोंको लेकर उन्हें शौचके कुयेमें फैंक दिये यह जानकर वलित बड़ा दुखी

हुआ और उसका मुख उदास होगया ॥ २९॥ क्रोधके मारे घरसे निकल गया और उसने यह संकल्प किया कि जो लक्ष्मी प्रसन्न होगी तो मैं अन्न भोजन करूगा ॥ ३० ॥ तवतक मैं कंद फल खाऊंगा और वनमें रहूंगा । वह ब्राह्मण ऐसा संकल्प करके गहरे निर्जन वनमें चला गया ॥ ३१ ॥ और अकेला धर्म नदीके किनारे वृक्षकी छाल धारण करके वीस दिनतक रहा इतनेमें आश्विनशुक्ला पूर्णमासी आगई ॥ ३२ ॥ उस वनमें काली नागके वंशकी सुन्दर नेत्रवाली नाग-

क्रोधाद्विनिर्ययौ गेहात्संकल्पं कृतवानिति ॥ लक्ष्मीर्यदि प्रसन्ना स्यात्तदान्नं भक्षयाम्यहम् ॥३०॥
तावत्कंदफलाहारो वनमध्ये वसाम्यहम् ॥ इति संकल्प्य विप्रः स गहने निर्जने वने ॥ ३१ ॥
एको धर्मनदीतीरे वृक्षवल्कलधारकः ॥ विंशद्दिनानि न्यवसदागता चैषपूर्णिमा ॥ ३२ ॥
कालीवंशसमद्भूता नागकन्याः सुलोचनाः ॥ निवसंत्यो वने तस्मिन्व्रतं चक्रू रमाप्तये ॥ ३३ ॥
श्वेतीकृतं तु सुधया गृहं चंद्रगृहोपमम् ॥ मंडलानि विचित्राणि नानापिष्टैः कृतानि च ॥ ३४ ॥
पंचामृतानि रत्नानि दर्पणाच्छादनानि च ॥ स्थापयित्वेंदिरापूजा कृता ताभिः प्रयत्नतः ॥३५॥

कन्या रहतीथीं उन्हों लक्ष्मीप्राप्तिके लिये व्रत किया ॥ ३३ ॥ उन्होंने अपने घरको चंद्रगृहके समान अमृतसे श्वेत किया और अनेक प्रकारके चूर्ण वा रंगोंसे भांति २ के विचित्र चौक पूरे ॥ ३४ ॥ और उन्होंनें बड़ी भक्तिसे पंचामृत, रत्न, दर्पण और चंदोये लटकाके और लक्ष्मीकी स्थापना करके पूजन किया ॥ ३५ ॥ ॥ ॥

और इसप्रकार उन कन्याओंने पहिला प्रहर तो बिताया । और फिर जब जुआ आरंभ हुआ तब उन्हें कोई चौथा मनुष्य नहीं मिला ॥ ३६ ॥ और चारके विना पासोंका खेल नहीं होता इसलिये चौथा कोई ढूंढना चाहिये ऐसा विचार उनमेंसे एक बाहर निकली ॥ ३७ ॥ और उस कन्याने नदीके तीरपर वलित ब्राह्मणको देखा और उसके मुखकी आकृतिसे उसे सुन्दर चलनवाला और चिंतायुक्त जानकर ॥ ३८ ॥ वह सुन्दर वचन बोली कि हे ब्राह्मण !

एवं तु प्रथमो यामो वालाभिर्नीत एव हि ॥ प्रारब्धं तु ततो द्यूतं तुर्यं तास्तु न लेभिरे ॥ ३६ ॥
चतुर्भिस्तु विनाक्षाणां क्रीडनं नैव जायते ॥ तस्मान्मृग्यस्तुरीयस्तु विचार्यैवं विनिर्गता ॥ ३७ ॥
कन्यका तु नदीतीरे ददर्श वलितं द्विजम् ॥ ज्ञात्वा तं साधुचरितं सचिंतं च मुखाकृतेः ॥ ३८ ॥
उवाच वचनं चारु द्विज कोसि समागतः ॥ याह्यद्य क्रीडितुं द्यूतं रमाप्रीतिकरं परम् ॥ ३९ ॥
इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा वलितो वाक्यमब्रवीत् ॥ वलित उवाच ॥ द्यूतेन क्षीयते लक्ष्मीर्द्यूताद्धर्मो विनश्यति ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥

तुम कौनहो और कहांसे आयेहो आज तुम लक्ष्मीको बडा प्रसन्न करनेवाले जुयेको खेलने चलो ॥ ३९ ॥ इसप्रकार उसका वचन सुनकर वलितने कहा ॥ वलित बोला । जुयेसे तो लक्ष्मी घटती है और जुयेसे धर्मनाश होजाता है ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तू बावलीके समान क्या कहती है जुयेसे लक्ष्मी कैसे प्रसन्न होती है। कन्याने कहा कि पंडितके न्याई बात करते हो मूर्खके न्याई काम करते हो ॥४१॥ आश्विनशुक्ल पूर्णिमाके दिन जुआसे लक्ष्मी प्रसन्न होता है जुआ खेल चुको तब लक्ष्मीका कौतुक देखना ॥४२॥ यह कहकर वह कन्या उसे अपने घर जुआ खेलनेको लेगई और उसे नारियलका जल और भोजन आदि

मुग्धवद्वदसे किं त्वं कथं लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ कन्योवाच ॥ भाषसे त्वं पंडितवत्कर्म तेऽस्ति तु मूर्खवत् ॥ ४१ ॥ इषस्य शुक्लपूर्णायां द्यूताल्लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ द्यूतक्रीडां तु कृत्वैव कौतुकं पश्य चैंदिरम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वासौ तया नीतः क्रीडार्थं स्वस्य मंदिरे ॥ दत्त्वा तस्मै नारिकेलं जलं भक्ष्यादिकं तथा ॥ ४३ ॥ आरब्धं च ततो द्यूतं श्रीलक्ष्मीः प्रीयतामिति ॥ लापितानि च रत्नानि कन्याभिर्ब्राह्मणेन तु ॥ ४४ ॥ कौपीनं लापितं स्वीयं ताभिर्निर्जितमेव तत् ॥ ब्राह्मणः क्रोधसंयुक्तः किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ ४५ ॥ उपवीतं लापयित्वा ततः स्वीयं कलेवरम् ॥ लापयिष्ये विनिश्चित्य उपवीतं ललाप सः ॥ ४६ ॥ ॥ ॥

देकर ॥४३॥ "श्रीलक्ष्मी इससे प्रसन्न होय" ऐसा कहकर जुआ आरंभ हुआ। कन्याओंने रत्न लगाये और ब्राह्मणने तो ॥४४॥ अपनी कौपीन लगाई सो कन्याओंने उसे जीत लीनी। फिर ब्राह्मण बड़ा क्रोधित हुआ कि अब मुझे क्या करना चाहिये ॥४५॥ फिर यह निश्चय करके कि यज्ञोपवीतिको लगाकर फिर अपने शरीरको लगाऊंगा उसने उपवीत लगादिया ॥४६॥

उन्होंने उसे भी जीत लिया फिर ब्राह्मणने अपने शरीको भी लगादिया इतनेमें जब आधी रात होगई तब दोनों लक्ष्मी और नारायण ॥ ४७ ॥ संसारका चरित्र देखनेको आये और उन्होंने ब्राह्मणको देखा कि न यज्ञोपवीत है और न कौपीन है और चिंताने उसे सुखा रक्खा है ॥ ४८ ॥ फिर विष्णुभगवान्‌ने कहा हे लक्ष्मीजी ! सुनों इस ब्राह्मणने तुह्मारा व्रत किया है फिर इसे चिंताने क्यों घेरा है ॥ ४९ ॥ इसलिये इसे शीघ्र लक्ष्मीवान् और सुखी करो । भगवा-

ताभिर्जितं च तदपि शरीरं लापितं स्वकम् ॥ ततोर्धरात्रे संजाते लक्ष्मीनारायणावुभौ ॥४७॥
आगतौ लोकचरितं द्रष्टुं विप्रं ददर्शतुः ॥ व्युपवीतं विकौपीनं चिंतयातिकृशीकृतम् ॥ ४८ ॥
उवाच वचनं विष्णुः शृणु त्वं पद्मलोचने ॥ तव व्रतकरो विप्रः कथं जातः स चिंतकः ॥४९॥
तस्मादेनं कुरु क्षिप्रं लक्ष्मीवंतं सुखोचितम् ॥ इति विष्णुवचः श्रुत्वा पद्मयासौ कटाक्षितः ॥५०॥
बालाचित्तहरोजातस्तत्क्षणं मदनोपमः॥ ततः कामेन संविद्धास्तास्तिस्रो नागकन्यकाः ॥५१॥
विप्राय वचनं प्रोचुः शृणु विप्र तपोधन ॥ यद्यस्माभिर्जितस्त्वं चेद्भर्त्तास्माकं वचोनुगः ॥ ५२॥

न्‌का यह वचन सुनकै लक्ष्मीने इसके ऊपर दृष्टि गेरी ॥ ५० ॥ फिर तो यह उसी क्षण तरुण स्त्रियोंके चित्त हरने-वाला कामदेवके समान होगया । फिर वे तीनों नागकन्या कामसे विधगई ॥ ५१ ॥ और ब्राह्मणसे बोलीं कि हे ब्राह्मण ! हे तपोधन ! जो हम तुह्मैं जीतलें तो तुम हमारे भर्ता और हमारा कहा मानना ॥ ५२ ॥

और जो तुम हमें जीतलो तो जो तुह्मैं अच्छा लगै सो करना । उनका यह वचन सुनकर वह ब्राह्मण भी मान गया ॥ ५३ ॥ और खेलनेसे उसने उन कन्याओंको जीतलिया और उनसे गांधर्व विवाह करलिया और उनके रत्न और उनको लेकर अपने घर गया ॥ ५४ ॥ मैंने चंडीके तिरस्कारसे इस उत्तम भाग्यको पाया है इसलिये उसने चंडीका

वयं त्वया निर्जिताश्चेद्यथेच्छसि तथा कुरु ॥ इति तासां वचः श्रुत्वा तथा मन्ये स च द्विजः ॥५३॥
क्रीडनात्ता जिताः कन्या गांधर्वेण विवाहिताः॥तासां रत्नानि ताश्चापि गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ॥५४॥
प्राप्तं चंडीतिरस्कारान्मयेदं भाग्यमुत्तमम् ॥ तस्मात्संमानिता चंडी सापि प्रीता बभूव ह ॥ ५५ ॥
चकार स्वामिनश्चाज्ञामित्थं लक्ष्मीव्रतं त्विदम्॥वहुरात्रिव्यापिनी या सा च पूर्णा विशिष्यते ॥५६॥
एवं लक्ष्मीव्रतं कृत्वा न दरिद्रो न दुःखभाक् ॥ कथां श्रुत्वा विधानेन व्रतस्यापि फलं भवेत् ॥ ५७ ॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये इषपूर्णिमाव्रतकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

सन्मान किया और वह भी प्रसन्न हुई ॥ ५५ ॥ और स्वामीकी आज्ञा करने लगी । इस भांति इस लक्ष्मीके व्रतको जिसदिन रात्रिको विशेष पूर्णमाहो उसदिन करै ॥ ५६ ॥ इसप्रकार लक्ष्मीका व्रत करनेसे न दरिद्री होता है और न दुःख भोगता है । और विधिपूर्वक कथा सुननेसे भी व्रतका फल होता है ॥ ५७ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये इषपूर्णिमाव्रतकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ वालखिल्या बोले। कार्तिककृष्णपक्षकी प्रतिपदासे पूर्णिमातक हे ऋषि श्रेष्ठो! आकाश दीपदान करो ॥१॥ जब तुलाके सूर्य
हों तब कार्तिकमें जब सायंसंध्या हो तब तिलके तेलसे बराबर एक महीनेतक आकाश दीपक का दान करता है ॥२॥ और
सुन्दर देहवाले भगवान्‌के प्रीत्यर्थ जो बलाता है लक्ष्मी उसे नहीं छोड़ती। आकाश दीपकका बांस उत्तम बीस हाथका होता

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कृष्णादिमासक्रमतः कार्तिकस्यादिमासतः ॥ आकाशदीपदानं तु
कुर्वंतु ऋषिसत्तमाः ॥ १ ॥ तुलायां तिलतैलेन सायंसंध्यासमागमे ॥ आकाशदीपं यो दद्या-
न्मासमेकं निरंतरम् ॥ २ ॥ स श्रीकाय श्रीपतये श्रिया न स वियुज्यते ॥ आकाशदीपवंश-
स्तु विंशद्धस्तोत्तमो भवेत् ॥ ३ ॥ मध्यमो नवहस्तः स्यात्कनिष्ठः पंचहस्तकः ॥ यथा दूरस्थितै-
र्लोकैर्दृश्यते तत्तथाचरेत् ॥ ४ ॥ तथाभ्रादिकरंडेषु दीपदानं विशेष्यते ॥ वंशस्य नवमांशेन
लंबा कार्या पताकिका ॥ ५ ॥ मयूरपिच्छमुष्टिं वा कलशं चोपरिन्यसेत् ॥ विष्णुप्रीतिकरो
दीपः पित्रुद्धारस्य कारकः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

है ॥३॥ मध्यम नौ हाथका और कनिष्ठ पांच हाथका। पर ऐसा बलावे कि दूरके लोगोंको भी दीखै ॥४॥ भोडल आदिकी
लाल टेनोंमें दीपदान अच्छा होता है वांसके नवें भागकी एक लंबी पताका बनावै ॥५॥ उसके ऊपर मयूरके पंखोंका मोर-
छल लगावै वा कलशको उसके ऊपर लगावै यह दीपक विष्णुको प्रसन्न करनेवाला और पितृओंका उद्धारक है ॥ ६ ॥

एकादशीसे वा तुलाके सूर्यसे दीपक जलाना कहा है इसलिये कार्तिकमें जब तुलाके सूर्य हों तब दामोदरजीके लिये आकाशमे दीपक लटकावै ॥ ७ ॥ (और यह मंत्र पढ़ै) "हे अनंत भगवान् आपको नमस्कार है यह दीपक तुह्मारे अर्पण करताहूं" आकाशदियेके समान पितरोंको उद्धार करनेवाला कोई नही है ॥ ८ ॥ इस विषयमें एक पुरानी

एकादश्यास्तुलार्काद्वा दीपदानमतोपि वा ॥ दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह ॥ ७ ॥ प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोनंताय वेधसे ॥ आकाशदीपसदृशं पितुरुद्धारकं नहि ॥ ८ ॥ अत्रार्थे कथयिष्यामि चेतिहासं पुरातनम् ॥ विप्रोभवच्च विंध्याद्रौ हेलीको नाम तापसः ॥ ९ ॥ वेदशास्त्रप्रवीणश्च ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ तस्य पुत्रद्वयं जातं चित्रभानुर्मनोजवः ॥ १० ॥ वेदपाठादिनिरतावुभौ धर्मपरायणौ ॥ द्यूतस्य व्यसनं जातं तयोर्दैवस्य योगतः ॥ ११ ॥ व्यसनेन तु तेनैव पितृद्रव्यं विनाशितम् ॥ जातं परस्त्रीव्यसनं युवावस्थावतोस्तयोः ॥ न जायंते निर्धनानां द्यूतं वेश्यास्त्रियोपि च ॥ १२ ॥ ॥ ॥

कथा कहूंगा कि विंध्याचलमें एक हेलीक नाम तपस्वी ब्राह्मण रहता था ॥ ९ ॥ वह वेद शास्त्र पढ़ा और ज्ञान विज्ञान युक्त था। उसके दो पुत्र हुये चित्रभानु और मनोजव ॥ १० ॥ वे दोनों वेद पाठ करते और धर्ममें तत्पर थे परंतु दैवयोगसे उन दोनोंको जुयेकी धत पड़ गई ॥ ११ ॥ उस धतसे उन्होंने पिताका धन नाश करदिया और

वे दोनों जवान थे इसलिये उन्हें परस्त्रीगमनका भी व्यसन लग गया । निर्धनियोंको द्यूत और वेश्या स्त्रियां कहां मिल सक्ती है ॥ १२ ॥ इसलिये उन दोनोंने चोरी करनेकी ठहराई और वहां चोरी करनेलगे फिर जब लोगोंने इन दोनोंको जान लिया ॥ १३ ॥ फिर वे उस देशको छोड़कर गहन वनमें चलेगये और सब धर्मसे रहित हो शिकार करके अपना जीवन विताने लगे ॥ १४ ॥ प्रातःकाल स्नान करके वे दोनों एक धर्मपर स्थिर होगये । उस वनमें एक भिल्लोंका राजा

चौर्यं विधीयतां तस्मादेवं मंत्रयतुश्च तौ ॥ चक्रतुस्तत्र चौर्याणि लोकैर्ज्ञाताविमाविति ॥ १३ ॥
ततः संत्यज्य तं देशं ययतुर्गहनं वनम् ॥ मृगया जीविनौ जातौ सर्वधर्मवहिष्कृतौ ॥ १४ ॥
प्रातःस्नानं प्रकुर्वंतावेकं धर्मं समाश्रितौ ॥ तस्मिन्वने निवसति भिल्लींद्रो जिलझिल्लिकः ॥ १५ ॥
ननानी नाम तत्कन्या सौंदर्यस्यैकशेवधिः ॥ दृष्ट्वा तौ तरुणौ शूरावुभावपि तयावृतौ ॥ १६ ॥
तया सर्वं पितुर्द्रव्यं ताभ्यां सर्वं समर्पितम् ॥ एकं धर्मं सापि चक्रे पित्रर्थं दीपदानकम् ॥ १७ ॥
एकदा तु तया प्रोक्तौ ननान्या भ्रातरावुभौ ॥ अद्य मज्जनकश्राद्धं लुंठनीयो न कोपि हि ॥ १८ ॥

जिल झिल्लक रहता था ॥ १५ ॥ उसकी कन्याका नाम निनानी था और वह सुन्दरताकी एक खान थी । उसने उन दोनोंको जवान और शूर देखकर अपने फंदेमें लेलिया ॥ १६ ॥ और उसने अपने पिताका सब धन उनको दे दिया । परंतु उसने एक धर्म किया कि पिताके अर्थ आकाश दीपक जलाया ॥ १७ ॥ एकवार उन निनानीने उस दोनों भाइ-

योंसे कहा कि आज मेरे पिताका श्राद्ध है सो आज किसीको लूटना मत ॥ १८ ॥ और तुम दोनों युवा ब्राह्मणहो और मैं तुह्मै इच्छाभोजन कराऊंगी और अन्य भी कोई ब्राह्मणहों उनको भी मैं सब भांति जिमाऊंगी ॥ १९ ॥ और मैं ब्रह्मचर्य व्रतसेहूं और तुम भी दोनों रहो और उसने उनसे कहा कि मेरे साथ आज गमन मतकरना ॥ २० ॥

उभावपि युवां विप्रौ मया भोज्यौ यथेप्सितम् ॥ अन्येपि केचिद्विप्राश्चेन्मया भोज्यास्तु सर्वथा॥१९॥
ब्रह्मचर्यव्रतं चाहं युवामपि तथाविधौ ॥ मया सह न संयोगः क्रियतामिति साह तौ ॥ २० ॥
ततस्तयातिसंभारा मांसानि विविधानि च ॥ शाकपाकादिकं सर्वं तया निष्पादितं ततः ॥२१॥
ताभ्यां भुक्तं यथेच्छान्नं बह्वतीव कनीयसः ॥ ततस्त्वजीर्णमभवदसाध्यमविलंबकम् ॥ ततः
कालवशं प्राप्तो वने तस्मिन्मनोजवः ॥ २२ ॥ बद्ध्वा यामभटैर्नीतः संयमिन्यां च कुट्टितः ॥
चित्रगुप्तस्तु तं दृष्ट्वा दूतान्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २३ ॥ नयत्वेनं तु पापिष्ठमंधतामिस्रसंज्ञके ॥
त्यजंतु कुंभीपाके च शीर्षं संस्फोटयंतु च ॥ २४ ॥ ॥ ॥

फिर उसने अनेक भातिके वड़े २ मांसोंके भार, शाक, पाक आदि सब तयार किये ॥ २१ ॥ उन दोनोंने मनमाना खाया और छोटे भाईने वहुतही खाया। सो उसे शीघ्र अजीर्ण होगया फिर वह मनोजव उसी वनमें मरगया ॥ २२ ॥ यमके दूत उसे कुटीसे यमपुरीको लेगये और चित्रगुप्त उसे देख दूतोंसे यह बात कहने लगे कि ॥ २३ ॥ इस पापीको

कुंभीपाके ततः क्षिप्तो नायं तस्मिन्विमुच्यते ॥ अंधतामिस्रके क्षिप्तस्तत्र पश्यति हृष्टवत् ॥२५॥
इत्याश्चर्ययुता दूता धर्मराजं व्यजिज्ञपुः ॥ दूता ऊचुः ॥ कुंभीपाकेपि संतप्ते क्षिप्तोस्माभिर्मनोजवः ॥ २६ ॥ न तस्य जायते पीडा स्नाति मर्त्यो यथा जले ॥ यम उवाच ॥ आनीयतां ततस्तूर्णमीषत्पुण्यं मनोजवम् ॥ २७ ॥ धर्मराजाज्ञया तैस्तु समानीतोस्य संनिधौ ॥
दृष्ट्वा तं धर्मराजोपि दूतानाज्ञापयत्तदा ॥ २८ ॥ सदास्य ज्ञानशीलत्वात्कुंभीपाको न वाधते ॥
ननान्या कल्पितो दीपः पित्रर्थे गगने शुभः ॥ २९ ॥

फिर उसे कुंभीपाकमें छोड़ दो ॥ २४ ॥ फिर उसे कुंभीपाकमें छोड़ा सो उसमें तो वह पापसे नहीं छूटा परंतु जब अंधतामिस्रमें फेंका तो वहां वह प्रसन्नके समान देखता रहा ॥२५॥ दूतोंनें आश्चर्ययुक्त होकर यह बात धर्मराजसे कही। दूत बोले॥ हमने मनोजवको बड़े तत्ते कुंभीपाकमें भी फेंका ॥ २६ ॥ परंतु उसे पीडा नहीं होती। वह उसमें ऐसे न्हाता है जैसे मनुष्य जलमें न्हाताहो। यमने कहा॥ उसमेंसे शीघ्र मनोजवको लेआओ उसका थोड़ा पुण्य है॥ २७॥ धर्मराजकी आज्ञासे वे दूत उसे बांधकर धर्मराजके पास लेआये फिर धर्मराजने उसे देखकर दूतोंको आज्ञा दी कि ॥ २८ ॥ सदा ज्ञानी होनेसे इसे कुंभीपाकमें पीड़ा नहीं होती और ननानीने जो पिताके अर्थ सुन्दर आकाशदीपक चढ़ाया था ॥ २९ ॥

वह उसके हाथसे नहीं गिरा उसका वीसवें अंशका फल इसे भी मिला वही पुण्य तामिस्रका नाशक है ॥ ३० ॥ इन दोनों पुण्यके भारसे इसका नरकमें वास नहीं होसक्ता । इसलिये इसे पिशाच योनिमे करदो वहां यह अपने कर्मका भोग भोगेगा ॥३१॥ फिर यह पिशाच होकर उसी पीपलपर ग्रहादिकोंको दिये हुये अन्नको खाकर वहां रहा करै ॥३२॥ एक समय कृष्णपक्षकी चौदसके दिन जव संध्याकाल आया और वह ननानी पिताके अर्थ दीपदान करनेको हुई

न क्षिप्त एव तद्धस्तात्तद्विंशांशफलं तु तत् ॥ अनेन लब्धं तस्यैव पुण्यं तामिस्रनाशनम् ॥ ३० ॥
पुण्यद्वयभरादस्य निरये वसतिर्नहि ॥ तस्मात्पिशाचदेहोयं क्रियतां कर्मभोगभाक् ॥ ३१ ॥
ततः पिशाचो भूत्वासौ तस्मिन्नेव तु पिप्पले ॥ ग्रहादिभ्यो दत्तमन्नं भुक्त्वा तत्रैव तिष्ठति ॥ ३२ ॥
एकदा तु चतुर्दश्यां संध्याकाले उपस्थिते ॥ कृष्णपक्षे दीपदानं कर्तुं पितृहिताय सा ॥ ३३ ॥
ननान्युपगतो भर्ता मृगयार्थं क्वचिद्गतः ॥ स्नात्वा स्वच्छांवरं धृत्वा नानालंकारभूषिता ॥ ३४ ॥
ययौ सा दीपदानार्थं आक्रांता तेन रक्षसा ॥ पूर्वजन्मनि संबंधो येषां येषां प्रजायते ॥ ३५ ॥

॥ ३३ ॥ उस समय ननानीका पति तो कहीं शिकार खेलने चला गया । और वह स्नानकर धुले सुन्दर वस्त्र पहिर भांति २ के आभूषण पहिर ॥ ३४ ॥ दीपदानके लिये गई सोही उसपर राक्षस चढ़ बैठा । जिन २ का पूर्वजन्मका नाता होता है ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

भूत उसेही पकड़ते हैं दूसरोंको कभी नहीं पकड़ते । ज्यौंही भूतने उस तरुण स्त्रीको पकड़ा सोही वह क्षणभरमें नंगी होगई ॥ ३६ ॥ और अपने भूषण आदि उतार कर फेंक दिये कभी हंसे कभी रोवै कभी गीत गावै कभी अपना शरीर कूटै ॥ ३७ ॥ कभी नाचै फिर क्षणभरमें दातोंको चवावै । सब भील और भिल्लनी और उसके दास दासी ॥ ३८ ॥ भाई बेटे सब आगये और हजारों मनुष्य जुड़ गये । कोई कहै इसे बात आगई कोई कहै इसपर पिशाच है

त एव भूतैर्धर्ष्यंते न कदाचित्परे जनाः ॥ तेन धृष्टा तु सा बाला क्षणान्नग्ना बभूव ह ॥ ३६ ॥
त्यक्त्वा भूषणकाद्यं च जहास च रुरोद च ॥ गीतं गायति चात्मानं कदाचित्ताडयत्यपि ॥ ३७ ॥
नृत्यं च कुरुते क्वापि क्षणाद्दन्तांश्च खादति ॥ सर्वे भिल्ला भिल्लपत्न्यस्तद्दासा दासिकास्तथा ॥३८॥
भ्रातृपुत्रादिकाः सर्वे आगतास्तु सहस्रशः ॥ कश्चिद्वदति वातोयं कश्चिद्वक्ति पिशाचकः ॥ ३९ ॥
डाकिनीं शाकिनीं केचिदाभिचारमथापरे ॥ यक्षदेवं दानवं च धत्तूरादिकभक्षणम् ॥ ४० ॥
तर्कयंति परे लोका दुष्टजीवस्य दंशनम् ॥ भ्रियतां वध्यतामेके धूप्यतां दीप्यतां परे ॥ ४१ ॥

॥ ३९ ॥ कोई कहै डाकिनी शाकिनी हैं कोई कहै किसीने इसपर मूठ फैंकी है कोई कहै इसपर यक्ष देव दानव है कोई कहै इसने धतूरा खा लिया है ॥ ४० ॥ और कितनेही लोग कहने लगे इसे किसी दुष्ट जीवने काट खाया है कोई कहै इसे पकड़कर बांधलो कोई कहै इसे धूप दो और दिया चढ़ाओ ॥ ४१ ॥ ॥ ॥

कोई उसे झाड़ा फूकी करते हैं और दवाई भी खिलाते हैं। इस अवसरमें उसका पति चित्रभानु आगया ॥ ४२ ॥ उसने मंत्र जाननेवालोंको बुलाया और वहुतसे उपाय किये। उसने किसीको मारा किसीसे कभी जानेके लिये कहा ॥ ४३ ॥ किसीको वहुतसा डराया कभी उलटा कहने लगती है कभी कहती है कि मैं नहीं जाऊंगी वलदान लेकर जाऊंगी ॥ ४४ ॥ कभी रस्सीके बांधनेसे अधिक मूर्छित होकर बैठ जाती है। कभी उलूखलको तोड़ती है कभी

कश्चिन्मंत्रयते तां च भेषजं चापि कुर्वते ॥ एतस्मिन्नंतरे भर्ता चित्रभानुः समाययौ ॥ ४२ ॥
आकारितास्तु मंत्रज्ञा उपाया वहवः कृताः॥ कंचित्ताडयते सापि गन्तुं वदति कर्हिचित् ॥४३॥
कंचिद्भीषयतेत्यर्थं वलगत्यपि कदाचन ॥ वलिदानादि गृह्णामि गच्छामीति वदत्यपि ॥ ४४ ॥
वद्धा क्वचिद्दोरकेण तिष्ठत्यतिविमूर्छिता ॥ भिनत्त्युलूखलं क्वापि गृहं पातयति क्वचित् ॥४५॥
एवं जाता त्वसाध्या सा गृहमध्ये निवेशिता ॥ एकदा तेन मार्गेण वहुशः केरला जनाः ॥ ४६ ॥
पंचह्रदोदकं गृह्य केरलेश्वरशासनात् ॥ भाद्रे मासि प्रस्थितास्ते तद्गृहे वसतिः कृता ॥ ४७ ॥

घरको गिराती है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार जब वह असाध्य होगई तो लोगोंने उसे घरमें लाकर धरी ॥ एक समय उस मार्गसे वहुतसे केरल मनुष्य ॥ ४६ ॥ भादोंके महीनेमें पंचगंगाका जल लेकर केरलेश्वरपर चढ़ाने लियें जाते थे सो वे उस घरमें ठहरे ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उसमेंसे किसी पंडितने रात्रिको पंचगंगाका स्तोत्र । रामरक्षा और विष्णुपंजर आदिका पाठ किया ॥ ४८ ॥ उसे सुनकर वह पिशाच अपने मनमें बड़ा सुखी हुआ । और वंधन आदिको तोड़कर और उस चेष्टाको छोड़ दीनी कि जिससे वह स्त्री भी अच्छी होगई ॥ ४९ ॥ फिर उस भक्तने शयनके लिये विस्तरा विछाया और स्थान शुद्धिके लिये उस यात्रीने वहां पंचगंगाका जल छिड़का ॥ ५० ॥ हे गरुड ! छिड़कतेमें उस भूतके सिरपर भी इधर उधर बूंदे पड़ीं और

तेषां मध्ये सुधीः कश्चिद्रात्रौ पांचनदस्तवम् ॥ अपठद्रामरक्षादि विष्णुपंजरकादि च ॥ ४८ ॥
तच्छ्रुत्वा तु पिशाचोसौ जातः सुस्वस्थमानसः ॥ संछिद्य वंधनाद्यं च त्यक्त्वा चेष्टां सुसंस्थिता ॥ ४९ ॥
ततस्तेन तु भक्तेन शयनास्तरणः कृतः ॥ चिक्षेप स्थानशुद्ध्यर्थं पंचगंगोदकं च तैः ॥ ५० ॥
इतस्ततस्तच्छिरसि विंदवः पतिताः खग ॥ ज्ञानं तस्य समुत्पन्नं विंदुस्पर्शनमात्रतः ॥ ५१ ॥
उवाच वचनं चारु के भवंतः समागताः ॥ तोयमेतत् स्थितं कुत्र किं वा ज्ञानोदकं त्विदम् ॥ ५२ ॥
मह्यं किंचित्प्राशनार्थं दीयतां स्वल्पमेव हि ॥ कृपालुना तेन दत्तं जलं पांचजलं शुभम् ॥ ५३ ॥

बिंदुओंके स्पर्शमात्रसे उसे ज्ञान होगया ॥ ५१ ॥ और सुन्दर वचन बोला कि आप कहांसे आयेहो । यह जल कहांका धरा है अथवा यह ज्ञानका जल है ॥ ५२ ॥ मुझे थोड़ासा आचमनके लिये दो । फिर उस कृपालु ब्राह्मणने पंचगंगाका पवित्र जल दिया ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उसके पीतेही छिनभरमें उसकी निर्मल बुद्धि होगई। और पूर्वजन्मकी तथा यमलोकमें जानेकी याद आई ॥ ५४ ॥ और उसने जाकर भाईके दोनों चरण पकड़ लिये और रोने लगा। और अपनी दशा कही और कहा कि इसका उपाय करो ॥ ५५ ॥ उसके भाईने सब यात्रियोंसे पूछा और वे बड़े आदरसे बोले ॥ यात्री कहने लगे। काशीके

तत्पीत्वा विमला बुद्धिः क्षणादेवाभ्यजायत ॥ पूर्वजन्म च संस्मार यमलोकागमं तथा ॥५४॥ गत्वा भ्रातुः स चरणौ धृत्वा दीनं रुरोद ह ॥ आत्मनश्च गतिः प्रोक्ता उपायोस्य विधीयताम् ॥ ५५ ॥ भ्रात्रा सर्वे कार्पटिका पृष्टास्ते ऊचुरादरात् ॥ कार्पटिका ऊचुः ॥ जानाति काशी-तीर्थानां महिमानं स ईश्वरः ॥ ५६ ॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण पिशाचोभूत्स सात्विकः ॥ अस्मभ्यं दीयते राज्ञा एको ग्रामश्च वार्षिकम् ॥ ५७ ॥ स्वर्णमुद्राशतं काशीजलाहरणहेतवे ॥ गम्यतां पंचदिवसैर्भवद्भिः काशिकापुरीम् ॥ ५८ ॥ तिष्ठंति पंडितास्तत्र विचार्या गतिरुत्तमा ॥ एवं तद्वचनं श्रुत्वा गृहीत्वा साधनं बहु ॥ ५९ ॥ ॥ ॥

तीर्थोंकी महिमाको तो वह ईश्वर जानता है ॥ ५६ ॥ कि जिसके जलके स्पर्शमात्रसे पिशाच सात्विकरूप होगया। राजा हमें एक गांव दे और हरवर्ष ॥ ५७ ॥ सौ अशर्फियां काशीसे गंगाजल लानेको दिया करै। और तुम पांच दिनमें काशीपुरीको जाओ ॥ ५८ ॥ वहां पंडित हैं और वे इसकी उत्तम गतिको विचारेंगे। इसप्रकार उनका वचन

सुनके और बहुतसी सामग्री लेकर ॥ ५९ ॥ उसने कुटुंबसहित शिवजीके रहनेकी काशीपुरीके दर्शन किये । काशीमें
घुसते समय शिवजीके गणोंने उसे बाहर करदिया ॥ ६० ॥ उसके शरीरसे वह पिशाच बड़ी करुणासे बोला । हे भाई!
ये गण मुझे रोकते हैं सो मेरा उद्धार करो ॥ ६१ ॥ उसका यह वचन सुनकर चित्रभानु आया और काशीमें पण्डि-
तोंसे यह सब वृत्तांत कह सुनाया ॥ ६२ ॥ उन्होंने उसकी मोक्षके लिये बताया कि आकाशदीपक जलाना चाहिये ।

सकुटुंबः काशिकां स ददर्श हरसेविताम् ॥ काशी प्रवेशकाले तु गणै रौद्रैर्निराकृतः ॥ ६० ॥
तच्छरीरात्पिशाचोसौ उवाच करुणं वचः ॥ भ्रातर्गणा मां रुंधंति ममोद्धारो विधीयतां ॥ ६१ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य चित्रभानुः समागतः ॥ काश्यां सकलवृत्तांतं पंडितेभ्यो न्यवेदयत् ॥ ६२ ॥
तन्मोक्षणाय चादिष्टो देय आकाशदीपकः ॥ आकाशदीपदानेन पिशाचोपि समागतः ॥ ६३ ॥
वाराणस्यां ननान्याः स पुत्रोभूद्गुणसंयुतः ॥ कृत्वा सर्वेपि ते काशीवासं मोक्षमवाप्नुवन् ॥६४॥
नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे ॥ नमो यमाय रुद्राय कांतारपतये नमः ॥ ६५ ॥

आकाशमें दीपक जलानेसे पिशाच भी आया ॥ ६३ ॥ और काशीमें ननानीका वह पुत्र गुणयुक्त होगया और उन्ह
सबने काशीवास करके मोक्ष पाई ॥ ६४ ॥ "मरे हुये पितरोंको, प्रेतोंको धर्म और विष्णुभगवान्को नमस्कार है, यम,
और वनखंडेश्वर शिवजीको नमस्कार है" ॥ ६५ ॥

इसमंत्रसे जो मनुष्य पितरोंको आकाशदीपक देते हैं वे नरकमें जाकर भी निश्चय करके ॥ ६६ ॥ उत्तम गतिको पाते

मंत्रेणानेन ये मर्त्याः पितृभ्यः खे तु दीपकम् ॥ प्रयच्छंति गता ये स्युर्नरके यांति तेपि वै ॥ ६६ ॥ उत्तमां गतिं गच्छंति दीपदानं मयेरितम् ॥ लक्ष्मीसंततिसिद्ध्यर्थमारोग्याय प्रदीपयेत् ॥ ६७ ॥ आकाशे दीपदानं तु तथा श्रीविष्णुतुष्टये ॥ ६८ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये दीपमहिमाकथनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

हैं। लक्ष्मी संतति और आरोग्यता इनके पानेके लिये मेरे कहेहुये दीपदानको करै ॥६७॥ और विष्णुभगवान्के प्रसन्नार्थ आकाश दीपक जलावै ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये दीपमहिमाकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



॥ वालखिल्या बोले ॥ कार्तिकके कृष्णपक्षमें वत्सद्वादशी होती है सो वत्सपूजनमें गोधूलिकालव्यापिनी लेनी चाहिये ॥ १ ॥ पहिले दिन वटके नीचे वछड़ेकी पूजा करनी चाहिये और दूसरे दिन वछड़ेवाली एक रंगकी सीधी और दुधारी गौको चंदन आदिसे लेपन करके पुष्पमालाओंसे उसका पूजन करै ॥ २ ॥ हे युधिष्ठिर ! उसदिन तेलका

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्त्तिकस्यासिते पक्षे द्वादशी वत्ससंज्ञिता ॥ गोधूलिकालसंयुक्ता द्वादशी वत्सपूजने ॥ १ ॥ वत्सपूजा वटे चैव कर्त्तव्या प्रथमे हनि ॥ सवत्सां तुल्यवर्णां च शालिनीं गां पयःस्विनीम् ॥ चंदनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् ॥ २ ॥ तद्दिने तैल-पक्कं च स्थालीपक्कं युधिष्ठिर ॥ गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि क्षीरं च वर्जयेत्॥ ३ ॥ दिनांते सूर्य-बिंबार्धादुभयत्र घटीदलम् ॥ ततो नीराजनं कार्यं निरीक्षेच्च शुभाशुभम् ॥ नानादीपान्प्रक-ल्प्यादौ स्वर्णपात्रादिसंस्थितान् ॥ ४ ॥ नीराजयेद्दीपपूर्वं निरीक्षेत शुभाशुभम् ॥ लापयित्वा सर्वदीपानुत्तराभिमुखान्न्यसेत् ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

पका, और वटलेका पका, गायका दूध, गोघृत, दधि और क्षीर इनको त्याग दे ॥ ३ ॥ फिर दिनके अंतमें सूर्यास्तसे दोघड़ी एक आगेकी और एक पीछेकी उस वीचमें आरती करनी चाहिये और उससे शुभअशुभ देखै । पहिले स्वर्णके थालमें धरकर बहुतसे दीपक जलाकर ॥ ४ ॥ दीपकसे आरती करै और शुभअशुभ देखे । और सव दियोंको जला-

कर उत्तरकी ओर मुख करके धरै ॥ ५ ॥ मुख्य दीपक नौ कहे हैं और भी भलेही जलावै । जो तेज और शिखायुक्त ज्वाला दक्षिणकी ओर जाय ॥ ६ ॥ और स्थिर रहै तौ सौख्य करनेवाली है इससे विपरीत दुःखदायिनी है ॥ और कार्तिकके कृष्णपक्षमें द्वादशीसे लेकर पांच ॥ ७ ॥ दिन सायंकालमें मनुष्योंको आरतीकी विधि कही है। पहिली दिनकी आरती एक पक्षके शुभाशुभको जतानेवाली है दूसरे दिनकी एक मासके ॥ ८ ॥ तीसरे दिनकी एक ऋतुकी,

मुख्या दीपा नव प्रोक्ता अन्यानपि च कल्पयेत् ॥ ज्वाला चेद्दक्षिणासंस्था सतेजस्का शिखान्विता ॥ ६ ॥ स्थिरा चेत्सौख्यदा प्रोक्ता विपरीता तु दुःखदा ॥ कार्तिके कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पंचसु ॥७॥ तिथिषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः ॥ पक्षं संसूचयंत्यादौ द्वितीयो मासमेककम् ॥८॥ तृतीये ऋतवः प्रोक्ताश्चतुर्थे त्वयनं तथा ॥ वर्षं तु पंचमे दीपे शुभाशुभं विनिर्णयेत् ॥ ९ ॥ सूर्यांशसंभवा दीपा अंधकारविनाशकाः ॥ त्रिकाले मां दीपयंतु दिशंतु च शुभाशुभम् ॥१०॥ अभिमंत्र्य च मंत्रेण ततो नीराजयेत्क्रमात् ॥ आदौ देवांस्ततो विप्रान्हस्तिनश्च तुरंगमान् ॥११॥

चौथे दिनकी ६ महीनेकी, पांचवें दिनकी एक वर्षका शुभाऽशुभ निर्णय कराती है ॥ ९ ॥ और दीपक जलाकर यह प्रार्थना करै कि ॥ सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुये और अंधकारके नाशक ऐसे दीपक मुझे तीनों कालमें प्रकाशित करैं और जो शुभअशुभ फल हो मुझे बतावें ॥ १० ॥ इसमंत्रसे अभिमंत्रित करके क्रमपूर्वक नीराजन करै । पहिले देवताओंको फिर

ब्राह्मणोंको, हाथी और घोडोंको, अपनेसे बडोंको, श्रेष्ठोंको और छोटोंको माताको आदि लेकर स्त्रियोंको फिर नीराजन किये दीपकोंको अपने २ स्थानपर धरदे ॥११॥१२॥ जो रूखेसे जलें तो लक्ष्मीका नाशहो और श्वेत रंगहो तो शत्रु, नाशहो बहुत लालहों तो युद्ध हों और जो काली शिखा होतो मृत्यु होय ॥ १३ ॥ एक एकांगी नाम अहीरनी थी उसने इस व्रतको किया था सो वह तीन वर्षमें धनधान्य युक्त होगई ॥१४॥ ऋषि बोले ॥ एकांगी कौन थी और

ज्येष्ठान् श्रेष्ठान् जघन्यांश्च मातृमुख्यांश्च योषितः ॥ ततो नीराजितान्दीपान् स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत् ॥ १२ ॥ रूक्षैर्लक्ष्मीविनाशः स्यात् श्वेतैरन्यक्षयो भवेत् ॥ अतिरक्तेषु युद्धानि मृत्युः कृष्णशिखेषु च ॥ १३ ॥ एकांगी नाम गोपाला तयैतच्च व्रतं कृतं ॥ धनधान्यसमायुक्ता जाता वर्षत्रयेण सा ॥ १४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ का एकांगी कथं जाता धनधान्यसमन्विता ॥ एतद्विस्तरतः श्रोतुमिच्छंत्येते तपोधनाः ॥ १५ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ आसीत्पुरा हृषीकेशः सचैलो धेनुपालकः ॥ गवामष्टसहस्राणि तद्गृहे निवसंतिच ॥ १६ ॥ ॥

वह कैसे धनधान्य युक्त होगई सो हे तपोधन ! उसे हम विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं ॥ १५ ॥ वालखिल्या बोले ॥ पूर्वकालमें हृषीकेश नाम एक अहीर धेनु पालनेवाला था और उसके घरमें आठ हजार गौयें रहती थीं और बछड़ोंकी तथा नगरकी गायोंकी कुछ गिनती नहीं थी ॥ उसके एक कन्या हुई कि जिसका नाम एकांगी विख्यात

हुआ ॥ १६ ॥ १७ ॥ और वह ऐसी वातोंमें आगया कि जिसके पुत्र नहीं होता उसे स्वर्गलोक नहीं मिलता सो उस गोपालकने पुत्रके लिये बड़ा यत्न किया ॥ १८ ॥ उस घोसीने यहां हजारों गौदान और सैंकड़ो नीलोत्सर्ग किये तब पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ उनका दुंदुभि नाम पुरोहित बड़ा कुटिल धूर्त और महालोभी था ॥ २० ॥ उसने लोभकी

वत्सादीनां न संख्यास्ति तथा लोकगवामपि॥तस्यैका कन्यका जाता एकांगी नाम विश्रुता॥१७॥
नापुत्रस्य तु लोकोस्तीत्यादिवाक्यैः प्रपंचितः ॥ पुत्रार्थं तु महायत्नं सचैलोसावथाकरोत् ॥ १८ ॥
गोदानानां सहस्रं तु नीलोत्सर्गशतं तथा ॥ कृतं सचैलकेनात्र ततः पुत्रोभ्यजायत ॥ १९ ॥
दुंदुभिर्नामविख्यातस्तेषामासीत्पुरोहितः ॥ अतीव कुटिलो धूर्तो लोभिनां स शिरोमणिः ॥ २० ॥
लोभेच्छया तु तेनोक्तं मूलजातो हि बालकः ॥ अन्यत्र पृष्टं किमपि किंचिद्दत्त्वा विदायितः ॥२१॥
आकारिता पितृभ्यां तु एकांगी चंचलेक्षणा ॥ नयेमं बालकं शीघ्रं मुखे दत्त्वा घृतं मधु ॥ २२ ॥
क्षिपस्व तूर्णं गंगायामस्माकं सुखवृद्धये ॥ एकांगी तं समादाय दययाविष्टमानसा ॥ २३ ॥

इच्छासे कह दिया कि यह वालक मूल नक्षत्रमे हुआ है सो घोसीने कुछ नही पूछा और उसे कुछ देकर विदाकर दिया ॥ २१ ॥ फिर माता पिताने चंचल नेत्रवाली एकागीको बुलाया और कहा कि इस वालकके मुखमें घी और शहद धरकर इसे लेजा ॥२२॥ और हमारे सुख वृद्धिके लिये इसे गंगाजीमे फैंकआ और एकांगी उसे लेकर मनमें दया

विचारती हुई ॥ २३ ॥ बनमें गई और एक बड़े वृक्षके कोटरमें उसे धर आई और दिन रातमें बार २ आकर उसे दूध पियाकर फिर अपने घर चली जाती यों यह बालक एक वर्षमें सुन्दर बोलने लगा ॥२४॥२५॥ और नाना प्रकारके पक्षी और चौपायोंकी भाषा सुन २ कर बोलै । और एकांगी भी देह यौवनमें भरगई ॥ २६ ॥ दुंदुभिने एकांतमें

आस्थापयद्गह्वरे तं महावृक्षस्य कोटरे ॥ वारंवारं समागत्य दिवसेषु निशासु च ॥ २४ ॥ तस्मै पयः पाययित्वा पुनर्याति स्वकं गृहं ॥ जातोसौ वर्षमात्रेण कलभाषी स बालकः ॥२५॥ श्रुत्वा श्रुत्वा वदद्भाषां नानापक्षिचतुष्पदाम् ॥ एकांग्यपि च संजाता यौवनाक्रांतदेहिका ॥ २६ ॥ एकांगीं दुंदुभिः प्राह एकांते वचनं लघु ॥ मां त्वं वरय भद्रं ते कुलपूज्योस्मि तेऽनघे ॥ २७ ॥ स्वर्णाढ्यां ते करिष्यामि नानावस्त्रोपशोभिताम् ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा एकांगी वाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥ धिङ्मूर्ख काणदुष्टात्मन्नहं त्वाभीरकन्यका ॥ ब्रह्मबीजसमुत्पन्नः कथं मा वरयिष्यसि ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥

धीरेसे एकांगीसे यह बात कही कि हे निष्पाप ! मैं तेरा कुल पूज्यहूं तू मेरे साथ ब्याह करले तेरा भला होय ॥ २७ ॥ तुझे सुवर्णसे लाद दूंगा और अनेक प्रकारके सुन्दर २ वस्त्र पहिराऊंगा । यह बात सुनकर एकांगीने कहा ॥ २८ ॥ हे मूर्ख ! हे काण ! हे दुष्टात्मा ! मैं तो अहीरकी कन्याहूं ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न हुआ मुझे कैसे वरेगा ॥ २९ ॥

दुंदुभि वोला ॥ अच्छे ब्राह्मणोंको चारो वर्णकी कन्या व्याहनी चाहियें ये ब्रह्माजीने कहा है इसलिये तू हमारी भार्या होजा ॥ ३० ॥ एकांगी वोली ॥ मैं भिखारी काणे और कुरूपको नही वरूंगी । मै तो सुशील और स्वरूपवान् भर्ताको वरूगी ॥ ३१ ॥ दुंदुभिने अनेक भांतिसे उस वालाको लोभ दिया । और जब वह उसके वशमे नहीं हुई तव

दुंदुभिरुवाच ॥ चतुर्वर्णा कन्यकापि विवाह्या ब्राह्मणैः शुभैः ॥ पितामहेनेदमुक्तं तस्माद्भार्या भवस्व नः ॥ ३० ॥ एकांग्युवाच ॥ याचकं न वरिष्यामि न च काणं कुरूपकम् ॥ सुशीलं च सुरूपं च भर्त्तारं वरयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ नानाप्रकारैः सा बाला दुंदुभेनाथ लोभिता ॥ नाभूद्यदा तस्य वश्या तदा क्रोधं चकार सः ॥ ३२ ॥ अन्याय्ये ध्रियतां चेयं ताडनीया मया तथा ॥ एकांते वा घातनीया छिद्रमन्वेषयाम्यहम् ॥ ३३ ॥ इत्थं विचार्य विप्रोसौ तस्याः पश्यति कौतुकम् ॥ निलीय दिवसे विप्रो तया सार्द्धं गतो वने ॥ ३४ ॥ अपश्यद्दूरतश्चेष्टां तस्या दुष्टो द्विजाधमः ॥ तया निष्काशितो वालो दुग्धं दत्त्वा यथेप्सितम् ॥ ३५ ॥

उसने क्रोध किया ॥ ३२ ॥ अन्यायमें इसे पकडूं और इसे ताड़नादूं वा एकांतमें मार डालूं वा मैं इसका पहिले छिद्र टटोलूं ॥ ३३ ॥ ऐसा विचारकर यह ब्राह्मण उसके कौतुक देखने लगा । और दिनमे छुपकर ब्राह्मण उसके पीछे २ वनको गया ॥ ३४ ॥ और उस दुष्ट नीच ब्राह्मणने दूरसे उसका काम देखा कि उसने पहिले वालकको निकाला

और उसे पेट भरके दूध पिलाकर ॥ ३५ ॥ और थोडी देर खिलाकर और फिर वहां उसे रखकर गायोंकी रक्षा करने लगी। ब्राह्मणने यह देखलिया ॥ ३६ ॥ फिर वह शीघ्र घर लौट आया। और अहीरसे यह कहा कि मैं गंगाके किनारे समिधा और कुशा लेने गया था ॥ ३७ ॥ सो मैने वहा एकांगीको यवनोंके साथ क्रीड़ा करती देखी है और उसके यवनसे बालक उत्पन्न हुआ है और उसने उसे कोटरमें धर रक्खा है ॥ ३८ ॥ अरे ! तेरा कुल नाश होगया

क्रीडयित्वा क्षणं तत्र पश्चात्संस्थापितः पुनः ॥ अकरोच्च गवां रक्षां विप्रेणेत्थं विलोकितं ॥ ३६ ॥
आगत्यासौ गृहे शीघ्रं सचैलं वाक्यमब्रवीत् ॥ अहं समित्कुशाद्यर्थं गतो भागीरथीतटे ॥ ३७॥
एकांगीं तत्र संदृष्टा क्रीडंती यवनैः सह ॥ यवनाद्बालको जातः स्थापितः कोटरे स च ॥ ३८ ॥
अहो नष्टं तव कुलं नरकेषु पतिष्यति ॥ जात्यग्रे कथयिष्यामि नो चेत्तां त्यज दुर्मते ॥ ३९ ॥
तस्याः पुत्रं च तां चापि बद्ध्वा पृष्ठे वृषस्यच ॥ वनमध्ये त्यज क्षिप्रं बहिष्कारोन्यथा भवेत् ॥ ४०॥
राज्ञा च दंडनीयस्त्वं जातिभिश्च बहिष्कृतः ॥ कन्यकारक्षणादेव नरकेपि पतिष्यसि ॥ ४१ ॥

तू नरकोंमें गिरैगा सो हे दुष्ट ! या तो उसे त्याग दे नहीं तो तेरी जातिके आगे कहूंगा ॥ ३९ ॥ उसे और उसके पुत्रको बैलकी पीठपर बांधकर शीघ्र वनमें छोड़ दे और किसी भांति तेरा छुटकारा नहोगा ॥ ४० ॥ तू जातिसे भी निकाला गया और राजासे भी दंड पाने योग्य है। और कन्याको रखनेसे नरकमें भी गिरैगा ॥ ४१ ॥ ॥

जब दुंदुभिने उसे यों भय दिखाया तो सचैल उन दोनोंको वैलकी पीठपर बाधकर और वनमे छोड़ आप गहरे वनमें चलागया ॥ ४२ ॥ वैल भी उस एकांगीको लेकर दैव योगसे हरिद्वार पहुंचा और वहां उस एकांगीका वंधन ढीला होगया ॥ ४३ ॥ सो ही वंधनसे एकांगी निकल पड़ी और वह बालक भी छूट पड़ा और उस लड़कीने उसी वंधनसे उस वैलको बाध लिया ॥ ४४ ॥ वह वनके मार्गोंको जानगई थी सो वैलपर लादकर हरी २ घास और कंद आदि

सचैलस्त्रासितस्तेन जगाम गहनं वनम् ॥ तावुभौ वृषपृष्ठे तु वद्ध्वा त्यक्त्वा वने तदा ॥ ४२ ॥
वृषोपि तां समादाय गतो दैवस्य योगतः ॥ हरिद्वारं तया सार्द्धं वंधः शिथिलतां ययौ ॥४३॥
वंधाद्विनिर्गता सा तु बालकोपि विमोचितः ॥ वृषभस्तेन पाशेन वद्धो बालिकया तथा॥४४॥
जानाति वनमार्गान्सा वृषेणादाय शाद्वलं ॥ कंदादिकं भक्षयित्वा कुटिं तत्र चकार सा ॥४५॥
तृणान्यानीय विक्रीते तेनैव वृषभेण सा ॥ पुष्णाति तेन द्रव्येण भ्रातरं वृषभं तथा ॥ ४६ ॥
आगते कार्तिके मासि लोकाः स्नानार्थमाययुः ॥ दानार्थं तु समानीतास्तैर्गावो देशदेशतः॥४७॥

लावै और उसे खाय तथा उसने वहां वनमें एक कुटी वनाली ॥ ४५ ॥ वह उसी वैलपर धरकर घास लावै और वेचै । और उसी धनसे भाई और वैलको पालै ॥ ४६ ॥ जब कार्तिकका महीना आया तो लोग स्नानके लिये आये और वे देश देशसे दानके लियें गायें लाये ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥

और उन्होंने इसे ग्वालिनी जानकर रक्षा करनेके लिये अपनी गायोंको देदिया और हे गरुड़ ! इसने भी गौओंकी वड़ी भारी सेवा करनी आरंभ करदीनी ॥ ४८ ॥ और लोगोंने अपनी गायोंको देखकर इसकी वहुत प्रशंसा करी । और कार्तिक वदी एकादशीके दिन वैष्णवोंने गोपूजा करी ॥ ४९ ॥ उस पूजाको देखकर उस वालिकाने भी विधिसे गोपूजा करी । और इसी प्रकार वालिका वडी भक्तिसे तीन वर्षतक करती रही ॥ ५० ॥ और हे मुनीश्वरो !

इमां गोपालिकां ज्ञात्वा रक्षणाय ददुश्च ते ॥ अनया भूयसी सेवा आरब्धा तु गवां खग ॥४८॥
संदृश्य लोकाः स्वीया गा वव्हेनामभ्यनंदयत् ॥ ऊर्जे सिते हरेस्तिथ्यां गोपूजा वैष्णवैः कृता॥४९॥
तां दृष्ट्वा वालिका सापि पूजां चक्रे यथाविधि ॥ अतिभक्त्या वालिकया चेत्थं वर्षत्रयं कृतम्॥५०॥
तस्यां दैववशात्तत्र सचैलेशः समाययौ ॥ स्नानाय कार्तिके मासे गंगाद्वारे मुनीश्वराः ॥ ५१ ॥
दृष्टा वने वालिका सा वनकौतुकदर्शिना ॥ पृष्ट्वोदंतं ततस्तस्याः पाणिग्रहमचीकरत् ॥ ५२ ॥
धिकृतो दुंदुभिस्तेन तया शप्तोप्यसौ पुनः ॥ अद्यारभ्य नरा लोके काणे विश्वासकारकाः ॥५३॥

वहां उसी कुटीमें दैववशसे वह अहीर कार्तिकमासमें गंगाके किनारे स्नान करने आया ॥ ५१ ॥ और वनके कौतुकोंको देखते २ उसने इस लड़कीको भी देखा और उसका हाल पूछकर उसका विवाह करदिया ॥ ५२ ॥ उसने दुंदुभिको धिक्कारा और उस एकागीने भी फिर उसे शापदिया कि आजसे लेकर जो मनुष्य संसारमें काणे मनुष्यपर विश्वास

करैंगे ॥ ५३ ॥ वे अवश्य नाश होंगे मैं कार्तिककी सौगन्द खातीहूं । यह कहकर उस सचैलको वह वालक सौंप दिया ॥ ५४ ॥ और हे खग ! उस एकांगीने हृषीकेशको गोव्रतका उपदेश किया और माता पिताको धन आदि देकर वह पतिके साथ गई ॥ ५५ ॥ इसलिये कार्तिककी द्वादशीके दिन गौका पूजन करना चाहिये । जो मनुष्य इस गोव्रतके

अवश्यं विलयं यांति कार्तिकेन शपाम्यहम् ॥ इत्युक्त्वा चार्पितस्तस्मै सचैलाय सबालकः ॥५४॥
गोव्रतं तु हृषीकेशस्योपदिष्टं तया खग ॥ पित्रोर्धनादिकं दत्त्वा भर्त्रा सार्द्धं जगाम सा ॥ ५५ ॥
तस्माद्गोपूजनं कार्यं द्वादश्यां कार्तिकस्य तु ॥ एतद्गोव्रतमाहात्म्यं श्रुत्वा कुर्वंति ये नराः ॥ ५६ ॥
ते गोव्रतप्रभावेण न गोभिर्विच्युता भुवि ॥ गोपराधः कृतो यः स्यात्सा व्रताद्विलयं व्रजेत् ॥५७॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये गोपूजाकथनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

माहात्म्यको सुनकर करैंगे ॥ ५६ ॥ वे गोव्रतके प्रभावसे पृथ्वीपर गौओंसे रहित नही रहैंगे और जिसने गायोंका अपराध किया होगा वह व्रतके प्रभावसे जाता रहेगा ॥ ५७ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये गोपूजाकथनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥



॥ वालखिल्या वोले । सुंदर कार्तिकमासमें कृष्णपक्षकी चौदसको दीपोत्सव होता है उसके पासका यह व्रत करै ॥ १ ॥ त्रयोदशीके दिन प्रातःकाल दंतधावन करके स्नान करै फिर भगवान्की भक्तिमें तत्पर होकै और तीन दिनका नियम करै ॥ २ ॥ फिर इस व्रतके अंतमें गोवर्द्धनका उत्सव करै । प्रतिपदा तीनमुहूर्तसे अधिक लेनी चाहिये इसमें द्विती-

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां शुभे मासिच कार्तिके ॥ दीपोत्सवसमीपे तु व्रत-मेतत्समाचरेत् ॥ १ ॥ प्रातः स्नात्वा त्रयोदश्यां कृत्वा वै दंतधावनम् ॥ त्रिरात्रनियमं कृत्वा गोविंदे भक्तितत्परः ॥ २ ॥ कार्य एतद्व्रतस्यांते तथा गोवर्द्धनोत्सवः ॥ त्रिमुहूर्ताधिका ग्राह्या परवेधो न दोषभाक् ॥ ३ ॥ कार्तिकस्याऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे ॥ यमदीपं वहिर्द-द्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥ ४ ॥ एकदा धर्मराजेन दूताः सर्वेपि चैकतः ॥ कृत्वा प्रोवाच वचनं सत्यं ब्रूत ममाग्रतः ॥ ५ ॥ उच्चावचान्मारयतां भवतां जायते दया ॥ क्वचिज्जाताथवा नैव सत्यं ब्रूतममाग्रतः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

याके वेधका दोष नही होता है । कार्तिक कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको सायंकालके समय घरके वाहर यमका दीपक बलावै यह अपमृत्युको नाश करता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ एक समय धर्मराजने सव दूतोंको इकट्ठा करके कहा कि मेरे सामने सत्य २ वचन कहना ॥ ५ ॥ छोटे वड़ोंको मारतेमें कभी दया आती है अथवा कभी आई भी थी या नहीं सो मेरे

सामने सच २ कहो ॥ ६ ॥ दूतबोले ॥ इंद्रप्रस्थमें हंसनाम एक महाराज था । एकसमय वह सेनाको साथले शिकारके लिये गया ॥ ७ ॥ वहां उसने एक मृग देखा और शिकार खेलता २ दूर निकल गया । स्त्रीरूपहोनेसे मृगीको तो उसने छोड़ दिया और हरिणके लिये यत्न करने लगा ॥ ८ ॥ और मृग भी राजाको देख कुलांचे मारके भागा फिर

॥ दूता ऊचुः ॥ इंद्रप्रस्थे महाराजो हंसोनाम बभूव ह ॥ एकदा मृगयार्थं स गतः सैन्यसमावृतः ॥ ७ ॥ तत्रापश्यन्मृगं चैकं मृग्या सह विनिर्गतम् ॥ स्त्रीत्वात्त्यक्ता मृगी तेन हरिणार्थं कृतोद्यमः ॥ ८ ॥ मृगोपि भूपतिं दृष्ट्वा पलायनपरो भवत् ॥ तत्पृष्ठेतु हयस्त्यक्तः स्वकीयस्तेन भूभुजा ॥ ९ ॥ अदृश्यतां क्वचिद्याति दृश्योसौ जायते क्वचित् ॥ देशाद्देशांतरं यातः शराग्रेण प्रपीडितः ॥ १० ॥ आमध्यान्हं गतस्तस्य पृष्ठे राजा हयस्थितः ॥ मृगः पलाय्य गतवान् राजापि श्रममूर्छितः ॥ ११ ॥ घर्माक्रांतः पिपासार्त्तो न ददर्श जलं क्वचित् ॥ वटच्छायां क्षणं सेव्य पिपासार्तो जगाम सः ॥ १२ ॥ ॥ ॥

तो उस राजाने अपने घोड़ेको उसके पीछे छोड़ा ॥ ९ ॥ वह मृग कभी तो लोप होजाय और कभी दीखने लगै और तीर लगनेसे दुखी होकर एक स्थानसे दूसरे स्थानमे फिरने लगा ॥ १० ॥ उसके पीछे मध्यान्हतक तो राजा घोड़ेपर चढाहुआ फिरा किया परंतु फिर मृग भागकर चलागया और राजा भी श्रमसे अचेत होगया ॥ ११ ॥ गर्मीके मारे

प्याससे दुखी होनेलगा परंतु कहीं जल नहीं देखा । फिर थोडी देर वटकी छायामें बैठकर वह प्यासाही चलदिया । ॥ १२ ॥ जब उसने नतो सेना देखी और न जलका मार्ग देखा और भूखसे भी दुखी हुआ और घोड़ा भी श्रमसे थक गया ॥ १३ ॥ तब राजाने टीडियोंका शब्द सुना कि जो भूखी चली जांय थीं उन्हें देखकर और आप उस वटकी छायामें विश्राम कर उसी मार्गसे चलदिया ॥ १४ ॥ फिर एक कोसपर जाकर उसने एक सरोवर देखा कि जिसमें कमल

सैन्यं न दृष्टवान्मार्गं जलस्यापि न दृष्टवान् ॥ क्षुधया पीडितोप्यासीदश्वोपि श्रमपीडितः ॥१३॥
आडीशब्दं स सुश्राव क्षुधितास्ताः प्रयांति हि ॥ प्रदृश्याश्वास्य तच्छायां चलितस्तेन वर्त्मना॥१४॥
क्रोशोपरि ददर्शाग्रे कासारं पंकजान्वितं ॥ हंसकारंडवाकीर्णं रथांगैश्च मनोहरम् ॥ १५ ॥
नानापद्मैः परिवृतमुच्चलत्तिमिचंचलं ॥ नृपो दृष्ट्वा तत्तडागं कृतकृत्य इवाभवत् ॥ १६ ॥
स्वयं पीत्वा जलं पश्चादश्वस्यापि निवेदितम् ॥ ददर्श धीवरांस्तत्र नानामत्स्योपहिंसकान् ॥ १७ ॥

खिल रहेथे और हंस कारंडव, और चक्रवाक उसमें तैर रहेथे और वह बड़ा मनोहर था ॥ १५ ॥ उसमें अनेक प्रकारके कमल खिल रहे थे और उसका जल बड़े मत्स्योंके उछलनेसे चंचल था । राजा उस तालावको देखकर कृतकृत्यके समान होगया ॥ १६ ॥ पहिले आप जल पीकर फिर उसने घोडेको पिलाया और वहा उसने अनेक भातिकी मछलियोंको मारनेवाले धीवरोंको देखा ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

महाराजने उनसे पूछा कि क्या कोई गांव पास है। धीमर बोले ॥ एक कोस आगे नगरके समान एक नगवान् ग्राम है ॥ १८ ॥ वहांका मुखिया संवर्त नाम राजा है उसने अपने द्वारपर पथिकोंके ठहरनेके लिये धर्मशाला ॥ १९ ॥ बनवा रक्खी है तुमको सुखकी इच्छासे वहां जाना चाहिये वहां स्नान, पान आदि और ईधन सहजमें मिल सक्ता है

तानपृच्छन्महाराजो ग्रामोस्ति निकटे कचित् ॥ मत्स्यघातका ऊचुः ॥ क्रोशादूर्ध्वं तु नगवान् ग्रामोस्ति नगरोपमः ॥ १८ ॥ संवर्त्तो नाम तत्रत्यः सामंतकमहीपतिः ॥ स्वगृहद्वारि वासार्थं पांथिकानां तु मंडपः ॥ १९ ॥ रचितोस्ति च गंतव्यं त्वया तत्र सुखेप्सया ॥ स्नानपानादिकाष्ठानां सौकर्यं तत्र वर्तते ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ इंद्रप्रस्थं स्थलादस्मात् कियद्दूरे व्यवस्थितम् ॥ केन मार्गेण गंतव्यं प्रब्रूध्वं मत्स्यघातकाः ॥ २१ ॥ धीवरा ऊचुः ॥ अस्मान्नैर्ऋत्यकोणे तु नवयोजनदूरतः ॥ इंद्रप्रस्थपुरं रम्यं वर्तते राजसेवक ॥ २२ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा अद्य गंतुं न पार्यते ॥ गृहं प्रतीति निश्चित्य ग्राममध्ये ययौ नृपः ॥ २३ ॥ ॥ ॥

॥ २० ॥ राजा बोला ॥ हे धीवरो ! और इन्द्रप्रस्थ यहांसे कितनी दूर है और वहां किस मार्गसे जाना चाहिये सो कहो ॥ २१ ॥ धीवर बोले ॥ हे राजसेवक ! यहांसे सुन्दर इन्द्रप्रस्थपुर नैर्ऋत्य कोणमे नौयोजन है ॥ २२ ॥ उनका यह वचन सुनकर आज घर नहीं पहुंच सक्के ऐसा निश्चय करके राजा गांवमें गया ॥ २३ ॥ ॥

वहां राजकुमारने इसे अनुमानसे युवा पुरुष और बड़ा तेजस्वी जानकर उसे एक खाट सौनेके लिये देदी ॥ २४ ॥ और उसके खानेके लिये कमलके चिड़वे दही और शीतल जल भिजवा दिया फिर राजाने थोड़ा खाया पिया ॥२५॥ राजा रातको वहांही सोया और वार २ जागा अर्थात् उसे भली भांति नींद नहीं आई। और गांवके राजकुमरके यहां उसे उसदिन छटा दिन होगया ॥ २६ ॥ राजाने उस घरमें एक स्त्रीको आती हुई देखी वह लंवी वड़ी रूपवान् और

तेजो विशेषानुमितः कश्चित्प्रौढः पुमानयम् ॥ इति ज्ञात्वातु खट्वैका दत्तास्मैवेशनायच॥ २४ ॥
भक्षणार्थं समानीता अब्जाश्चिपिटादधि ॥ शीततोयं समानीतं किंचिद्भुक्तं नृपेण तत् ॥२५॥
रात्रौ तत्रैव संसुप्तो जागर्तिच पुनःपुनः ॥ ग्रामेशजातपुत्रस्य षष्ठाहस्तद्दिने भवत् ॥ २६ ॥
ददर्श नृपती रात्रौ नारीं यांतींच तद्गृहम् ॥ दीर्घात्यंतं रूपवतीं लेखनी हस्तशालिनीम् ॥२७॥
तदंचलं गृहीत्वा सः पर्यपृच्छत कासि च ॥ नोवाच वचनं सातु नृपेणाक्षेपिता पुनः॥ २८ ॥
वलात्कारेणांचलं सा गृहीत्वाभ्यंतरे विशत्॥ साहंकारो नृपो भूत्वा स्थितवांस्तां प्रतीक्षयन्॥२९॥

हाथमें लेखनी लियें थी ॥ २७ ॥ राजाने उसका पल्ला पकड़कर पूछा कि तू कौन है पर उसने कुछ उत्तर नहीं दिया तो राजाने फिर उसको धमकाया ॥ २८ ॥ फिर वह वलसे अपना अंचल छुड़ाकर भीतर घुसगई। फिर तो राजा बड़े अहंकारसे बैठ उसकी वाट देखने लगा ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥

वह सुंदरमुखी फिर जलदीसे लौट आई फिर राजाने बलपूर्वक उसका हाथ पकड़कर कहा ॥३०॥ हे कमलपत्रके समान नेत्रवाली ! तू कौन है मेरे सामने सत्य २ कह और नहीं तो तुझे मार डालूंगा जो तुझे अच्छा लगै सो कर ॥३१॥ जीवंतिका बोली ॥ मैंही तुझे मार डालती पर तुझे धर्मवान् जानकर छोड़दिया इसलिये शीघ्र छोड़दे नहीं तो तुझे मार डालूंगी

पुनः सापि समायाता तूर्णमेव वरानना ॥ बलात्कारैर्नृपतिना करे धृत्वा वचोब्रवीत् ॥ ३० ॥ का त्वं कंजपलाशाक्षि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥ अन्यथा त्वां हनिष्यामि रोचते यत्तथा कुरु ॥ ३१ ॥ जीवंतिकोवाच ॥ मारितश्च मया त्वं स्याद्धर्मवत्त्वात्सुरक्षितः ॥ मुंच तूर्णं नचेत्त्वां वै हनिष्यामि न संशयः ॥ ३२ ॥ राजोवाच ॥ अज्ञात्वा तव वृत्तंतु न त्यक्ष्यामि कदाचन ॥ क्षत्रियः सन् यदा भीतस्तदा स नरकं व्रजेत् ॥ ३३ ॥ अवश्यमेव मर्तव्यं जीवितं नास्तिच स्थिरम् ॥ सर्वथा क्षत्रियेणैव न त्याज्याहंकृतिः क्वचित् ॥ ३४ ॥ समर्थस्त्वां हंतुमहं स्त्रीत्वादादौ न हन्यते ॥ जिघांसंतं जिघांसीयादवध्यं प्राणसंशये ॥ ३५ ॥ ॥

इसमें संदेह नहीं है ॥ ३२ ॥ राजा बोला ॥ तेरा वृत्तांत विनाजाने मैं कभी नहीं छोडूंगा जो क्षत्री होकर डरा तो वह नरकको जाता है ॥ ३३ ॥ मरना तौ अवश्यही है और जीवन स्थिर नहीं है । क्षत्री कभी अहंकार नहीं त्यागता है ॥ ३४ ॥ तुझे मारनेको तो मैं समर्थ हूं परंतु स्त्री होनेके कारण पहिले तुझे नहीं मारताहूं और जब प्राणोंका संदेह

हो तो मारनेवाले अवध्यकोभी मारडालतेहैं ॥३५॥ उसका यह वचन सुनके षष्ठीने कहा । तू अपने धर्मपर आरूढ है
इसलिये हे राजा ! मैं तुझपर प्रसन्नहूं ॥ ३६ ॥ मैं जीवंतिका देवीहूं इस राजकुमारके जो बालक हुआ है उसके लला-
टमें अक्षरमालिका लिखकर शीघ्र स्वर्गको जाऊंगी ॥ ३७ ॥ राजा बोला ॥ हे माता ! तैने क्या लिखा सो अब कह

इति तद्वचनं श्रुत्वा षष्ठी वचनमब्रवीत् ॥ त्वं स्वधर्मरतो यस्मात्तस्मात्तुष्टास्म्यहं नृप ॥ ३६ ॥
अहं जीवंतिका देवी ललाटेक्षरमालिकाम् ॥ जातकस्य लिखित्वाथ स्वर्गं यास्यामि सत्वरम्
॥ ३७ ॥ राजोवाच ॥ मातस्त्वया किं लिखितं तदिदानीं निगद्यताम् ॥ न मिथ्यालेखनं
तेस्ति तस्मात्संश्रृणुयामहम् ॥ ३८ ॥ जीवंतिकोवाच ॥ विवाहस्य चतुर्थेह्नि सर्पसंसर्ग
दोषतः ॥ प्राक् कर्मतोस्य निर्वाणं लिखितंतु मया नृप ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी
तत्रैवांतरधीयत ॥ अत्याश्चर्यं नृपो मत्वा विघ्नमत्र करोम्यहम् ॥ ४० ॥ निश्चित्येत्थमुषःकाले
प्रस्थितो नृपतिः स्वयम् ॥ ततो मंत्रिणमाहूय वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ४१ ॥ ॥

तेरा लिखना झूठ नहीं होता इसलिये मैं सुना चाहताहूं ॥ ३८ ॥ जीवंतिका बोली । हे राजा विवाहके चौथे दिन
सांपके संगके दोषसे और पहिले कर्मसे मैंने इसकी मृत्यु लिखी है ॥ ३९ ॥ यह कहकर वह देवी वहांहीं अंतर्धान
होगई । राजा इसे आश्चर्य जानकर और इसमें मैं विघ्न करूं ॥ ४० ॥ ऐसा विचारकर राजा बड़े तडके अपने घरको

गया और मंत्रीको वुलाकर उससे यह वात कही ॥ ४१ ॥ भंडारमेंसे धन लेकर मेरी आज्ञासे शीघ्र यमुनाके वीचमें एक ऐसा पक्का घर वनाओ कि जिसमे कोई संधि और छेद न रहै ॥४२॥ और सर्पविद्याके जाननेवाले और जो मृत्युंजयके जापक हों उनका महीना करके उन्हे मनुष्योंको भीतर रक्खो ॥ ४३ ॥ और यहांसे ईशानदिशाकी ओर नगवा नामका एक गांव है उसके वाई ओर वहां हेमनक नाम एक वड़ा सामन्तक रहता है ॥ ४४ ॥ उसको कुटुंव-

भांडारिकं धनं गृह्य तूर्णं कुरु ममाज्ञया ॥ यमुनायां दृढं गेहं संधिच्छिद्रविवर्जितम् ॥ ४२ ॥
सर्पवैद्यास्तु ये केचिद्ये मृत्युंजयजापकाः ॥ सर्वेषां मासिकं कृत्वा स्थाप्यास्तेभ्यंतरे जनाः ॥४३॥
इत ईशानदिग्भागे ग्रामोस्ति नगवाभिधः ॥ सामंतकोस्ति तद्वामे नाम्ना हेमनको महान् ॥ ४४॥
सकुटुंवः समानेयः स्थाप्यतां सच मंदिरे ॥ जातो यो वालकस्तस्य सतु पाल्यः प्रयत्नतः ॥ ४५ ॥
इति राजवचः श्रुत्वा प्रेषिता महती चमूः ॥ हेमनानयनार्थंतु मंत्रिणस्तां समाविशन् ॥ ४६ ॥
ग्रामं संवेष्ट्य सेनेशो हेमनं वाक्यमव्रवीत् ॥ हेमनः कंपसंयुक्तो वातेन कदली यथा ॥ ४७ ॥

सहित आदरसे लाकर उसे उस मंदिरमें वसाओ और उसके जो वालक हुआ है उसे भी वड़े यत्नसे पालो ॥ ४५ ॥ राजाका यह वचन सुनकर मंत्रीने हेमनके लानेके लिये वड़ी सेना भेजी और मंत्री उस पुरीमें घुसे ॥ ४६ ॥ सेनापतिने गांवको घेरकर हेमनकसे वह वात कही । उसे सुन हेमनक ऐसा कांपने लगा कि जैसे वायुसे केलेका वृक्ष कांपता

हो ॥ ४७ ॥ और सोचने लगा कि कल जो राजाका एक सेवक आया था उसीने जाकर चुगली खाई है कि जिससे सेना आई है ॥ ४८ ॥ मै राजाके अपराधको नहीं जानता न जाने अब क्या होगा गांव लुटेगा वा राजाकी आज्ञासे मैं बांधा जाऊंगा ॥ ४९ ॥ वह तो यह चिंताकर रहाथा इतनेमें सेनापतिने यह कहा कि भयको छोड़कर शोकको छोड़ो और शीघ्र राजाकी आज्ञा करो ॥ ५० ॥ और कुटुंब और बालकको लेकर आदरपूर्वक इन्द्रप्रस्थको चलो ।

आगतः पूर्वदिवसे कश्चिद्भूपस्य सेवकः ॥ पैशून्यं वा कृतं तेन यतः सेना समागता ॥ ४८ ॥
नापराधं महीपस्य न जाने किं भविष्यति ॥ ग्रामो वा लुंठनीयो वा वध्यो वास्मि नृपाज्ञया ॥४९ ॥
इति चिंतयमानं तं सेनेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ भयं त्यक्त्वा शुचं मुंच नृपाज्ञां कुरु वेगतः ॥ ५० ॥
कुटुंबं बालकं गृह्य याहींद्रप्रस्थमादरात् ॥ तथैव नगवेशेन गृहीत्वोपायनं बहु ॥ ५१ ॥
दर्शनं कृतवान् राज्ञस्तेनासौ स्थापितो गृहे ॥ अपमृत्युविनाशाय यानि दानानि भूतले ॥५२॥
कृतानि जपहोमाश्च सर्वे राज्ञातु कारिताः ॥ दर्शनार्थं समायातो बालकस्य तु भूपतिः ॥५३॥

तब तो नगवेशने बहुतसी भेटके योग्य वस्तु लेकर ॥ ५१ ॥ राजाके दर्शन किये और उसने उसे घरमें ठहराया । और अपमृत्युके विनाशके लिये पृथ्वीपर जितने दान हैं वे कियेगये ॥ ५२ ॥ और सब जप और होम कराये और राजा आप बालकको देखने आया ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

वड़े २ उपायोंसे वह वालक वड़ा हुआ और सोलह वर्षका होगया। और सुसंजयकी एक कन्या सर्वलक्षणसंपन्न थी ॥ ५४ ॥ उसके ग्रह चिन्ह, कुल शील सुंदरता देखकर राजाने आप उस वालकके लिये मांगी ॥ ५५ ॥ राजाने इससे सव लोगोंको प्रसन्न किया और आप उसका व्याह किया फिर जव चौथा दिन आया तव राजा आप ॥ ५६ ॥ अपने

नानोपायैर्वर्धितोसौ जातः षोडशवार्षिकः ॥ सुसंजयस्य कन्यैका सर्वलक्षणसंयुता ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा ग्रहांश्च चिह्नानि कुलं शीलं सुरूपताम् ॥ दृष्ट्वा स्वयं भूपतिना वालकार्थं तु याचिता ॥५५॥
हर्षी कृताः सर्वजना विवाहश्च स्वयं कृतः ॥ ततश्चतुर्थे दिवसे प्राप्ते तु नृपतिः स्वयम् ॥ ५६ ॥
आत्मीयानेव संगृह्य तस्य रक्षामचीकरत् ॥ जायते सर्वतश्चेष्टिरायुर्वर्धनकारिका ॥ ५७ ॥
विना निमेषं नृपतिस्तं पश्यति च वालकम् ॥ वयं तत्र गताः स्वामिन्कालाज्ञावशतो यम ॥ ५८ ॥
तदा दया समुत्पन्ना कथमेषोहि वध्यताम् ॥ अतिदुःखेन संतप्तः प्रेतपह्यंतरोरगः ॥ ५९ ॥
नृपस्य नासिकामध्ये नृपः शिंकामथाकरोत् ॥ तदा निर्गत्य सहसा दंशितस्तेन वालकः ॥६०॥

मनुष्योंको लेकर उसकी रक्षा करने लगा। और सव भांतिसे आयु वढानेवाली इष्टि (हवन) होनेलगी ॥ ५७ ॥ राजा उस वालकको एक दृष्टिसे देखता रहा और हे स्वामी! यमराज! कालकी आज्ञाके वशसे हम भी वहां गये ॥ ५८ ॥ तव हमें दया आई कि इसे कैसे मारें। सो हे यमराज! राजाकी एक नाकमेंका कीड़ा वड़े दुखसे दुखी हुआ। फिर

राजाने जो छीक लीनी उस समय सापने सहसा निकलकर उस बालकको काट खाया ॥५९॥६०॥ बड़ाभारी हाहाकार मचा और उस बालकके प्राण निकल गये । उसकी मृत्युके दिनसे लेकर हमने हिंसा न करनेका व्रत करलिया है ॥ ६१ ॥ वहा राजाकी आज्ञासे सब लोग उस पुत्रकी दीर्घायु करनेवाले थे उस समय हे यमराज ! वहां हमें भी दया आगई ॥ ६२ ॥ हे यमराज ! ऐसे महोत्सवमें जिसभाति जीव न जाय कृपाकर वह उपाय हमारे सामने कहिये

हाहाकारो महानासीज्जीविताद्भ्रंशितः स तु ॥ तन्मृत्युदिनमारभ्य त्वहिंसाव्रतकारिणः ॥६१॥
जाता नृपाज्ञया लोकास्तदायुर्वृद्धिकारकाः ॥ दया तत्र समुत्पन्ना त्वस्माकं सूर्यसंभव ॥ ६२ ॥
यथा न जीविताद्भ्रश्येदीदृशे तु महोत्सवे ॥ तथोपायं ब्रूहि यम कृपा कृत्वास्मदग्रतः ॥ ६३ ॥
॥ यम उवाच ॥ कार्तिकस्यासितेपक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे ॥ प्रतिवर्षंतु यो दद्याद्गृहद्वारे सुदीपकम् ॥ ६४ ॥ मंत्रेणानेन भो दूताः समानेयः स नोत्सवे ॥ प्राप्तेपमृत्यावपि च शासनं क्रियतां मम ॥ ६५ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ६३ ॥ यम बोले ॥ कार्तिक कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको संध्याके समय प्रति वर्ष घरके द्वारपर सुन्दर दीपक चलावै ॥ ६४ ॥ और हे दूतो ! इस मंत्रसे हमारे उत्सवमें दीपक जलाकर धरना चाहिये फिर अपमृत्यु आनेपरभी जो मेरी आज्ञा है सो करना ॥ ६५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

"मृत्यु, पाश, दंड, काल और मुझसहित त्रयोदशीके दिन दीपदानसे यम प्रसन्न हों" ॥ ६६ ॥ जो मनुष्य इस दीपो-

मृत्युना पाशदंडाभ्यां कालेन च मयासह ॥ त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति ॥ ६६ ॥
मंत्रेणानेन यो दीपं द्वारदेशे प्रयच्छति ॥ उत्सवे चापमृत्योश्च भयं तस्य न जायते ॥ ६७ ॥
तस्मान्मुनिवराः सर्वे दीपं दद्युर्निशामुखे ॥ ६८ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्सवमें इस मंत्रसे द्वारपर दीपक धरैगा उस पुरुषको अपमृत्युका भय नहीं होगा ॥ ६७ ॥ इसलिये सब मुनिश्रेष्ठोंने संध्याको दीपक धरा ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥



॥ वालखिल्या बोले । कार्तिककृष्णपक्षकी पूर्वविद्धा चतुर्दशीके दिन बड़े तड़के यत्नपूर्वक स्नान करै ॥ १ ॥ जो मनुष्यचतुर्दशीके दिन अरुणोदयके पीछे स्नान करता है उसका वर्षभरका धर्म नाश होजाता है इसमें संदेह नहीं है ॥२॥ और हे देवताओ ! कार्तिककृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन सूर्योदयमें अथवा रात्रिके पिछले प्रहरमें तैल लगाकर स्नान

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ पूर्वविद्धचतुर्दश्यां कार्तिकस्य सितेतरे ॥ पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥१॥ अरुणोदयतोन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः ॥ तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः ॥ २ ॥ तथा कृष्ण चतुर्दश्यां कार्तिकेर्कोदये सुराः ॥ यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यंगो विशिष्यते ॥ ३ ॥ यदा चतुर्दशी न स्याद्विदिने चेद्विधूदये ॥ दिनद्वये भवेच्चापि तदा पूर्वैव गृह्यते ॥ ४ ॥ बलात्काराद्धठाद्वाप्यशिष्टत्वान्न करोति चेत् ॥ तैलाभ्यंगं चतुर्दश्यां रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ५ ॥ तैले लक्ष्मीर्जले गंगा दीपावल्याश्चतुर्दशी ॥ अपामार्गमथो तुंबीं प्रपुंनाटमथापरम् ॥ ६ ॥ ॥ ॥

करनी ॥ ४ ॥ जो बलकर्के, वा हठसे वा मूर्खतासे चतुर्दशीके दिन तैल नहीं लगाता है वह रौरव नरकमें जाता है ॥ ५ ॥ दिवालीकी चतुर्दशीके दिन तेलमें लक्ष्मी और जलमें गंगाजीका वास है सो ओंघा, तुंबी, और चकुंदा इनकी

पत्तियां ॥ ६ ॥ फिर केवल आंधेको स्नानके मध्यमें नरकके नाशके लिये तीनवार अपने ऊपर घुमावै । इस आगेके मंत्रको पढ़कर अपने ऊपर तीनवार घुमावै ॥ ७ ॥ "हलकी मट्टीके डेलेसहित तथा कांटे पत्तोंसे युक्त वार २ फिराया गया हे अपामार्ग तू मेरे पापको हरले ॥ ८ ॥ मित्र और वन्धुओंके साथ यह स्नान करै और स्नानांग तर्पण करके फिर यमका तर्पण करै ॥ ९ ॥ यमाय नमः । धर्मराजायनमः । मृत्यवे नमः । अंतकाय नमः । वैवस्वताय नमः ।

भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ॥ वारत्रयं त्रिवारं च पठित्वा मंत्रमुत्तमम् ॥ ७ ॥ सीतालोष्ठसमायुक्तं सकंटकदलान्वितम् ॥ हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनःपुनः ॥ ८ ॥ इष्टवधुंजनैः सार्धमेतत्स्नानं समाचरेत् ॥ स्नानांगतर्पणं कृत्वा यमं संतर्पयेत्ततः ॥ ९ ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चांतकाय च ॥ वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ १० ॥ औदुंवराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ॥ वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः ॥ ११ ॥ चतुर्दशैते मंत्रास्युः प्रत्येकं च नमोन्विताः ॥ एकैकेन तिलैर्मिश्रान् दद्यात्रीनुदकांजलीन् ॥ १२ ॥

कालाय नमः । सर्वभूतक्षयाय नमः । औदुंवराय नमः । दध्नाय नमः । नीलाय नमः । परमेष्ठिने नमः । वृकोदराय नमः । चित्राय नमः । चित्रगुप्ताय नमः ॥१०॥११॥ यह चौदह नाम हैं और सवमें नमः युक्त है एक एकसे तिल मिलाकर तीन २ अंजली जलकी दे ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

यज्ञोपवीतिको अपसव्य करै वा न करै क्योंकि यमका रूप देवता और पितर दोनोंके समान है ॥ १३ ॥ जिसका पिता जीताहो वह भी यम और भीष्मका तर्पण करै और देवताओंको पूजकर नरकके लिये दीपक बलावे ॥ १४ ॥ इसीमें हमने लक्ष्मी चाहनेवालेके स्नानकी विधि कही है। कार्तिक वदी चौदस अमावस, और कार्तिक सुदी पड़वाके दिन ॥ १५ ॥ चन्द्रोदयमें जब न्हाय तो तैल लगाकर स्नान करै। और कार्तिकशुक्ला द्वितीयाके दिन स्वाति वा

यज्ञोपवीतिनाकार्यं प्राचीनावीतिनाथवा ॥ देवत्वं च पितृत्वं च यमस्यास्ति द्विरूपता ॥ १३ ॥
जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः ॥ नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य देवताः॥ १४॥
अत्रैव लक्ष्मीकामस्य विधिः स्नाने मयोच्यते ॥ ऊर्ज्जेभूते च दर्शे च कार्तिके प्रथमे दिने ॥१५॥
यदा स्नाति तदाभ्यंगस्नानं कुर्याद्विधूदये ॥ ऊर्ज्जशुक्लद्वितीयायां तिथौ च स्वातियुग्मगे ॥१६॥
मानवो मंगलस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते ॥ दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावलिः स्मृता॥१७॥
इंदुक्षयेपि संक्रांतौ रवौ पाते दिनक्षये ॥ अत्राभ्यंगो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये ॥ १८ ॥

विशाखा नक्षत्रमें ॥ १६ ॥ मनुष्य इस मंगलस्नानको करै तो वह लक्ष्मीरहित कभी नहीं होता और दीपकोंसे जो इसमें नीराजन करता है उसेही दीपावली कहते है ॥ १७ ॥ अमावास्या, सूर्यकी संक्रांति, व्यतीपात, दिनक्षय इनके दिन पाप दूर करनेके लिये तेल लगाकर न्हानेमें दोष नहीं है ॥ १८ ॥ ॥ ॥

उस प्रेता चौदसके दिन जो मनुष्य उड़दके पत्रोंके शाकसे भोजन करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १९ ॥ कार्तिक कृष्ण चौदसको अमावास्या भी हो और अमावास्याके पहिले स्वाति नक्षत्र हो तो दीपावलि होती है ॥ २० ॥ सो यह दीपोत्सव लगातार तीन दिनतक करना चाहिये । भगवान्‌ने प्रसन्न होकर इसे महाराज बलिसे कहा है कि ॥ २१ ॥ तेरे मनमें जो जो होय सो वर मांग तेरा कल्याण हो । विष्णुका यह वचन सुनके राजा बलिने कहा ॥ २२ ॥

माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तस्मिन्दिने नरः ॥ प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१९॥
ऊर्जाऽसितचतुर्दश्यामिंदुक्षयतिथावपि ॥ दर्शादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावलिर्भवेत् ॥ २० ॥
कुर्यात्संलग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयं ॥ महाराजो बलिः प्रोक्तस्तुष्टेन हरिणा तथा ॥ २१ ॥
वरं याचस्व भद्रं ते यद्यन्मनसि वर्तते ॥ इति विष्णुवचः श्रुत्वा बलिर्वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥
आत्मार्थं किं याचनीयं सर्वं दत्तं मया तव ॥ लोकार्थं याचयिष्यामि शक्तश्चेद्देहि तच्च मे ॥२३॥
मयाद्य ते धरा दत्ता वामनच्छद्मरूपिणे ॥ त्रिभिः पदैस्त्रिदिवसैः सा चाक्रांता यतस्त्वया ॥२४॥

मैं अपने लिये क्या मांगूँ मैंनेही आपको सब दे दिया मैं तो संसारके लिये मांगूंगा यदि आप दे सक्ते हैं तो मुझे वह दीजिये ॥ २३ ॥ आज मैंने छलसे वामनरूप धरनेवाले आपको पृथ्वी दान करदी । और तीन पदोंमें तीन दिनमें आपने उसे नापली ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इस लिये हे भगवन् इस दिन बलिका राज्यहो और जो मनुष्य पृथ्वीपर मेरे राज्यमें दीपदान करें ॥ २५ ॥ उनके घर आपकी प्यारी लक्ष्मी सदा स्थिर रहैं और मेरे राज्यमें जिनके घरमें अंधकार रहै ॥ २६ ॥ उनके घर सदा लक्ष्मी और संतानका अंधेरा रहै । जो मनुष्य चौदसके दिन नरकके लिये दीपदान करते हैं ॥ २७ ॥ उन्होंके सब पितर

तस्मादेतद्बले राज्यमस्तु घस्रत्रये हरे ॥ मद्राज्ये ये दीपदानं भुवि कुर्वंति मानवाः ॥ २५ ॥
तेषां गृहे तव स्त्रीयं सदा तिष्ठतु सुस्थिरा ॥ मम राज्ये गृहे येषामंधकारः पतिष्यति ॥ २६ ॥
लक्ष्मीसंतानांधकारः सदा पततु तद्गृहे ॥ चतुर्दश्यां च ये दीपान्नरकाय ददंति च ॥ २७ ॥
तेषां पितृगणाः सर्वे नरके न वसंति च ॥ बलिराज्यं समासाद्य यैर्न दीपावलिः कृता ॥२८॥
तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यंति केशव ॥ बलिराज्ये तु ये लोकाः शोकानुत्साहकारिणः ॥२९॥
तेषां गृहे सदा शोकः पतेदिति न संशयः ॥ चतुर्दशीत्रये राज्यं बलेरस्त्विति याचयेत् ॥ ३० ॥
पुरा वामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमाम् ॥ ददावतिथयेंद्राय बलिं पातालवासिनम् ॥ ३१ ॥

नरकमें वास नहीं करते हैं । बलिके राज्यमें जिन लोगोंने दीपावली नहीं करी ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! उनके घरमें कैसे दीपक जलेंगे । बलिके राज्यमें जो लोग शोक और अनुत्साह करेंगे ॥ २९ ॥ उनके घरमें सदा शोक होगा इसमें संदेह नहीं है । चौदससे लेकर तीन दिनतक "बलिका राज्यहो" यह याचना भगवान्से करै ॥ ३० ॥ पहिले कालमें भग-

॥ वालखिल्या वोले ॥ हे मुनीश्वरो ! इसप्रकार प्रातःकालके समय चौदसके दिन स्नान करके भक्तिपूर्वक देवता और पितृओंकी पूजा और उनको प्रणाम करके ॥ १ ॥ और दही दूध और घृतसे पार्वण श्राद्ध करके, बालक और रोगीको छोड़ दिनमें भोजन नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥ फिर प्रदोषके समय सुन्दर लक्ष्मीजीका पूजन करे और

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ एवं प्रभातसमये त्वमायां तु मुनीश्वराः ॥ स्नात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या संपूज्याथ प्रणम्य च ॥१॥ कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ॥ दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते वालातुराज्जनात् ॥ २ ॥ ततः प्रदोषसमये पूजयेदिंदिरां शुभाम् ॥ कुर्यान्नानाविधैर्वस्त्रैः स्वच्छं लक्ष्म्याश्च मंडपम् ॥ ३ ॥ नानापुष्पैः पल्लवैश्च चित्रैश्चापि विचित्रितम् ॥ तत्र संपूजयेल्लक्ष्मीं देवांश्चापि प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ संपूज्या देवनार्योऽपि वहुभिश्चोपचारकैः ॥ पादसंवाहनं कुर्याल्लक्ष्म्यादीनां तु भक्तितः ॥ ५ ॥ अस्मिन्नहनि सर्वेऽपि विष्णुनामोचिताः पुरा ॥ वलिकारागृहाद्देवा लक्ष्मीश्चापि विमोचिता ॥६॥ ॥ ॥

अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्रोंसे लक्ष्मीजीका मंडप बनावे ॥ ३ ॥ अनेक प्रकारके विचित्र पत्रपुष्पोंसे उसे सुन्दर सजावे, और उसमें लक्ष्मी तथा देवताओंका पूजन करे ॥ ४ ॥ और देवताओंकी स्त्रियोंका भी पूजन बहुत भांतिसे करे और भक्तिपूर्वक लक्ष्मी आदिके चरण दावै ॥ ५ ॥ पूर्वकालमें इसदिन विष्णुभगवान्ने वलिके कारागृहसे सब देवताओंको

और लक्ष्मीजीको छुड़ाया था ॥ ६ ॥ फिर सब देवता लक्ष्मीके साथ क्षीरसमुद्रमें गये और हे मुनीश्वरो ! वे बहुत कालतक सुखपूर्वक अच्छे प्रकारसे सोये ॥७॥ डोरी और तूलिकाओंसे पलंग बुनकर उनपर दूधके झागोंके समान वस्त्र बिछाकर यथायोग्य दिशाओंमें रक्खै ॥८॥ और फिर उनपर देवताओंको और लक्ष्मीको वेद मंत्र पढ़कर स्थापन करै॥ लक्ष्मी दैत्यके भयसे मुक्त हुई और कमलके भीतर सुखसे सोई ॥ ९ ॥ इसलिये यहां विधिपूर्वक लक्ष्मीके प्रसन्नार्थ

लक्ष्म्या सार्द्धं ततो देवा जग्मुः क्षीरोदधौ पुनः॥ प्रसुप्ता बहुकालं ते सुखं तस्मान्मुनीश्वराः॥७॥
रचनीयाः सूत्रगर्भाः पर्यंकाश्च सुतूलिकाः ॥ दुग्धफेनोपमैर्वस्त्रैरास्तृताश्च यथादिशम् ॥ ८ ॥
स्थापयेत्तान् सुरांल्लक्ष्मी वेदघोषसमन्वितः ॥ लक्ष्मीर्दैत्यभयान्मुक्ता सुखं सुप्तांबुजोदरे ॥ ९ ॥
अतोत्र विधिवत्कार्या तुष्ट्यै तु सुखसुप्तिका ॥ तदह्नि पद्मशय्यां यः पद्मासौख्यविवृद्धये ॥ १० ॥
कुर्यात्तस्य गृहं मुक्त्वा तत्पद्मा क्वापि न व्रजेत् ॥ न कुर्वंति नरा इत्थं लक्ष्म्या ये सुखसुप्तिकाम्॥११॥
धनचिंताविहीनास्ते कथं रात्रौ स्वपंति हि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लक्ष्मीं संपूजयेन्नरः ॥ १२ ॥

सुखकी सेज बनावै । उसदिन जो कोई सौख्यकी विशेष वृद्धिके लिये ॥ १० ॥ लक्ष्मीजीको पद्मकी शय्यापर स्थापन करैगा लक्ष्मी उसका घर छोड़कर कहीं नहीं जायगी जो मनुष्य इसप्रकार लक्ष्मीकी सुख शय्या नहीं बनाते हैं ॥ ११ ॥ वे धनकी चिंतासे रहित कैसे रातको सोते हैं इसलिये मनुष्यको चाहिये कि सब प्रकारसे लक्ष्मीका पूजन करै ॥ १२ ॥

वह दारिद्र्यसे मुक्त होकर अपनी जातिमें प्रतिष्ठित होजाता है । जावित्री, लौंग, इलायची, दालचीनी, कपूर, इनको ॥ १३ ॥ गौके दूधमें गेरकर और पकाकर खोवा करै फिर उसके योग्य बूरा मिलाकर लड्डू बनावे और उन्हें लक्ष्मीका भोगधरै ॥ १४ ॥ और चार प्रकारके भक्ष्य पदार्थ जो देश और कालके अनुसार मिलसकै सब लक्ष्मीको भोग लगावे और कहै कि लक्ष्मी मुझपर प्रसन्न हांय ॥ १५ ॥ फिर प्रदोपमें दीपदान करै और अपने शिरपर जलती हुई लकड़ी

स तु दारिद्र्यनिर्मुक्तः स्वजातौ स्यात्प्रतिष्ठितः ॥ जातीपत्रलवंगैलात्वक्कर्पूरसमन्वितम् ॥ १३ ॥
पाचयित्वा गव्यदुग्धं सितां दत्त्वा यथोचिताम् ॥ लड्डुकांस्तस्य कुर्वीत तांश्च लक्ष्मीं समर्पयेत् ॥१४॥
अन्यच्चतुर्विधं भक्ष्यं देशकालादिसंभवम् ॥ सर्वं निवेदयेल्लक्ष्म्यै मम श्रीः प्रीयतामिति ॥१५॥
दीपदानं ततः कुर्यात्प्रदोपे च तथोल्मुकम् ॥ भ्रामयेत्स्वस्य शिरसि सर्वारिष्टनिवारणम् ॥ १६ ॥
दीपवृक्षास्तथा कार्याः शक्त्या देवगृहादिषु ॥ चतुष्पथे श्मशाने च नदीपर्वतवेश्मसु ॥ १७ ॥
वृक्षमूलेषु गोष्ठेपु चत्वरेषु गृहेषु च ॥ वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्या राजमार्गस्य भूमयः ॥ १८ ॥

घुमावै यह सब अरिष्टका दूर करनेवाला है ॥ १६ ॥ फिर शक्तिके अनुसार देवमंदिरोंमे, चौरायोंमे, श्मशानमें नदीके किनारे, पर्वतोंपर, और घरोंमें दीपकोंके वृक्ष बनावे ॥ १७ ॥ और वृक्षोंकी जड़ोंमें गोशालाओंमें आगनोंमे और गृहोंमें भी दीप वृक्ष बनावै । और वस्त्रों तथा पुष्पोंसे राजमार्गकी भूमियोंको सजावै ॥ १८ ॥ ॥

और गृहोंमें अनेक प्रकारके पकान्न और फल स्थापन करै और तांबूल लगाकर वहां रक्खे ॥ १९ ॥ और राज मार्गको विशेषकर कमलोंसे शोभित करै । जो कमल न हों तो वस्त्रोंसेही शोभायमान करै ॥ २० ॥ इसप्रकार प्रदोषमें पुरको सजाकर उसके पीछे पहिले ब्राह्मणोंको भोजन कराके और फिर भूखोंको भोजन करावै ॥ २१ ॥ फिर आप भी नवीन वस्त्रालंकार पहिरकर लड्डू पुये, मंडे, आदि तथा गुंजियां और पूरी और कचौडी आदि भोजन करै

गृहेषु स्थापयेन्नानापक्वान्नानि फलानि च ॥ नागवल्लीदलादीनि रचयित्वा च निक्षिपेत् ॥१९॥
शोभां कुर्याद्राजमार्गे कमलैश्च विशेषतः ॥ तदभावेंवरादीनां कृत्वा तानि च शोभयेत् ॥ २० ॥
एवं पुरमलंकृत्य प्रदोषे तदनंतरम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वादौ संभोज्य च बुभुक्षितान् ॥ २१ ॥
लड्डुकापूपमंडाद्याः शष्कुलीपूरिकादिकाः ॥ अलंकृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना ॥ २२ ॥
ततोपराह्णसमये घोषयेन्नगरं नृपः ॥ अद्य राज्यं बलेर्लोका यथेच्छं क्रीड्यतामिति ॥ २३ ॥
यथेच्छं क्रीड्यतां बाला इत्याज्ञाप्य नृपेण तु ॥ विलोक्य बालक्रीडां तां नानासामग्रिसंयुताम् ॥२४॥

॥ २२ ॥ फिर दो पहर पीछे राजा नगरमें ढंढोरा पिटवावै कि आज बलिका राज्य है लोग इच्छा पूर्वक खेलैं ॥ २३ ॥ और राजा यह आज्ञा देकर कि बालक इच्छापूर्वक खेलैं । और अनेक प्रकारकी सामग्रीसे युक्त उस क्रीड़ाको देखकर ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उन्हे वालकोंको खिलौंनें दे फिर शुभअशुभ देखै । उनकी जलाई अग्निमेंसे जो ज्वाला न निकले ॥ २५ ॥ तो महामारी, भय घोर दुर्भिक्ष होय और जो वालक रुष्ट होंय तो राजशोक हो और जो प्रसन्न हों तो सुख हो ॥ २६ ॥ जो वालक युद्ध करे तो राजयुद्धहो और जो वालक रोवें तो वर्षासे राज्यका अवश्य नाश होय ॥ २७ ॥ जो वालक

तेभ्यो दद्यात् क्रीडनकं ततः पश्येच्छुभाशुभम् ॥ तैश्चेत्प्रदीपितो वह्निर्न ज्वालां मुंचते यदा ॥२५॥
महामारी भयं घोरं दुर्भिक्षं चाथ जायते ॥ वालरुष्टौ राजशोकस्तेषां तुष्टौ नृपे सुखम् ॥ २६ ॥
वालयुद्धे राजयुद्धं रोदने वालकैः कृते ॥ अवश्यमेव भवति वर्षाद्राज्यविनाशनम् ॥ २७ ॥
यष्टिकादिकृतानश्चान्यदा रोहंति वालकाः ॥ तदा राज्ञो जयो वाच्यः परराष्ट्रविमर्दनम् ॥२८॥
यदा क्रीडंति वालाश्चेल्लिंगं धृत्वा करादिषु ॥ तदा प्रसिद्धं नारीणां व्यभिचारः प्रजायते ॥ २९ ॥
अन्नं यदा गोपयंति क्रीडने वालका जलम् ॥ दुर्भिक्षं वृष्ट्यभावश्च शीघ्रमेव प्रजायते ॥ ३० ॥
एवं वालकृतां चेष्टां बुद्ध्वा चास्य फलं वदेत् ॥ लोकाश्चापि पुरे रम्ये सुधाधवलिताजिरे ॥ ३१ ॥

लकड़ी आदि लेकर कुत्तोंपर चढे तो राजाकी जय और शत्रुके राज्यका नाश कहना चाहिये ॥ २८ ॥ जो वालक मूत्र चिन्हको हाथमें लेकर खेलै तो स्त्रियोंमें बड़ा व्यभिचार हो ॥ २९ ॥ जो वालक अन्न और जलको छुपावे तो दुर्भिक्ष तथा जलका अभाव शीघ्र होय ॥ ३० ॥ इसप्रकार वालकोंसे कियेहुये कामको जानकर इसका फल कहै ।

और लोग भी सुन्दर पुरमें सुधाके समान स्वच्छ आगनमें ॥ ३१ ॥ सुन्दर दीपक बलाके गीत गावें और बाजे बजावे ॥ आपसमें प्रीतिसे मिलकर प्यार करें ॥ ३२ ॥ तांबूल खाकर चित्तमें प्रसन्नहों गुलाल आदि लगावें जैमे मिल-सकें धोती डुपट्टा आदि वस्त्र और सुवर्णके आभूषण धारण करें ॥३३॥ मित्र,अपने जन, संबन्धी, गोत्र और ज्ञातिवाले आपसमें पूजन करैं और जो जो मनमें हो वह बलिके राज्यमें करना चाहिये ॥३४॥ जीवहिंसा, सुरापान, चोरी, मातृ-

गीतवादित्रसंजुष्टे प्रज्वालितसुदीपके ॥ अन्योन्यप्रीतिसंयुक्ते दत्तलालनके जने ॥ ३२ ॥ तांबूलहृष्टहृदये कुंकुमक्षोदचर्चिते ॥ दुकूलपट्टवसने पथ्यस्वर्णविभूषणे ॥ ३३ ॥ मित्रस्वजन-संबंधीस्वगोत्रज्ञातिपूजिते ॥ बलिराज्ये प्रकर्त्तव्यं यद्यन्मनसि वर्तते ॥ ३४ ॥ जीवहिंसा सुरापानं स्तेयं मातृसमागमः ॥ हित्वा तदन्यत्कर्त्तव्यं बलिराज्ये न दोषभाक् ॥ ३५ ॥ आत्मनो यच्च सौख्यार्थे परदुःखकरं कृतम् ॥ वारांगनादिगमनं स्पृष्टास्पृष्टादिभक्षणम् ॥ ३६॥ अन्यांबरधृतिश्चापि द्यूताद्यं च न दुष्यति ॥ एवं तु सर्वदा कार्यो बलिराज्ये महोत्सवः॥३७॥

समागम इनको छोड़कर बलिके राज्यमें और जो चाहे करें दोषका भागी नहीं होता ॥ ३५ ॥ इसदिन अपने सुखके लिये और शत्रुके दुख देनेके लिये, वेश्यागमन आदिमें छूती अछूती आदि वस्तुके भक्षणमें ॥ ३६ ॥ और दूसरेका वस्त्र पहिननेमें और जुआ आदि खेलनेमें भी दोष नहीं है इस प्रकार बलिके राज्यमें सदा महोत्सव करना चाहिये ॥३७॥

हे मुनीश्वरो ! जीवहिसा सुरापान, जो स्त्री भोगके योग्य न हो उसके साथ संभोग, चोरी, विश्वासघात ये पांच वातें ॥ ३८ ॥ वलिके राज्यमे नरकके द्वार है इनको त्याग दे । फिर अर्द्धरात्रिके समय राजा आप नगरकी ॥ ३९ ॥ सुन्दरता देखनेके लिये धीरै २ पैरो २ जाय । तुरईका वड़ा शब्द होता जाय और लालटैने साथमें हॉय ॥ ४० ॥ और घरकी शोभा करके और घुड़सवारोंकी और मनुष्योंकी क्रीड़ा आदिको और वलिके राज्यका आनन्द देखकर

जीवहिंसा सुरापानमगम्यागमनं तथा ॥ चौर्यं विश्वासघातश्च पंचैतानि मुनीश्वराः ॥ ३८ ॥
बलिराज्ये तु नरकद्वाराण्युक्तानि संत्यजेत् ॥ ततोर्द्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरम् ॥ ३९ ॥
अवलोकयितुं रम्यं पद्भ्यामेव शनैः शनैः ॥ महता तूर्यघोषेण ज्वलद्भिर्हस्तदीपकैः ॥ ४० ॥
हर्म्यं शोभाकृतं यावत् कृतकैरश्वकैर्नरैः ॥ वलिराज्यप्रमोदं च दृष्ट्वा स्वगृहमाव्रजेत् ॥ ४१ ॥
एवंगते निशीथे च जने निद्रार्द्धलोचने ॥ तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिंडिमवादनैः ॥ ४२ ॥
निष्काश्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहांगणात् ॥ दंडैकरजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेहनि ॥ ४३ ॥

अपने घर लौट आवैं ॥ ४१ ॥ जव ऐसे रात्रि वीतजाय और निद्राके कारण आधे नेत्र मनुष्योंके वंदसे हुये जाय तव नगरके नरनारी सूपको नेगाड़ेकी भांति वजाते हुये ॥ ४२ ॥ और प्रसन्न होतेहुये अपने घरके आंगनसे अलक्ष्मी (दरिद्र) निकाले ॥ जो दूसरे दिन दो घड़ी भी रात्रिको अमावास्याहो ॥ ४३ ॥ ॥ ॥

तो पहिले दिनकी छोड़कर दूसरे दिनकी रात्रिही सुखदाई होती है । जो मनुष्य वैष्णव हों बलिराज्यके उत्सवको

तदा विहाय पूर्वेद्युः परेह्नि सुखरात्रिका ॥ ये वैष्णवावैष्णवाश्च बलिराज्योत्सवं नराः ॥४४॥
न कुर्वंति वृथा तेषां धर्माः स्युर्नात्र संशयः ॥ ४५ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ ४४ ॥ नहीं करते हैं उनके धर्म वृथा हैं इसमे संदेह नही है ॥ ४५ ॥ ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥



॥ वालखिल्या वोले । दूसरे दिन पड़वाको तैल लगाकर स्नान करै और फिर नीराजन करके सुन्दर वस्त्र धारण करै और कथा गीत तथा दान इनसे दिवस वितावै ॥ १ ॥ पहिले शिवजीने इस वड़े मनको हरनेवाले जुयेको उत्पन्न किया और कार्तिकशुक्लपक्षकी पड़वाके दिन सदाशिवने पार्वतीसे यह सत्य वचन कहा कि किसीको कालक्षेपके लिये, कि-

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ प्रतिपद्यभयेभ्यंगं कृत्वा नीराजनं ततः ॥ सुवेपः सत्कथागीतैर्दानैश्च दिवसं नयेत् ॥ १ ॥ शंकरस्तु पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम् ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेहनि सत्यवत् ॥ २ ॥ प्रत्युवाच वचश्चेदं देवीं प्रति सदाशिवः ॥ कालक्षेपाय केषांचित् केषांचिद्व्रतहेतवे ॥ ३ ॥ केषांचिद्व्रतनाशाय पश्य द्यूतं कृतं मया ॥ तस्य त्वं कौतुकं पश्य भुवनं लापयाम्यहम् ॥ ४ ॥ उक्त्वेत्थं क्रीडितं ताभ्यां भवान्या च जितं तदा ॥ पुनर्द्वितीयं भुवनं लापितं निर्जितं तया ॥ ५ ॥ पुनस्तृतीयं भुवनं लापितं निर्जितं तया ॥ पुनर्वृषश्चमं पुनः पुनः पन्नगबंधनम् ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

सीको व्रतके कारण ॥२॥३॥ किसीका व्रत नाश करनेके लिये मैने जुयेको रचा है। तुम उसका खेल देखो मै एक भुवनको लगाताहूं ॥ ४ ॥ इसप्रकार कहकर वे दोनों खेले और पार्वतीने उस भुवनको जीत लिया। फिर शिवजीने दूसरे भुवनको लगाया वह भी पार्वतीने जीता ॥ ५ ॥ फिर तीसरे लगाये भुवनको भी जब पार्वतीने जीत लिया तो

शिवजीने बैल लगाया, फिर बांघंबर, बांधनेका सर्प ॥ ६ ॥ फिर चंद्ररेखा, फिर डमरू, फिर अपने अर्द्धांगको लगाया और जब इसे भी पार्वतीजीने जीत लिया तो शिवजी छालकी कोपीन लगाकर घरसे निकल गये ॥ ७ ॥ और गंगाके किनारे आकर चिंतामें बैठ गये । उस समय स्वामिकार्तिक कहीं खेलके लिये चले गये थे ॥ ८ ॥ और जब गंगाके तीरसे घरको लौट रहे थे तो मार्गमें शिवजीको कुछ क्रोधित और विरक्त देखा और पिताके दोनों चरणोंमें

शशिलेखाडमरुकमर्द्धांगं चाप्यजीजयत् ॥ निर्गतस्तु हरो गेहाच्चीरवल्कलधारकः ॥ ७ ॥ गंगातीरे समागत्य तस्थौ चिंतासमन्वितः ॥ तस्मिन्क्षणे कार्तिकेयः खेलितं च गतः क्वचित् ॥ ८ ॥ गंगातीराद्ययौ गेहमपश्यत्पथि शंकरम् ॥ ईषत्क्रोधं विरक्तं च ननाम चरणौ पितुः ॥ ९ ॥ तेनापि मूर्ध्नि चाघ्रातः पुत्र याहि गृहे सुखम् ॥ तव मात्रा जितश्चाहं गच्छामि गहनं वनम् ॥ १० ॥ स्कंद उवाच ॥ कथं मात्रा जितो देवो वनं कस्माच्च गच्छसि ॥ अहमप्यागमिष्यामि त्वत्पादौ सेवयाम्यहम् ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

प्रणाम किया ॥ ९ ॥ शिवजीने भी उनका माथा सूंघा और कहा हे पुत्र ! सुखसे घर जाओ ॥ और मुझे तो तेरी माताने जीत लिया है सो मैं गहरे वनको जाताहूं ॥ १० ॥ स्कंद बोले ॥ आप देवताको माताने कैसे जीत लिया और वनको क्यों जाते हो । मैं भी साथ जाऊंगा और चरणोंकी सेवा करूंगा ॥ ११ ॥ ॥ ॥

॥ शिवजी बोले । तुह्मारी माताने मुझे जीतकर कहा कि अब तुम मेरे लोकमें क्षणभर भी मत ठहरो सो मैं अच्छा कहकर वहांसे कहींको जाताहूं ॥ १२ ॥ स्कंद बोले ॥ हे शिवजी ! तुम जाओ मत मुझे जुयेकी रीति बताओ तो मैं तुह्मारा सब धन आदि जीतकर लादूंगा ॥ १३ ॥ शिवजीने अच्छा "ऐसा कहकर जुयेकी रीति बताई । फिर तो

॥ शिव उवाच ॥ विजित्य तव मात्रा तु क्षणं न स्थेयमत्र तु ॥ मम लोके तथेत्युक्त्वा क्वचिद्गच्छाम्यहं ततः ॥ १२ ॥ स्कंद उवाच ॥ नागच्छ त्वं महादेव द्यूतमार्गः प्रदृश्यताम् ॥ आनीयते मया जित्वा तव सर्वं धनादिकम् ॥ १३ ॥ शिवेनाथ तथेत्युक्त्वा द्यूतमार्गः प्रदर्शितः ॥ स्कंदोपि गृहमागत्य पार्वतीं वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥ स्कंद उवाच ॥ देवि देवो गतः कासौ वृषभोत्रैव संस्थितः ॥ तव के च विधुः कस्मान्मातः सत्यं वदस्व नः ॥ १५ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ स्वयमेव कृतं द्यूतं स्वयमेव पराजितः ॥ स्वयमेव गतः क्रोधात्प्रार्थ्यते स मया कथम् ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥

स्कंदने घर आकर पार्वतीजीसे कहा ॥ १४ ॥ स्कंद बोले ॥ हे माता ! शिवजी कहां गये और नादिया यहांहीं बैठा है और तुह्मारे पास चंद्रमा कहांसे आया सो हे माता ! मुझसे सत्य २ कहो ॥ १५ ॥ पार्वती बोलीं ॥ शिवजीने आपही तो जुयेको रचा और आपही हारे और आपही क्रोधसे निकल गये मैं क्यौं उनकी प्रार्थना करती ॥ १६ ॥ ॥

॥ स्कंद बोले ॥ तुम मेरे साथ खेलो देखूं तो वह कैसा खेल है पार्वती उसके साथ खेलीं फिर तो स्कंद जीते ॥ १७ ॥ मोर लगाकर उससे नादिया जीत लिया शक्तिसे बंधनका सर्प जीता फिर नादियेसे अर्द्धांग जीता यों उमने अपनी वस्तु लगा २ कर सब धन जीत लिया ॥ १८ ॥ कोपीनसे बाघंबर जीता और सबको ले शिवजीके पास गये । और

॥ स्कंद उवाच ॥ मया सह क्रीडितव्यं कथं तत्क्रीडनं त्विति ॥ देव्यक्रीडत्तेन सार्द्धं ततः स्कंदेन निर्जितम् ॥ १७ ॥ मयूरेण वृषस्तस्याः शक्त्या पन्नगबंधनम् ॥ वृषेणेंदुस्ततोर्धांगं स्वं सर्वं स्वेन निर्जितम् ॥ १८ ॥ कौपीनेनार्जितं चर्म गृहीत्वा तदुपाययौ ॥ गंगातीरे यत्र शिवस्तत्रागत्य न्यवेदयत् ॥ १९ ॥ ततो देवीसमीपे तु विघ्नराजः समाययौ ॥ किमर्थं म्लानवदना देवि जातासि तद्वद ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ मया जितो महादेवः स तु गेहाद्विनिर्गतः ॥ आयास्यति वृषाद्यर्थमिति निश्चित्य संस्थितम् ॥ २१ ॥ तव भ्राता तु तज्जित्वा सर्वमस्मै निवेदितम् ॥ नायास्यत्यधुना देव इति चिंतापरास्म्यहम् ॥ २२ ॥

गंगाके किनारे जहां शिवजी थे वहां आकर उनको भेट करदिया ॥ १९ ॥ इतनेमें पार्वतीजीके पास गणेशजी आये और पूछा कि हे माता ! आज तुह्मारा मुख मलीन क्यों हो रहा है सो कहो ॥ २० ॥ देवी बोली ॥ मैंने शिवजीको जीत लिया था और वे घरसे निकल गयेथे और बैल लेनेको आवेंगे ऐसा निश्चय किये मैं बैठीथी ॥२१॥ परंतु तुह्मारे भाईने

सब जीतकर उन्हें देदिया कहीं अब भी न आवै इस चिन्तामें वैठीहूं ॥ २२ ॥ गणेशजी वोले ॥ हे माता ! जो मैं तुह्मारा पुत्र होऊं तो तुम मुझे जुआ सिखादो कि में भाई और शिवजीको जीतकर सब सामग्री लेआऊं ॥ २३ ॥ पुत्रका यह वचन सुनकर पार्वतीने उन्हें जुआ सिखाया और वह दो पासे और चौसरको शीघ्र लेआये ॥ २४ ॥ और

॥ गणेश उवाच ॥ देवि शिक्षय मे द्यूतं जेष्यामि भ्रातरं हरम् ॥ आनयिष्यामि सामग्रीं यद्यहं स्यां सुतस्तव ॥ २३ ॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा तस्मै द्यूतमशिक्षयत् ॥ स गृहीत्वा पाशयुग्मं सारिकाः शीघ्रमाययौ ॥ २४ ॥ पृष्ट्वा पृष्ट्वा यत्र देवः स्कंदो यत्र व्यवस्थितः ॥ गणेश उवाच ॥ मयानीताविमौ पाशौ सारिकानाव्यमेव च ॥ २५ ॥ संक्रीडतु मया सार्द्धं देवस्याग्रे ममाग्रज ॥ इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा उभाभ्यां क्रीडितं तदा ॥ २६ ॥ मूषकेण वलीवर्दौ मयूरं चाप्यजीजयत् ॥ शिवस्य सर्वविषयं स्कंदस्य च तथैव च ॥ २७ ॥ गृहीत्वा स तु विघ्नेशस्तत्कालं पार्वतीं ययौ ॥ पार्वत्यपि च संतुष्टा गणेशं वाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥ ॥ ॥

पूछते २ वहां आये कि जहां शिवजी और स्कंद वैठेथे । गणेशजी वोले ॥ मैं ये दो पाशे और चौपड़ लायाहूं ॥ २५ ॥ आपके सामने मेरे वड़े भाई मेरे साथ खेलें । भाईका यह वचन सुनकर दोनो साथ २ खेले ॥ २६ ॥ और गणेशजीने चूहेसे तो नादियेको और मोरको जीत लिया और अंतमें शिवजीका और स्कंदका जो कुछ था सब जीतलिया ॥ २७ ॥ और वे गणेशजी

सबको लेकर पार्वतीके पास आये और पार्वतीने प्रसन्न होकर गणेशजीसे कहा ॥ २८ ॥ पार्वती बोलीं ॥ हे पुत्र ! तुमने अच्छा किया पर महादेवजीको नहीं लाये सो साम दान आदि उपाय करके शिवजीको यहां लाओ ॥ २९ ॥ अच्छा लाताहूं ऐसा कहकर वह गणेशजी मूसेपर चढ़कर बहुत शीघ्र घर लौटानेके लिये शिवजीके पास आये ॥ ३० ॥ इतनेमें शिवजी वहांसे उठकर हरिद्वार आगये । और इधर नारदजीने यह समाचार भगवान्‌से कहा सो वे भी वहां

॥ पार्वत्युवाच ॥ सम्यक्कृतं त्वया भद्र नानीतोसौ महेश्वरः ॥ सामदानादिकं कृत्वा अनयात्र-महेश्वरम् ॥ २९ ॥ तथेत्युक्त्वा गणेशोसौ समारुह्य च मूषकम् ॥ अतित्वरित आयातो गृहं नेतुं महेश्वरम् ॥ ३० ॥ ईश्वरस्तत उत्थाय हरिद्वारं समागतः ॥ नारदेरितवृत्तांतो विष्णुस्तत्र समागतः ॥ ३१ ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्र्यक्षां विद्यां कुरु शिव एकाक्षोहं भवाम्यहम् ॥ रावणेन तथेत्युक्तं काणो भव जनार्दन ॥ ३२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ओतुवत्पश्यसे मां त्वं तस्मादोतुर्भ-विष्यसि ॥ नारद उवाच ॥ देवसिद्धं महाकार्यमायाति स गणेश्वरः ॥ ३३ ॥ ॥

आये ॥ ३१ ॥ विष्णु बोले ॥ हे शिवजी ! तीन पासोंकी विद्या रचो एक पासा तो मैं होताहूं । रावणने छूटतेही कहा कि तुम पासा होजाओ ॥ ३२ ॥ विष्णु बोले । तू मुझे बिलावकी भांति देख रहा है सो तू बिलाव होजायगा । नारद बोले । हे शिवजी ! काम तो बड़ा सिद्ध होगया परंतु वे गणेशजी ॥ ३३ ॥ ॥ ॥

आपका वृत्तान्त जाननेके लिये आरहेहैं सो उनका चूहा छीनलो । नारदजीका यह वचन सुनकर रावण विलावका शब्द करता हुआ गया सो वह चूहा भाग गया । मूषकको छोड़कर गणेशजी धीरे २ पास आये॥३४॥३५॥और उन्होंने दूसरे देखा कि विष्णु पासे वने वैठ है ॥ नणेशजीने महादेवजीको नमस्कार किया और नीचा शिरकरके खड़े होगये

भवद्धृत्तांतं ज्ञातुं च मूषकस्तस्य घर्ष्यताम् ॥ इति श्रुत्वा नारदस्य वचनं रावणो गतः ॥३४॥ कुर्वन्मार्जारवच्छन्दं मूषकोसौ पलायितः ॥ मूषकं त्यज्य गणपः शनैः शनैरुपाययौ ॥ ३५ ॥ जातो विष्णुः पाश इति दूरतस्तेन लोकितम् ॥ प्रणिपत्य महादेवं विनम्रनतकंधरः ॥ ३६ ॥ ॥ गणेशउवाच ॥ आगम्यतां देव गेहं देवीमानपुरःसरम् ॥ यदि नायासि गेहे त्वं प्राणांस्त्यजति चांबिका ॥ ३७ ॥ त्वय्यागते मया सर्वं कार्यमेतदुपायनम् ॥ शिवउवाच ॥ एषा त्र्यक्षा मया विद्याधुना गणप निर्मिता ॥ ३८ ॥ अनया क्रीडते देवी आगमिष्ये गृहे तदा ॥ गणेश उवाच ॥ सर्वथैव क्रीडितव्यं देव्या नास्त्यत्र संशयः ॥ ३९ ॥

॥ ३६ ॥ गणेशजी वोले ॥ हे पिताजी ! अव घर चलो पार्वतीने वड़े आदरसे वुलाया है और जो तुम घर नहीं चलोगे तो पार्वती प्राणोंको छोड़ देगी ॥ ३७ ॥ और कहा है कि आपके आनेपर आपकी सव वस्तु भेटकर दूंगी । शिवजी वोले । हे गणेश ! मैंने यह तीन पासोंकी विद्या अभी रची है ॥ ३८ ॥ जो देवी इससे खेले तो मैं घर आऊंगा ।

गणेशजी बोले । देवी सब प्रकारसे खेलैगी इसमें संदेह नहीं है ॥३९॥ हे महाराज ! घर तो चलो और हे भाई स्कंद तुम चलो वा मत चलो । उनका यह वचन सुनकर महादेवजी अपने गणसमेत गये ॥ ४० ॥ नारद भी वहां गये और बड़ा बिलाव रावण भी वहां आया । सब कैलासमें पहुंचे और पार्वतीजीभी वहां आईं ॥ ४१ ॥ देवीको देखकर और नमस्कारकर महादेवजी बोले । हे देवि ! गंगाके किनारे मैंने तीन पासेकी विद्या बनाई है ॥ ४२ ॥ जो तुम मुझे

आगम्यतां गृहे देव भ्रातरायाहि मा व्रज ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा ईश्वरः सगणो ययौ ॥ ४० ॥ नारदोपि गतस्तत्र महौतुरपि चागतः ॥ उपरिष्टास्तु कैलासे देवी तत्र समागता ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा देवीं प्रणम्यादौ महेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ त्र्यक्षा विद्या मया देवी गंगाद्वारे विनिर्मिता ॥ ४२ ॥ अनया जयसे त्वं चेत्तदा त्वं सत्यभाषिणी ॥ देव्युवाच ॥ वृषाद्या तव सामग्री मयेयं पालिता शिव ॥ ४३ ॥ त्वया किं लाप्यते देव दर्शयस्व ममाग्रतः ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः प्रैक्षताधोमुखं हरः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

इससे जीत लोगी तो तुम सत्यभाषिणी हो । पार्वती बोलीं ॥ हे शिवजी ! नादियेको आदि लेकर मैंने आपकी यह सब सामग्रीकी तो जीतली है ॥ ४३ ॥ अब तुम क्या लगाओगे सो मेरे सामने दिखाओ । उनका यह वचन सुनकर जब महादेव नीचा मुखकर देखने लगे ॥ ४४ ॥ ॥ ॥ ॥

तस्मिन्क्षणे नारदेन स्वकौपीनं समर्पितम् ॥ वीणादंडश्चोपवीतमनेन क्रीड्यतामिति ॥ ४५॥
सदाशिवः प्रसन्नोभूत् क्रीडनं सहचक्रतुः ॥ यद्यद्याचयते रुद्रस्तथा विष्णुः प्रजायते ॥ ४६॥
यद्यद्याचयते देवी विपरीतस्तदापतत् ॥ स्वकीयाभरणाद्यं च महादेवेन निर्जितम् ॥ ४७ ॥
स्कंदालंकारिकं सर्वं पुनरात्तं हरेण च ॥ ततो गणेशः प्रोवाच वाक्यं सदसि चागतः ॥ ४८ ॥
न क्रीडितव्यं हे मातः पाशो लक्ष्मीपतिः स्वयम् ॥ कृतो हरेण सर्वस्वं ते हरिष्यति मत्पिता ॥४९॥
इति पुत्रवचः श्रुत्वा पार्वती क्रोधसंयुता ॥ तथाविधां तामालोक्य रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥५०॥

तो उसी क्षण नारदजीने अपनी कोपीन देदी, और वीणा दंड तथा यज्ञोपवीति देदिया और कहा इनसे खेलिये ॥ ४५ ॥ सदाशिव प्रसन्न होगये और शिव पार्वती आपसमें खेलने लगे । शिवजी जो जो दांव चाहें विष्णु वही २ होते जांय ॥ ४६ ॥ और देवी जो जो दांव चाहै उससे उलटा पासा पड़ै । उनके आभरण आदिको महादेवजीने जीत लिया ॥ ४७ ॥ फिर पार्वतीने स्कंदके आभूपणोंको लगाया उन सबकोभी महादेवजीने जीत लिया । फिर गणेशजीने सभामें आकर यह वचन कहा कि ॥ ४८ ॥ हे माता ! तुम मत खेलो शिवजीने साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान्को पासा बना लिया है सो मेरे पिता तुह्मारा सर्वस्व जीत लेंगे ॥ ४९ ॥ पुत्रका यह वचन सुनकर पार्वती बड़ी क्रोधित हुई । उनको क्रोधित देख रावणने कहा ॥ ५० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ रावण बोला ॥ पापी और नास्तिक विष्णुने मुझे भी आज शाप दिया है उन्हें यह अधर्म नहीं करना चाहिये था यह मैंने तबही कहा था ॥ ५१ ॥ पार्वती बोलीं ॥ हे पुत्र ! मैं इन सब महाबली धूर्तोंको शाप दूंगी मेरी सामर्थ्य और इनके धर्मके त्यागका फल देखना ॥ ५२ ॥ हे महादेव ! तुमने स्त्रीके साथ कपट किया है इसलिये तुह्मारा शिर सदा स्त्रीके

॥ रावण उवाच ॥ पापिष्ठेनाद्य शप्तोस्मि दुर्दुरूढेन विष्णुना ॥ अधर्मोयं न कर्तव्य इत्युक्तं च मया ततः ॥ ५१ ॥ देव्युवाच ॥ सर्वाञ्छपिष्ये वत्साहं धूर्तानेतान्महाबलान् ॥ सामर्थ्यं पश्य मे पुत्र धर्मत्यागफलं तथा ॥ ५२ ॥ देव यस्मादबलया कपटं च कृतं त्वया ॥ तस्मात्सदास्तु ते मूर्द्धाबलाभारप्रपीडितः ॥ ५३ ॥ यतस्ततः कुचेष्टा त्वं यतः शिक्षयसे मुने ॥ स्वप्ने चापि सुखं स्त्रीणां न कदाचिद्भविष्यति ॥ ५४ ॥ यतः कृता चाबलया सह माया त्वया हरे ॥ एषो वैरी रावणोयं तव भार्यां नयिष्यति ॥ ५५ ॥ हित्वा मां मातरं पुत्र बालकत्वं त्वया कृतम् ॥ अतस्त्वं न युवा वृद्धो बाल एव भविष्यसि ॥ ५६ ॥ ॥

भारसे दुखी रहै ॥ ५३ ॥ और हे नारदमुनि ! तुम जो इधर उधर बुरे कामकी शिक्षा देतेहो सो तुमको सुपनेमें भी कभी स्त्रियोंका सुख नहीं होगा ॥ ५४ ॥ और हे भगवन् ! तुमने जो स्त्रीके साथ माया रची है सो यह रावण तुमारा वैरी बनकर तुह्मारी स्त्रीको हर लेजायगा ॥ ५५ ॥ और हे पुत्रस्कंद ! तेने जो मुझ माताकी अवज्ञाकर लड़कपन

किया है इसलिये तू युवा और वृद्ध न होकर वालकही रहैगा ॥ ५६ ॥ गणेशजी वोले ॥ इस विलावरूपने इस चुहेको भगा दिया था और मार्गमें वड़ा विघ्न किया था सो इस नीचे राक्षसको भी शाप दो ॥ ५७ ॥ देवी वोली ॥ हे दुष्ट रावण ! तेने मेरे वालकका जो विघ्न किया है इसलिये ये तेरे वैरी विष्णु तुझे मारैगे ॥ ५८ ॥ पार्वतीका यह वचन

॥ गणेश उवाच ॥ अनेन चोतुरूपेण मूपकोयं पलायितः ॥ मध्ये मार्गं कृतो विघ्नः शपैनं राक्षसाधमम् ॥ ५७ ॥ देव्युवाच ॥ यस्माद्विघ्नः कृतो दुष्ट त्वया मे वालकस्य तु ॥ तस्मादयं तव रिपुर्विष्णुस्त्वां घातयिष्यति ॥ ५८ ॥ इति देव्या वचः श्रुत्वा सर्वे संक्रुद्धमानसाः ॥ देवीशापे मनश्चक्रुर्नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ कोपं कुर्वंतु मा देवा नेयं शप्या कदाचन ॥ सर्वेपामादिमायेयं यथायोग्यफलप्रदा ॥६०॥ नायं शाप असावाशीः स्मर्त्तव्या सुविचक्षणैः ॥६१॥ गंगा सदा तिष्ठतु रुद्रमस्तके वलाद्रमां वै नयतु क्षपाचरः ॥ जाया हरस्यापि यथोचिता मृतिश्चानंगतृष्णारहितः कुमारः ॥ ६२ ॥ ॥ ॥ ॥

सुनकर मनमें सव क्रोधित हुये और मनमें देवीको शाप देना चाहा तो नारदजीने कहा ॥ ५९ ॥ हे देवताओ ! कोप मत करो उन्हैं शाप नहीं लगैगा ये सवकी आदि माया हैं और यथायोग्य फलकी देनेवाली हैं ॥ ६० ॥ यह शाप नहीं है तुम तो वड़े वुद्धिमान् हो तुम्हैं इसे आशीर्वाद समझना चाहिये ॥ ६१ ॥ गंगा सदा शिवजीके मस्तकपर

रहै, रावण बलपूर्वक लक्ष्मीको हर लेजाय, महादेवकी स्त्री भी यथोचित मृत्यु होय और स्वामिकार्तिक भी कामकी इच्छासे रहित हों ॥ ६२ ॥ और मैं भी धरतीपर फिरूं और कभी न ठहरूं हे पार्वती ! तुमने अच्छा कहा अब मेरी बात सुनों ॥ ६३ ॥ यह कहकर पार्वतीजीका सब क्रोध दूर करानेके लिये मुनिश्रेष्ठ नारद नाचने लगे। और क्षमाके लिये अंचल पसारकर हाहाहीही उच्चारण करने लगे ॥ ६४ ॥ उनकी चेष्टाको देखकर सब प्रसन्न होगये । और पार्वती

अहं भ्रमामि धरणीं न स्थातव्यं कदाचन ॥ सम्यक्प्रोक्तं त्वया देवि शृणुविदानीं वचो मम ॥ ६३ ॥ सर्वक्रोधापनुत्यर्थं ननर्त मुनिपंगवः ॥ कक्षादानं चकारोच्चैर्हाहाहीहीति चाब्रवीत् ॥ ६४ ॥ तस्य चेष्टां विलोक्याथ सर्वे हर्षमवाप्नुयुः ॥ देव्युवाच ॥ भो भो विदूषकश्रेष्ठ कृतकृत्योसि नारद ॥ ६५ ॥ वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥ नारद उवाच ॥ याचयंतु वरं सर्वे किं वा किं याचयिष्यथ ॥ ६६ ॥ सर्वं ते याचयिष्यामि यथाश्रेष्ठं ब्रुवंतु तान् ॥ शिव उवाच ॥ सर्वं संक्षम्यतां देवि जितं यद्वृषभादिकम् ॥ ६७ ॥ ॥ ॥

बोलीं ॥ हे नारद ! तू अच्छा भांड बना मैं तुझपर प्रसन्न हूं ॥ ६५ ॥ तेरा कल्याण होय जो तेरे मनमें होय सो वर माग ॥ नारद बोले ॥ या तो सब अपना वर मागें अथवा जो ये सब चाहते हैं उस सबको मैंही मागताहूं सो तुम वरोंके लिये तथास्तु कहिये–शिवजी बोले। हे देवि ! क्षमा करके जो तुमने मेरा वृषभ आदि जीत लिया है उसे देदो ॥६६॥६७॥

हे जगदंबा ! औ यह वर दो कि जो मेरा है उसे कोई सौ वारके जुयेसेभी न लेसके । देवी बोली । हे नाथ ! तुह्मारे साथ मेरा भेद स्वप्नमें भी न हो ॥ ६८ ॥ और इसीको मैं बहुत मानतीहूं कि आपका क्रोध मेरे ऊपर न हो । और कार्तिकके शुक्लपक्षकी पड़वाके दिन ॥ ६९ ॥ जो मैंने तुमसे सच्ची जय पाई है सो हे महेश्वर ! इसदिन मनुष्योंको

तन्ममास्तु द्यूतशतैर्न ग्राह्यं जगदंबिके ॥ देव्युवाच ॥ मास्तु त्वया समं नाथ स्वप्नेपि मम चांतरम् ॥ ६८ ॥ एतदेव परं मन्ये माभूत्क्रोधो ममोपरि ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेहनि सत्यवत् ॥ ६९ ॥ जयो लब्धो मया त्वत्तः सत्येनैव महेश्वर ॥ तस्माद् द्यूतं प्रकर्त्तव्यं प्रभातेत्रैव मानवैः ॥ ७० ॥ तस्माद् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ॥ विष्णुरुवाच ॥ अद्य यद्यत्करिष्यामि श्रेष्ठं वा लघुमेव च ॥ ७१ ॥ तथातथा स भवतु वरमेनं वदाम्यहम् ॥ ७२ ॥ स्कंद उवाच ॥ मातर्मनस्तपस्यायां मम तिष्ठतु सर्वदा ॥ कदापि विषये मास्तु देय एषो वरो मम ॥ ७३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सवेरे जुआ खेलना चाहिये ॥ ७० ॥ और उस जुयेमें जिसकी जीत हो उसकी वर्षभर जय होगी ॥ विष्णु बोले ॥ आज जो जो मैं बुरा भला करताहूं ॥७१॥ वह वैसाही वैसा हो यह वर मैं मांगता हूं ॥ ७२ ॥ स्कंद बोले । हे माता! मेरा मन सदा तपस्यामें लगै और कभी विषयमें न लगै यह वर मुझे दो ॥ ७३ ॥ ॥ ॥

॥ गणेशजी बोले । संसारमें जितने कार्य हैं उनके आदिमें मेरा पूजन होनेके कारण मेरी कृपासे सब सिद्धहों और विन पूजनके कभी सिद्ध नहों ॥ ७४ ॥ रावण बोला । मुझे वेदकी व्याख्या करनेकी सामर्थ्य शीघ्र होजाय और सदाशिवमें सदा मेरी निश्चल भक्ति हो ॥ ७५ ॥ नारद बोले । जो कोई मनुष्य क्रोधित हों वा प्रसन्न हो मूर्ख हों वा पंडि-

॥ गणेश उवाच ॥ संसारे यानि कार्याणि तदादौ मम पूजनात् ॥ यांतु सिद्धिं मम कृपां विना सिध्यंतु मा क्वचित् ॥ ७४ ॥ रावण उवाच ॥ वेदव्याख्यानसामर्थ्यं मम शीघ्रं भवत्विति ॥ सदाशिवे सदा चास्तु भक्तिर्मेव्यभिचारिणी ॥ ७५ ॥ नारद उवाच ॥ क्रुद्धाक्रुद्धाश्च ये केचिन्मूर्खामूर्खाश्च ये जनाः ॥ मद्वाक्यं सत्यमित्येव मा नयंतु सदासुराः ॥ ७६ ॥ इत्युक्त्वांतर्हिताः सर्वे देवा रुद्रपुरोगमाः ॥ तस्मात्प्रतिपदि द्यूतं कुर्यात्सर्वोपि वै जनः ॥ ७७ ॥ द्यूतं निषिद्धं सर्वत्र हित्वा प्रतिपदं बुधाः ॥ स्वस्योद्यमादिज्ञानाय कुर्यात् द्यूतमतंद्रितः ॥७८॥ विशेषवच्च भोक्तव्यं प्रशस्तैर्ब्राह्मणैः सह ॥ दयिताभिश्च सहितैर्नेया सा च निशा भवेत् ॥ ७९ ॥

त हों मेरी बातको देवता सदा सत्य माना करें ॥ ७६ ॥ यह कहकर रुद्र आदि सब देवता अंतर्धान होगये । इसलिये पड़वाके दिन सबको जुआ खेलना चाहिये ॥ ७७ ॥ हे पण्डितो ! पड़वाको छोड़कर जुआ सदा निषिद्ध है । अपने उद्यम आदिके ज्ञानके लिये सावधान होकर जुआ खेलें ॥ ७८ ॥ और अच्छे २ ब्राह्मणोंके साथ अच्छे २ भोजन करना

चाहिये और स्त्रियोंके साथ उस रातको वितावै ॥ ७९ ॥ फिर वड़े मानसे हार और कड़े आदि देकर अंतःपुरकी स्त्रियोंका और फोजके मनुष्योंका सत्कार करै ॥ ८० ॥ और राजा आप अपने आदमियोंको अलग २ धनसे संतुष्ट करै । फिर वृषभ और भैंसे जो औरोंके साथ लड़े हैं उनको ॥ ८१ ॥ और हाथी घोड़े योधा और फोजवाले इनका सत्कार धन वस्त्रादिसे करै । और सिंहासनपर वैठकर नट नर्तक और चरणोंका खेल देखै ॥ ८२ ॥ और वैल भैंसे आदिको

ततः संपूजयेन्मानैरंतःपुरनिवासिनीः ॥ पदातिजनसंघातान् ग्रैवेयैः कटकैः शुभैः ॥ ८० ॥
स्वनामकैः स्वयं राजा तोषयेत्स्वजनान् पृथक् ॥ वृषभान्महिषांश्चैव युध्यमानान्परैः सह ॥८१॥
गजानश्वांश्च योधांश्च पदातीन्समलंकृतान् ॥ मंचारूढः स्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान् ॥ ८२ ॥
योधयेत्रासयेच्चैव गोमहिष्यादिकं तथा ॥ ततोपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि काश्यप ॥ ८३ ॥
मार्गपालीं प्रवध्नीयात्तुंगे स्तंभेथ पादपे ॥ कुशकाशमयीं दिव्यां लंवकैर्वहुभिर्नृपः ॥ ८४ ॥
दर्शयित्वा गजानश्वान्सायमस्ताचलं नयेत् ॥कृतहोमैर्द्विजैः सम्यग् वध्नीयान्मार्गपालिकाम्॥८५॥

लड़ावै और भय दिखावै फिर हे काश्यप ! अपराह्ण समयमे पूर्व दिशाकी ओर ॥ ८३ ॥ हे राजन् ! वहुतसी लंवी कुश और कासकी मार्गपाली कहिये वुहारीके समान झोंरी वनाकर उंचे खंभ अथवा वृक्षपर वांधै ॥ ८४ ॥ और सायं-कालको उसे हाथी और घोड़ोंको दिखलवाकर ग्रंथ मोचन करदे । और इस मार्गपाली झोंरीको अग्निहोत्री ब्राह्म-

णोंके द्वारा अच्छे प्रकारसे बंधावै ॥ ८५ ॥ और यह स्तुति पढ़ै कि हे मार्गपाली ! तुमको नमस्कार है तुम सब

मार्गपालि नमस्तेस्तु सर्वलोकसुखप्रदे ॥ मार्गपालीं समुलंघ्य नीरुजः स्युः सुखान्विताः
॥ ८६ ॥ तस्मादेतत्प्रकर्त्तव्यं द्यूताद्यं विधिपूर्वकम् ॥ ८७ ॥ ॥ ॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्यूतविधिर्नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

लोकोंको सुख देनेवाली हो और जो मनुष्य मार्गपालीको उलांघते हैं वे नीरोग और सुखी होते हैं ॥ ८६ ॥ इसलिये यह द्यत आदि विधिपूर्वक अच्छी भांति करना चाहिये ॥ ८७ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्यूतविधिर्नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥



वलिके पूजनमें पूर्वविद्धा प्रतिपदा कही है सो जब साढ़े तीन प्रहर प्रतिपदा वर्द्धमान तिथि हो तब पूजा करनी चाहिये ॥ १ ॥ और जो द्वितीया वृद्धगामी हो तो उसे उत्तरा कहना चाहिये वह पूर्वविद्धा नहीं हुई । पूजाके दिन दैत्योंके राजा वलिको पांच रंगके वर्णसे लिखै ॥ २ ॥ घरके चौकमें विंध्यावली उसकी स्त्रीको भी बनावै । जीभ, ताछु, आखे इनके प्रांतते और हाथ पैरोंके तलोंमे ॥ ३ ॥ और मुखमें लाल रंग भरै और केशोंको काले रंगसे लिखे ।

पूर्वविद्धा प्रकर्त्तव्या प्रतिपद्वलिपूजने ॥ वर्धमानतिथिर्नंदा यदा सार्द्धत्रियामिका ॥ १ ॥
द्वितीया वृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते ॥ वलिमालिख्य दैत्येंद्रं वर्णकैः पंचरंगकैः ॥ २ ॥
गृहस्य मध्यशालायां विंध्यावल्या सहान्वितम् ॥ जिह्वाताल्वक्षिणीप्रांते करयोः पादयोस्तले ॥३॥
रक्तवर्णेनास्य केशाः कृष्णेनैव समं लिखेत् ॥ सर्वांगं पीतवर्णेन शस्त्राद्यं नीलवर्णतः ॥ ४ ॥
वस्त्राद्यं श्वेतवर्णेन यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥ सर्वाभरणशोभाढ्यं द्विभुजं नृपचिह्नितम् ॥ ५ ॥
लोको लिखेद्गृहस्यांतःशय्यायां शुक्लतंदुलैः ॥ मंत्रेणानेन संपूज्य षोडशैरुपचारकैः ॥ ६ ॥

और सब अंगको पीले वर्णसे और शस्त्र आदिको नीले वर्णसे लिखै ॥ ४ ॥ और वस्त्र आदिको श्वेत वर्णसे लिखै । जिस प्रकार वह शोभायमान हो वैसा बनावे । संपूर्ण अंलकारोंसे युक्त करै दो भुजा बनावै फिर उसमें राजचिन्ह दे ॥ ५ ॥ और लोगोंको घरमें शय्याके ऊपर स्वेत चांवलोंसे भी मूर्ति लिखनी चाहिये और इस मंत्रद्वारा पोडशोपचा-

रसे पूजन करै ॥ ६ ॥ हे राजाबलि ! तुमको नमस्कार है तुम दैत्य और दानवसे पूजित हो । इन्द्रके और देवताओंके शत्रु मुझे विष्णुके पास निवास दो ॥ ७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! बलिके लिये जो दान दिये जाते हैं वे अक्षय होते हैं और मैंने यह तुम्हें सब दिखा दिया है ॥ ८ ॥ और हे युधिष्ठिर ! पृथ्वीपर यह दिवाली आनन्दको देनेवाली है इसलिये बड़े २ राजा लोगोंने और श्रेष्ठमुनियोंने इसका नाम कौमुदी कहा है ॥ ९ ॥ और हे युधिष्ठिर ! इस दिवालीपर जो जिस

बलिराजनमस्तुभ्यं दैत्यदानवपूजित ॥ इंद्रशत्रोमराराते विष्णुसांनिध्यदो भव ॥ ७ ॥ बलि-
मुद्दिश्य दीयंते दानानि मुनिपुंगवाः ॥ यानि तान्यक्षयाणि स्युर्मयैतत्संप्रदर्शितम् ॥ ८ ॥
कौ मुत्प्रीतिकरं यस्माद्दीयतेस्यां युधिष्ठिर ॥ पार्थिवेंद्रैर्मुनिवरैस्तेनेयं कौमुदी स्मृता ॥ ९ ॥
यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर ॥ हर्षदैन्यादिरूपेण वर्षं तस्य प्रयाति हि ॥ १० ॥
बलिपूजां विधायैवं पश्चाद्गोक्रीडनं चरेत् ॥ गवां क्रीडा दिने यत्र रात्रौ दृश्येत चंद्रमाः ॥ ११ ॥
सोमो राजा पशून्हंति सुरभीपूजकांस्तथा ॥ प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम् ॥ १२ ॥

भावसे रहता है उसका हर्ष शोक आदिसें वैसाही वर्ष व्यतीत होता है ॥ १० ॥ इसप्रकार बलिकी पूजाकर पीछे गौओंकी क्रीड़ा करनी चाहिये । और जिस दिन रात्रिमें चन्द्रमा दीखे उस दिन गौओंकी क्रीड़ा न करै ॥ ११ ॥ क्योंकि चन्द्रराज प्रभुओंको और गौओंकी पूजा करनेवालोंको हानि कारक है इसलिये अमावस्या और प्रतिपदाके संयोगमें

गायोंका क्रीड़न करै यही संमत श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥ और जो परविद्धामें करता है तो पुत्र स्त्री और धनका क्षय होता है। पूजनके दिन गौओंको अलंकार आदिसे सजाकर गौग्रास दे और उनकी पूजा करै ॥ १३ ॥ गीत गाता हुआ और वाजे वजाता हुआ उन्हें नगरके वाहर लेजाय। फिर वहांसे लाकर उनकी आरती करै ॥१४॥ और जो पूजनके दिन प्रतिपदा थोड़ी हो तो स्त्री आरती उतारे। और द्वितीयाके सायंकालको मंगल मालिका अर्थात् आरती करै ॥१५॥ इसप्रकार नी-

परविद्धासु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः ॥ अलंकार्यास्तदा गावो गोग्रासादिभिरर्चिताः ॥ १३ ॥
गीतवादित्रनिर्घोषैर्नयेन्नगरवाह्यतः ॥ आनीय च ततः पश्चात्कुर्यान्नीराजने विधिम् ॥ १४ ॥
अथ चेत्प्रतिपत्स्वल्पा नारी नीराजनं चरेत् ॥ द्वितीयाया ततः कुर्यात्सायं मंगलमालिका ॥१५॥
एवं नीराजनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ प्रतित्पूर्वविद्धैव यष्टिकाकर्षणे भवेत् ॥ १६ ॥
कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् ॥ देवद्वारे नृपद्वारेथवा नेया चतुष्पथे ॥ १७ ॥
तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथैकतः ॥ गृहीत्वा कर्षयेयुस्ते यथासारं मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥

राजन करै तो सब पापोंसे छूट जाता है। और पूर्वविद्धा प्रतिपदाके दिनही यष्टिकाकर्षण कहिये लंबी लकड़ीको खैंचातानी करै ॥ १६ ॥ और उस लकड़ीके ऊपर कुशकाशलपेटे और उसे वड़ी पक्की और नई वनावै। और मंदि-रके द्वारपर अथवा राजाके द्वारपर अथवा चौराहेपर लेजाय ॥ १७ ॥ उसे एक तरफ राजाके पुत्र और एक ओर

हीन वर्णोंके बालक पकड़कर अपने बलके अनुसार वारं २ खैचे ॥ १८ ॥ दोनों ओर बालकोंकी संख्या बराबर होय और सब अधिक बली होंय। जो खेलमें हीन जातिवालोंकी जीत हो तो वर्षभरतक राजाकी जय होय ॥ १९ ॥

समसंख्या द्वयोः कार्या सर्वोपि बलवत्तरः ॥ जयोत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम् ॥ १९ ॥
उभयोः पृष्ठतः कार्या रेखा सा कर्पकोपरि॥ रेखांते यो नयेत्तस्य जयो भवति नान्यथा ॥२०॥
जयचिह्नमिदं राजा निदधीत प्रयत्नतः ॥ २१ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोनों खैंचनेवालोंकी पीठके बीचमें एक रेखा करनी चाहिये। रेखाके बाहरतक जो खीचकर लेजाय उसीकी जीत समझनी चाहिये अन्यथा नहीं ॥ २० ॥ और इसीको राजा यत्नपूर्वक अपना जय चिन्ह समझे ॥ २१ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥



॥ वालखिल्या वोले । कार्तिकके शुक्लपक्षमें अन्नकूट करै और उसदिन गोवर्द्धन उत्सव करै और कहै कि इससे विष्णु प्रसन्न होंय ॥ १ ॥ ऋषि वोले ॥ गौवर्द्धन कौनसे देवता है उन्हें क्यों पूजते हैं उनका उत्सव क्यौं करते हैं और करनेसे क्या फल होता है ॥ २ ॥ वालखिल्या वोले ॥ एक समय श्रीकृष्ण भगवान् कार्तिककी पडवाके दिन ग्वाल

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिकस्य सिते पक्षे अन्नकूटं समाचरेत् ॥ गोवर्द्धनोत्सवस्तत्र श्रीविष्णुः प्रीयतामिति ॥ १ ॥ ऋपय ऊचुः ॥ कोसौ गोवर्द्धनो देवः कस्मात्तं परिपूजयेत् ॥ कस्मात्तदुत्सवः कार्यः कृते किं च फलं भवेत् ॥ २ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ एकदा भगवान् कृष्णो गतो गोपालकैः सह ॥ गृहीत्वा गाः प्रतिपदि कार्तिकस्य गतो वने ॥ ३ ॥ तत्र नानाविधा लोका गोप्यश्चापि सहस्रशः ॥ गोवर्द्धनसमीपे तु कुर्वंत्युत्सवमादरात् ॥ ४ ॥ खाद्यं लेह्यं च चोष्यं च पेयं नानाविधं कृतम् ॥ कृत्वा नगं तथान्नानां नृत्यंति च परे जनाः॥५॥ नानापताकाः संगृह्य केचिद्धावंति चाग्रतः ॥ केचिद्गोपाः प्रनृत्यंति स्तुवंति च तथापरे ॥ ६ ॥

वालोंके साथ गायोंको लेकर वनमें गये ॥ ३ ॥ वहां अनेक भांतिके लोग और हजारो ग्वाल भी थे । और गोवर्द्धन पर्वतके पास वड़े आदरसे उत्सव करने लगे ॥ ४ ॥ और वहुतसे लोग खाने पीनेकी तथा चाटने चूसनेकी अनेक प्रकारकी वस्तु वनाकर और अन्नोंके पर्वत वनाकर उसके सामने नृत्य करैं ॥५॥ कितनेही गोप रंग २ की झंडिया लेकर

उसके आगे दौडें कोई उछल कूटकर नाचै है कोई स्तुति करै ॥ ६ ॥ इधर उधर हजारों तोरण और वितान लग रहे है। श्रीकृष्ण इस कौतुकको देख यह कहने लगे ॥७॥ श्रीकृष्ण बोले ॥ यह काहेका उत्सव है और किस देवताकी पूजा करते हो अथवा पक्वान्न खानेके लिये उत्सव मनाया है ॥८॥ जो देवता नहीं खाते हैं उन्हे अन्न देते हो और जो देवता

इतस्ततो वितानानि तोरणानि सहस्रशः ॥ दृष्ट्वैवं कौतुकं कृष्णो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७ ॥
॥ कृष्ण उवाच ॥ उत्सवः क्रियते कस्य देवता का च पूज्यते ॥ पक्वान्नखादनार्थाय कल्पितो चोत्सवोथवा ॥ ८ ॥ न भक्षयंति ये देवास्तेभ्योन्नं तु प्रदीयते ॥ प्रत्यक्षभोजिनो देवास्तेभ्योन्नं तु न दीयते ॥ ९ ॥ दृष्ट्वेदृशीं भावबुद्धिं गोपाला वेधसा कृताः ॥ गोपाला ऊचुः ॥
एवं मा वद कृष्ण त्वं वृत्रहंतुर्महोत्सवः ॥ १० ॥ वार्षिकः क्रियतेस्माभिर्देवेंद्रस्य तु तुष्टये ॥ इंद्रं पूजय भद्रं ते भविष्यति न संशयः ॥ ११ ॥ यः करोति च देवेंद्र महोत्सवमिमं वरम् ॥
दुर्भिक्षं च तथा वृष्टिर्देशे तस्य न जायते ॥ १२ ॥ ॥ ॥

प्रत्यक्ष खाते हैं उनको अन्न नही देते ॥ ९ ॥ ब्रह्म रचित ग्वाल ऐसी भावबुद्धिको देखकर ॥ ग्वाल बोले॥ हे श्रीकृष्ण ! तुम ऐसा मत कहो यह इन्द्रका उत्सव है ॥१०॥ और इसे हम वर्षमें दिन इन्द्रके प्रसन्नार्थ किया करते है। इंद्रको पूजो तुह्मारा कल्याण होगा इसमे संदेह नहीं है ॥ ११ ॥ जो इस इन्द्रके सुंदर महोत्सवको करता है तो उसके देशमें

दुर्भिक्ष और अवृष्टि नहीं होती है ॥ १२ ॥ इसलिये हे कृष्ण ! तुम भी आज सब प्रकारसे उत्सव करो। श्रीकृष्ण बोले ॥ यह गोवर्द्धन ही साक्षात् वृष्टि और सौभाग्यका करनेवाला है॥ १३ ॥ मथुरावासी और व्रजवासियोंको सब प्रकारसे यत्नपूर्वक इसको पूजना चाहिये। इस पूज्यको छोड़ लोग इन्द्रको वृथा क्यों पूजते है ॥ १४ ॥ इसका उत्सव मनाओ यह प्रत्यक्ष भोजन करैगा। और यह खेती उत्पन्न करैगा और सब उपद्रवोंको नाश करैगा ॥ १५ ॥

तस्मात्त्वमपि कृष्णात्र कुरूत्सवमनेकधा ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ अयं गोवर्धनः साक्षाद्वृष्टिसौभाग्यकारकः ॥ १३ ॥ मथुरास्थैर्व्रजस्थैश्च सर्वथायं प्रयत्नतः ॥ हित्वैनं पूजितं लोका वृथेंद्रः पूज्यते कथम् ॥ १४ ॥ उत्सवः क्रियतामस्य प्रत्यक्षोयं भुनक्ति च ॥ करिष्यति कृषिं सम्यक् उपसर्गान्हनिष्यति ॥ १५ ॥ यदायदा संकटं मे महदागत्य जायते ॥ तदातदा पूजयामि दृश्यं गोवर्द्धनं गिरिम् ॥१६॥ श्रवणे श्रवणे गोपा वार्त्ताः कुर्वंति किंत्विदम् ॥ तेषां मध्ये कैश्चिदुक्तं कृष्णोक्तं क्रियतामिति ॥१७॥ यदा खादति चान्नं च नगो गोवर्द्धनस्तदा॥तदा कृष्णोक्तमखिलं सत्यमेव भविष्यति॥१८॥

जब जब मुझे बड़ाभारी संकट आजाता है तबही तब मैं साक्षात् गोवर्द्धन पर्वतकी पूजा करताहूं ॥ १६ ॥ ग्वाल बाल एक दूसरेके कानमें बातें करते हैं कि यह क्या बात है। फिर उनमेंसे कितनों हीने कहा कि कृष्णजीका कहा करो ॥ १७ ॥ जब गोवर्द्धन पर्वत अन्न खा लेगा तो श्रीकृष्णजीका सब कहना सत्य होजायगा ॥ १८ ॥ ॥

फिर सब ग्वालोंने निश्चय करके नन्दजीसे कहा कि जो यह बात है तो जो निश्चय ठहरै सो करो ॥ १९ ॥ फिर कृष्णजीने अच्छा यह कहकर और सबके अधिष्ठाता बनकर सुन्दर गोवर्द्धन महोत्सव करनेका निश्चय किया ॥ २० ॥ ग्वालोंने जो जो कृष्णजीने कही नाना भांतिकी सामग्री तयार की और पर्वतके आगे रंग २ के वस्त्र बिछाये और

सर्व एव तदा गोपा विनिश्चित्य च नंदनम् ॥ वचनं प्राहुरित्थं चेन्निश्चयोस्ति तथा कुरु ॥ १९ ॥ सर्वेषामग्रणीर्भूत्वा गोवर्द्धनमहोत्सवम् ॥ ततः कृष्णस्तथेत्युक्त्वा सूत्सवे कृतनिश्चयः ॥ २० ॥ नानासामग्रिकं चक्रुर्यथोक्तं नंदसूनुना ॥ नानावस्त्राणि पात्राणि चास्तृतानि नगाग्रतः ॥ २१ ॥ तत्र दत्तान्नपुंजस्तु यथा गोवर्द्धनो महान् ॥ भक्ताः सूपानि शाकाश्च कांजिकं वटकास्तथा ॥ २२ ॥ पूरिकाद्यं च लड्डूकाः शष्कुल्यो मंडकादिकम् ॥ दुग्धं दधि घृतं क्षौद्रं लेह्यं चोष्यं तथामिषम् ॥ २३ ॥ कथिकाद्यं सर्वमपि तत्र दत्त्वा वचोब्रवीत् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मंत्रं पठित्वा गोपाला नेत्रे संमीलयंतु च ॥ २४ ॥

भांति २ के पात्र धरे ॥ २१ ॥ जिससे गोवर्द्धन बडा दीखे वैसे वहां अन्नके ढेर लगादिये । उसमें दाल भात शाक और कांजीके बड़े ॥२२॥ पूरियां लड्डू गुझियां और गुलगुले आदि। दूध दही घृत शहद और अनेक प्रकारके भोजन तथा चाटने चूसनेसे पदार्थ ॥ २३ ॥ और कढ़ी आदि सब पदार्थोंको स्थापित कर यह वचन बोले । श्रीकृष्ण बोले । हे

ग्वालो ! मंत्र पढ़कर नेत्र मूंदलो ॥ २४ ॥ गोवर्द्धन भोजन कर लेगा इसमें संदेह नहीं है ॥ श्रीकृष्ण वोले ॥ " हे गोवर्द्धन ! हे पृथ्वीधर ! हे गोकुलरक्षक ! ॥ २५ ॥ वहुतसी वाहुओंसे छाया करनेवाले ! करोंड़ों गायें देनेवाले होउ। जो लक्ष्मी लोकपालोंके यहां धेनुरूपमें स्थित है ॥ २६ ॥ और यज्ञके लिये घृत धारण करती है वह मेरे पापको

गोवर्द्धनेन भोक्तव्यं सर्वमन्नं न संशयः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक ॥ २५ ॥ वहुवाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव ॥ लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ॥ २६ ॥ घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ॥ पठित्वैवं मंत्रयुगं सर्वे मुद्रितलोचनाः ॥ २७ ॥ कृष्णो गोवर्द्धनं विश्य सर्वमन्नमभक्षयत् ॥ भक्षणावसरे कैश्चिद्धूर्तैर्दृष्टो गिरिस्तथा ॥ २८ ॥ अतीवाभूत्तदाश्चर्यं तच्चेतसि मुनीश्वराः ॥ ततो नाडीद्वयात् कृष्णो गोपान्वाक्यमुवाच सः ॥ २९ ॥ अहो गोवर्द्धनेनात्र क्षणात् भुक्तमिदं स्फुटम् ॥ पश्यंतु सर्वे गोपालाः प्रत्यक्षोयं न संशयः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ॥

दूर करै । इसप्रकार ये दो मंत्र पढ़कर सबने नेत्र वंदकर लिये ॥ २७ ॥ और श्रीकृष्णजीने गोवर्द्धनमे प्रवेश करके सव अन्न भोजनकर लिया । और भक्षणके समय कितनेही धूर्तोंने उसे देख लिया ॥ २८ ॥ और हे मुनीश्वरो ! उनके चित्तमें वड़ा आश्चर्य हुआ । फिर दो घड़ीमें उन कृष्णचन्द्रने उन गोपोंसे कहा ॥ २९ ॥ अरे देखो ! इस गोवर्द्धनने

क्षणभरमें सबके सामने भोजनकर लिया सब गोप देखलें यह प्रत्यक्ष है इसमें संदेह नहीं है ॥ ३० ॥ जो तुम्हें सुखकी इच्छा हो तो इस महोत्सवको करो। यह बात सुनकर सबको मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ३१ ॥ और फिर तो उन्होंने इन्द्रके उत्सवसे सौगुना बढ़कर गोवर्द्धनका उत्सव किया। और उस समय इन्द्रके उत्सवको देखनेकी इच्छासे नारदजी आये। और गोवर्द्धनका उत्सव देखकर इन्द्रकी सभामें गये ॥ ३२ ॥ इन्द्रने उनका आदरकर उनसे वार २

यद्यस्ति सुखवांछा वः कुर्वत्वेतन्महोत्सवम् ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे विस्मितमानसाः ॥३१॥ गोवर्द्धनोत्सवं चक्रुरैंद्राच्छतगुणं तदा ॥ इंद्रोत्सवं द्रष्टुकामः समागच्छत्स नारदः ॥ गोवर्द्धनोत्सवं दृष्ट्वा देवेंद्रस्य सभां ययौ ॥ ३२ ॥ देवेंद्रेण कृतातिथ्यो वारंवारं प्रणोदितः ॥ नोवाच वचनं किंचिद्देवेंद्रः प्रत्यभाषत ॥ ३३ ॥ इंद्र उवाच ॥ युष्माकं कुशलं विप्र वर्तते वा नवेति वा ॥ मदग्रे कथ्यतां दुःखं मुनीश्वर हराम्यहम् ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ अस्माकं किंमुनींद्राणामिंद्र दुःखस्य कारणम् ॥ परं गोवर्द्धनः शैल इंद्रो जातो विलोकितः ॥ ३५ ॥ ॥

पूंछा परंतु जब उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया तो फिर इन्द्रने कहा ॥३३॥ इन्द्र बोले। हे मुनिराज ! आपकी कुशल तो है अथवा नहीं ! हे मुनीश्वर मेरे सामने दुःख कहो तो मैं उसे दूर करदूं ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले ॥ हम मुनीश्वरोंको दुःखका क्या कारण है परंतु हमने गोवर्द्धन पर्वतको इन्द्र होता हुआ देखा ॥ ३५ ॥ ॥ ॥

हे इन्द्र ! गोकुलमें सब गोप तुह्मारे उत्सवके दिन इसकी पूजा करते हैं अब इसके पीछे वही सब यज्ञ भागोंको लेगा ॥ ३६ ॥ और क्रम २ से इन्द्रासन और इन्द्राणी और सबको वही हथया-लेगा क्यों कि जिसका पराक्रम होता है उसीका सर्वत्र राज्य होजाता है ॥ ३७ ॥ और हम मुनीश्वरोंको क्या है कोई इन्द्रासनपर बैठे। और तुम वर्षभरमें वा छ महीनेमें उसे आयाही देखना ॥ ३८ ॥ इन्द्रसे ऐसा कहकर नारदजी पृथ्वीपर गये। नारदजीका यह वचन

त्वदुत्सवे पूज्यतेसौ गोपालैर्गोकुले हरे ॥ अतः परं यज्ञभागान्ग्रहीष्यति स एव हि ॥ ३६ ॥
इंद्रासनं तथेंद्राणीं क्रमात्सर्वं ग्रहीष्यति ॥ यस्य वीर्यं च सर्वत्र तस्य राज्यं प्रजायते ॥ ३७ ॥
किमस्माकं मुनींद्राणां य एवेंद्रासनं वसेत् ॥ वर्षाद्वा मासषट्काद्वा द्रष्टव्योसौ समागतः ॥ ३८ ॥
इत्थमुक्त्वैव देवेंद्रं प्रययौ नारदो भुवि ॥ इत्थं नारदवाक्यं स श्रुत्वा शक्रोभ्यभाषत ॥ ३९ ॥
अहो आवर्तसंवर्तद्रोणनीलकपुष्कराः ॥ सर्वमेघा जलं गृह्य करकाभिः समन्विताः ॥ ४० ॥
प्रयांतु गोकुलं शीघ्रं मारयंतु च बल्लवान् ॥ गोवर्द्धनं स्फोटयंतु वज्रपातैरनेकशः ॥ ४१ ॥

सुनकर इन्द्रने कहा ॥ ३९ ॥ हे आवर्त ! हे संवर्त ! हे द्रोण ! हे नीलक ! हे पुष्कर ! सब मेघ ओलोंसहित जलको लेकर ॥ ४० ॥ शीघ्र गोकुलको जाओ और गोपोंको मारो और वज्रपातोंसे गोवर्द्धनके बहुतसे टुकड़े कर डालो ॥ ४१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

गायोंको मार डालो और घरोंको ढादो। हे मुनीश्वरो! फिर तो गोकुलमें बादलोंकी घटाओंका गर्जन होने लगा ॥ ४२ ॥ और मध्याह्नके समय रात्रिकासा अंधकार फैल गया। सब गोप कांपने लगे कि यह क्या कुसमय आया ॥ ४३ ॥ और फिर बादलोंने ओलोंसहित बड़ा पानी बरसाया। गोपाल बोले ॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हाय कृष्ण! अब

घातयंतु च गाश्चापि गृहाण्युच्चाटयंतु च ॥ ततो घनघटाघोषो गोकुलेभून्मुनीश्वराः ॥ ४२॥
जातो रात्र्यंधकारोथ मध्याह्नसमये तदा ॥ कंपिता बल्लवाः सर्वे किमकांडे ह्युपस्थितम् ॥ ४३ ॥
ववर्षुर्बहु पानीयं करकाभिस्तदा घनाः ॥ गोपाला ऊचुः ॥ हा कृष्ण कृष्ण हे कृष्ण किमिदानीं विधीयताम् ॥ ४४ ॥ मृतास्म बल्लवाः सर्वे कुपितोयं हि वासवः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥
॥ निमील्याक्षीणि भो गोपा ध्येयो गोवर्द्धनो नगः ॥ ४५॥ रक्षा कर्त्ता स एवास्ति नान्योस्ति जगतीतले ॥ इत्युक्त्वोत्पाट्य तं शैलं तत्तले स्थापितास्तु ते ॥ ४६ ॥ ततः प्रोवाच वचनं गोपान्प्रति बलानुजः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ अहो गोवर्द्धनेनैतत्स्थलं दत्तं व्रजे व्रजाः ॥ ४७॥

क्या करें ॥ ४४ ॥ इस इन्द्रके कुपित होनेसे हम सब गोप मरे ॥ श्रीकृष्ण बोले ॥ हे गोपो! नेत्र बंद करके गोवर्द्धन पर्वतका ध्यान करो ॥ ४५ ॥ वही पृथ्वीतलपर रक्षा करनेवाला है दूसरा कोई नहीं है। यह कहकर भगवान्ने उस पर्वतको उठाकर सबको उसके नीचे खड़ाकर लिया ॥ ४६ ॥ फिर श्रीकृष्णजीने गोपोंसे यह बात कही ॥ श्रीकृष्ण

वोले ॥ हे गोपो ! गोवर्द्धनने व्रजमें यह स्थान दिया है ॥ ४७ ॥ इस साक्षात् उत्तम पर्वतको छोड़ और कौन ऐसा स्थान देनेको समर्थ है इसप्रकार इन्द्रने सात दिनतक मूसलधार मेह वरसाया ॥ ४८ ॥ अनेक देशोंका नाश होगया परंतु गोप उसकी शरणसे नहीं गये । गोवर्द्धनके नामसे श्रीकृष्ण नित्य ॥ ४९ ॥ पक्वान्न गोपोंको देने लगे और वे वहां सुख-

अन्यः कोस्ति स्थलं दातुं प्रत्यक्षोयं नगोत्तमः ॥ एवं सप्तदिनं तेन वृष्टं मुसलधारया ॥ ४८ ॥
नानादेशा ययुर्नाशं न गोपाः शरणं ययुः ॥ गोवर्द्धनस्य नाम्नैव कृष्णो नित्यं प्रयच्छति ॥४९॥
पक्वान्नानि च गोपेभ्यस्तत्र ते सुखमावसन् ॥ इत्येवं कुतुकं दृष्ट्वा सत्यलोकं ययौ मुनिः ॥५०॥
ब्रह्मन्किं त्वं प्रसुप्तोसि जायते सृष्टिनाशनम् ॥ तस्माच्छीघ्रं गोकुले त्वं गत्वा वृष्टिं निवारय ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किमर्थं जायते वृष्टिः कथं वृष्टिविनाशनम् ॥ कश्चिद्दैत्यः समुत्पन्नः सर्वमाख्याहि मे मुने ॥ ५२ ॥ नारद उवाच ॥ नोत्पन्नो दैत्यराट् कश्चित्त्यक्तः शक्रोत्सवो भुवि ॥
यादवैरिति संक्रुद्ध इंद्र एवं प्रवर्षति ॥ ५३ ॥ ॥ ॥

पूर्वक रहने लगे । यह कौतुक देखकर नारदमुनि सत्य लोकको गये ॥ ५० ॥ और कहा हे ब्रह्माजी ! क्या तुम सो रहे हो सृष्टिका नाश हुआ जाता है इसलिये तुम शीघ्र गोकुलमें जाकर वर्षा वंद करो ॥५१॥ ब्रह्माजी वोले ॥ वर्षा क्यों हो रही है और वर्षा कैसे वंद हो । क्या कोई दैत्य उत्पन्न होगया हे मुनीश्वर ! मुझसे सव वात कहो ॥५२॥ नारदजी वोले ॥ दैत्य-

राज तो कोही उत्पन्न नहीं हुआ पृथ्वीपर यादवोंने इन्द्रका उत्सव छोड़ दिया है इस कारण इन्द्र क्रोध करके बड़ा पानी वरसा रहा है ॥ ५३ ॥ उनका वचन सुनकर ब्रह्माजी हंसपर चढ़कर वहां आये कि जहां इन्द्र क्रोधसे इसप्रकार वर्षाकर रहा था ॥ ५४ ॥ ब्रह्माजी बोले । हे इन्द्र ! तुह्मारी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट क्यौं होगई, भगवान् त्रिलोकीके नाथ हैं उन्है तुम कैसे जीतोगे ॥ ५५ ॥ देखो उन्होंने हाथकी एक अंगुलीपर गोवर्द्धनको धर लिया सो हे इन्द्र ! उनके साथ

इति तस्य वचः श्रुत्वा हंसमारुह्य विश्वसृट् ॥ आगतो यत्र शक्रोस्ति क्रोधादेवं प्रवर्षति॥५४॥ ब्रह्मोवाच ॥ कथं व्यवसिता बुद्धिरीदृशी ते सुरेश्वर ॥ त्रैलोक्यनाथो भगवान्निर्जितव्यः कथं त्वया ॥ ५५ ॥ एकयैव करांगुल्या पश्य गोवर्द्धनो धृतः ॥ ईर्ष्या तेन कथं साकं त्वया शक्र विधीयते ॥ ५६ ॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा मेघान्संस्तभ्य वासवः ॥ प्रणिपत्य च तं कृष्णं शक्रो वचनमब्रवीत् ॥ ५७ ॥ क्षंतव्या मत्कृतिर्विष्णो दासोहं शरणं गतः ॥ यद्रोचते तत्प्रदेयमपराधापनुत्तये ॥ ५८ ॥

तुम ईर्ष्या कैसे कर सक्ते हो ॥ ५६ ॥ ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर इन्द्रने वादलोको रोक लिया । और इन्द्र उन कृष्ण भगवान्को प्रणामकर यह बोले ॥ ५७ ॥ हे विष्णु भगवन् ! जो मैने किया उसे क्षमा करो मैं तुह्मारा दास और तुह्मारी शरणहूं । जो तुह्मै अच्छा लगे वह मैं इस अपराध दूर करनेके लिये भेट करूं ॥ ५८ ॥

॥ श्रीकृष्ण बोले ॥ गोपोंने तुह्मारी सामर्थ्य न जानकर यह काम किया और उन्हका यही दंड अच्छा था जो तुमने किया ॥ ५९ ॥ मैं तो तुह्मारा छोटा भाई और तुह्मारा आज्ञाकारीहूं मैंने तो जो मेरी शरण आये उनकी रक्षा करी है ॥ ६० ॥ हे इन्द्र ! जो तुम प्रसन्न हो तो इस उत्सवको गोवर्द्धन पर्वतको दे दो क्यौ कि उसने गोकुलकी रक्षा करी

॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ अज्ञात्वा तव सामर्थ्यं गोपालै रचितं त्विदम् ॥ एषां दंडस्तु योग्योयं सम्यगेवत्वया कृतः ॥ ५९ ॥ अहं कनीयांस्ते भ्राता तवाज्ञापरिपालकः ॥ शरणागतजातीनां रक्षणं तु मया कृतम् ॥ ६० ॥ यदि प्रसन्नो देवेश उत्सवोयं प्रदीयताम् ॥ गोवर्द्धनाय गिरये गोकुलं रक्षितं यतः ॥ ६१ ॥ शक्रोपि च तथेत्युक्त्वा तत्रैवांतरधीयत ॥ गते शक्रे गिरींद्रं तं संस्थाप्य हरिरब्रवीत् ॥ ६२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ गोपा दृष्टं तु माहात्म्यमद्भुतं शैलजं तु यत् ॥ अद्यारभ्य प्रकर्त्तव्यो महान्गोवर्द्धनोत्सवः ॥ ६३ ॥ गोवर्द्धनेन शैलेन निखिला तु धरा धृता ॥ एतत्सारमजानद्भिः कथं संक्रीडितं पुरा ॥ ६४ ॥ ॥ ॥

है ॥ ६१ ॥ इन्द्र "वहुत अच्छा" ऐसा कहकर वहीं अंतर्धान होगये । और इन्द्रके चले जानेपर भगवान् उस गोवर्द्धनको वहीं धरकर बोले ॥ ६२ ॥ श्रीकृष्णबोले ॥ हे गोपो ! पर्वतके अद्भुत माहात्म्यको देखो और आजसे लेकर गोवर्द्धनका वड़ा उत्सव करना चाहिये ॥ ६३ ॥ गोवर्द्धन पर्वतने सब पृथ्वीको धारणकर लिया इस भेदको तुम पहिले नहीं

जानकर इन्द्रकी पूजा क्यों करते थे॥६४॥ आज पर्वतराजने मेरे सामने सबसे यह कहा है। कि इस सेवाके प्रभावसे मैंने बड़ा भारी बल पाया ॥ ६५ ॥ इसलिये हरवर्ष अन्नकूट करना चाहिये इससे गायोंका भला होगा और पुत्र पौत्र आदि संतान होगी ॥ ६६ ॥ और गोवर्द्धनके उत्सवसे सदा ऐश्वर्य और सुख होगा । और जो कार्तिकस्नान और जप

अद्य पर्वतराजस्तु सर्वं ब्रूते ममाग्रतः ॥ एतत्सेवाप्रभावेन बलं लब्धं मया महत् ॥ ६५ ॥
प्रतिसंवत्सरं तस्मादन्नकूटं विधीयताम् ॥ गवां भवति कल्याणं पुत्रपौत्रादिसंततिः ॥ ६६ ॥
ऐश्वर्यं च सदा सौख्यं भवेद्गोवर्द्धनोत्सवात् ॥ कृतं यत्कार्तिकस्नानं जपहोमार्चनादिकम्॥६७॥
सर्वं निष्फलतामेति न कृते पर्वतोत्सवे ॥ एवमुक्तास्तु ते गोपाः सर्वे सत्यममन्यत ॥ ६८ ॥
वालखिल्या ऊचुः ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातमस्मा-
भिस्तु मुनीश्वराः ॥ ६९ ॥ श्रीकृष्णस्य तु संतुष्ट्यै ह्यन्नकूटं विधीयताम् ॥ नानाप्रकारशाकानि
देशकालोद्भवानि च ॥ ७० ॥
ययुः कृष्णादयः सर्वे नवमे ऽहनि गोकुलम् ॥ ॥ ॥ ॥

होम अर्चन आदि किया है ॥ ६७ ॥ वह सब गोवर्द्धनका उत्सव न करनेसे निष्फल जाता है । जब उन गोपोंसे यह कहा गया तो उसे सबने सत्य माना ॥ ६८ ॥ और श्रीकृष्ण आदि सब गोप नवमें दिन गोकुलको गये ॥ वालखिल्या बोले ॥ हे मुनीश्वरो ! यह सब हमने तुमसे कहा ॥ ६९ ॥ श्रीकृष्णजीके प्रसन्नार्थ अन्नकूट करें । अनेक प्रकारके

शाक जो देशमें समयपर मिलैं ॥ ७० ॥ और भाति २ के पक्वान्न अपनी शक्तिके अनुसार करै । और सव अन्नका

पक्वान्नानि विचित्राणि कुर्याच्छक्त्यनुसारतः ॥ सर्वान्नपर्वतं कुर्याच्छ्रीकृष्णाय निवेदयेत् ॥७१॥
गोवर्द्धनस्वरूपाय मंत्रौ कृष्णोदितौ पठन् ॥ एवं यः कुरुते लोके विष्णुलोके महीयते ॥७२॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

पर्वत वनाकर श्रीकृष्णके अर्पण करै ॥ ७१ ॥ और भगवान्ने जो दो मंत्र पहिले कहे है उन्हैं पर्वतके सामने पढ़ै । जो कोई ऐसा करता है वह विष्णुलोकमें सुख भोगता है ॥ ७२ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



॥ वालखिल्या बोले । कार्तिकशुक्लपक्षकी द्वितीया यमद्वितिया कहाती है उसदिन दो पहर पीछे सब प्रकारसे यमका पूजन करना चाहिये ॥ १ ॥ पूर्वकालमें यमुनाजीने नित्य आकर यमसे प्रार्थना करी कि हे भाई ! अपने गणोंको साथ लेकर मेरे घर भोजन करने आओ ॥ २ ॥ यमराज नित्य यही कहते रहे कि आज आऊंगा कल आऊंगा परसों आऊंगा क्यौं कि कामके मारे घबरायेहुए चित्तवालोंको अवकाश नहीं रहता है ॥ ३ ॥ फिर एक दिन यमुनाजीने

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिकस्य सिते पक्षे द्वितीया यमसंज्ञिता ॥ तत्रापराह्ने कर्त्तव्यं सर्वथैव यमार्चनम् ॥ १ ॥ प्रत्यहं यमुनागत्य यमं संप्रार्थयत्पुरा ॥ भ्रातर्मम गृहे याहि भोजनार्थं गणावृतः ॥ २ ॥ अद्य श्वो वा परश्वो वा प्रत्यहं वदते यमः ॥ कार्यव्याकुलचित्तानामवकाशो न जायते ॥ ३ ॥ तदैकदा यमुनया बलात्कारान्निमंत्रितः ॥ स गतः कार्तिके मासि द्वितीयायां मुनीश्वराः ॥ ४ ॥ नारकीयजनान्मुक्त्वा गणैः सह रवेः सुतः ॥ कृतातिथ्यो यमुनया नानापाकाः कृताः खग ॥ ५ ॥ ॥ ॥

आग्रहसे निमंत्रण दिया तो हे मुनीश्वरो ! कार्तिकशुक्ला द्वितीयाके दिन ॥ ४ ॥ वह यमराज नरकके सब मनुष्योंको छोड़ अपने गणोंके साथ गये ॥ यमुनाजीने उनका बडा अतिथिसत्कार किया और हे गरुड़ ! अनेक प्रकारके पाक बनाये ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

यमुनाने उनकी देहमे सुन्दर गंधयुक्त तैल लगाकर उनका उवटन किया और फिर यमराजको स्नान कराया ॥ ६ ॥ फिर उनको उत्तम आभूपण और रंग २ के वस्त्र पहिराये चंदन लगाया और अनेक माला पहिराकर सिंहासनपर वैठाया ॥ ७ ॥ और सौनेके थालमे भांति २ के पक्वान्न परोसकर यमुना देवीने प्रसन्न चित्तसे यमराजको भोजन

कृताभ्यंगो यमुनया तैलैर्गंधमनोहरैः ॥ उद्धर्तनं लापयित्वा स्नापितः सूर्यनंदनः ॥ ६ ॥ ततोलंकारिकं दत्तं नानावस्त्राणि चंदनम् ॥ माल्यानि च प्रदत्तानि मंचोपरि उवाविशत् ॥ ७ ॥ पक्वान्नानि विचित्राणि कृत्वा सा स्वर्णभाजने ॥ यमायाभोजयद्देवी यमुना प्रीतमानसा ॥ ८ ॥ भुक्त्वा यमोपि भगिनीमलंकारैः समर्चयत् ॥ नानावस्त्रैस्ततः प्राह वरं वरय भामिनि ॥ ९ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा यमुना वाक्यमब्रवीत् ॥ यमुनोवाच ॥ प्रतिवर्षं समागच्छ भोजनार्थं तु मद्गृहे ॥ १० ॥ अद्य सर्वे मोचनीयाः पापिनो नरकाद्यम ॥ येद्यैव भगिनीहस्तात्करिष्यंति च भोजनम् ॥ ११ ॥

॥ ॥ ॥

कराया ॥ ८ ॥ फिर भोजनकर यमने भी आभूषण और भांति २ के वस्त्रोंसे वहिनका सत्कार किया और फिर बोले हे भामिनी ! वर माग ॥९॥ यमका यह वचन सुनकर यमुनाने कहा ॥ यमुना वोलीं ॥ तुम मेरे घर प्रति वर्ष वें दिन भोजन करने आया करो ॥ १० ॥ और हे यम ! आज नरकसे सव पापियोंको छोड़ो । जो पुरुष आज अपनी बहिनके हाथसे

भोजन करैंगे ॥ ११ ॥ उनको तुम सुख दो यही वर मै मांगतीहूं । यम बोले ॥ जो मनुष्य यमुनामें स्नान करके और पितृ तथा देवताओंका तर्पण करके ॥ १२ ॥ बहिनके घर भोजन करता है और उसका सत्कार करता है तो हे यमुना ! वह कभी यमका द्वार नहीं देखता है ॥ १३ ॥ वीरेशके ईशानदिशामें यमका तीर्थ कहा है वहां स्नान करके और विधिपूर्वक पितृ तथा देवताओंका तर्पण करके ॥ १४ ॥ हे नरोत्तम ! सूर्यके सामने मौन, दृढचित्त, और स्थिर

तेषां सौख्यं प्रदेहि त्वमेतदेव वृणोम्यहम् ॥ यम उवाच ॥ यमुनायां तु यः स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः ॥ १२ ॥ भुक्ते च भगिनीगेहे भगिनीं पूजयेदपि ॥ कदाचिदपि मद्वारं न स पश्यति भानुजे ॥ १३ ॥ वीरेशैशानदिग्भागे यमतीर्थं प्रकीर्त्तितम् ॥ तत्र स्नात्वा च विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः ॥ १४ ॥ पठेदेतानि नामानि आमध्याह्ने नरोत्तम ॥ सूर्यस्याभिमुखो मौनी दृढचित्तः स्थिरासनः ॥ १५ ॥ यमोनिहंता पितृधर्मराजो वैवस्वतो दंडधरश्च कालः ॥ भूताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतांत एतद्दशभिर्जपंति ॥ १६ ॥ ॥ ॥

बैठकर मध्यान्हतक इन नामोंका पाठ करे ॥ १५ ॥ (१) यमायनमः, (२) निहंत्रे नमः, (३) पित्रे नमः, (४) धर्मराजाय नमः, (५) वैवस्वताय नमः, (६) दंडधराय नमः, (७) कालाय नमः, (८) भूताधिपाय नमः, (९) दत्तकृतानुसारिणे नमः (१०) कृतांताय नमः ये दश नाम जपै ॥ १६ ॥ ॥ ॥

फिर यमराजका पूजन करके वहिनके घर जाय । और इसमंत्रसे वह भाईको वडे आदरसे भोजन करावै ॥ १७ ॥ और कहै कि हे भाई ! मैं तुह्मारी छोटी वहन हूं इस सुन्दर भोजनको यमराज और विशेषकर यमुनाके प्रीत्यर्थ करो ॥ १८ ॥ फिर भाई वस्त्र और अलंकारोंसे वहिनको संतुष्ट करै तो उसे स्वप्नमें भी यमलोकका दर्शन नहीं होगा ॥ १९ ॥ राजाओंको चाहिये कि जिनको कारागृहमें गेर रक्खा है उन्हैं भी मेरी तिथिको अपनी वहिनके घर भोज-

ततो यमेश्वरं पूज्य भगिनीगृहमाव्रजेत् ॥ मंत्रेणानेन च तया भोजितः पूर्णमादरात् ॥ १७ ॥
भ्रातस्तवानुजाताहं भुंक्ष्व भक्तमिदं शुभम् ॥ प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेपतः ॥ १८ ॥
ततः संतोष्य भगिनीं वस्त्रालंकरणादिभिः ॥ स्वप्नेपि यमलोकस्य भविष्यति न दर्शनम् ॥१९॥
नृपैः कारागृहे ये च स्थापिता मम वासरे ॥ अवश्यं ते प्रेपणीया भोजनार्थं स्वसुर्गृहे ॥ २० ॥
विमोक्तव्या मया पापा नरकेभ्योद्य वासरे ॥ येद्य वंदिं करिष्यंति ते ताड्या मम सर्वथा ॥ २१ ॥
कनीयसी स्वसा नास्ति तदा ज्येष्ठागृहं व्रजेत् ॥ तदभावे सपत्न्यायाः पितृव्यास्तदभावतः ॥ २२ ॥

नके लिये अवश्य भेजैं ॥ २० ॥ और आजके दिन मैं भी नरकसे पापियोको छोडूंगा और जो आज वंद करैंगे उन्हैं मैं सव भांति ताड़ना दूंगा ॥ २१ ॥ जो छोटी वहन न हो तो वड़ीके यहां जाय । जो वडी वहन भी न हो तो सपत्नी कहिये दूसरी माकी पुत्रीके घर जाय और जो वह भी न हो तो चचेरी वहनके यहां जाय ॥ २२ ॥ ॥

उसके अभावमें मौसीकी पुत्रीके यहां जाय और उसके अभावमें मामाकी बेटीके यहां जाय और उसके अभावमें दूसरीमाके गोत्रकी, संबंधिनीकी बेटियोंको क्रमसे बहन माने ॥ २३ ॥ और जो सबका अभाव हो तो चाहे जिसे बहिन बनाकर उसे मानें और जो कोई न मिलै तौ गौ नदी कोही बहिन मान वहां जाकर खाय ॥ २४ ॥ और उसके भी अभावमें वन आदिकोही बहन मानकर वहीं लेजाकर भोजन करै हे देवी ! अपने घर भोजन कभी न करै ॥ २५ ॥

तदभावे मातृस्वसा मातुलस्यात्मजा तथा ॥ सापत्नगोत्रसंबंधैः कल्पयेदथवा क्रमम् ॥ २३ ॥
सर्वभावे माननीया भगिनी काचिदेव हि ॥ गोनद्याद्यथवा तस्या अभावे सति कारयेत् ॥२४॥
तदभावेप्यरण्यादि कल्पयित्वा सहोदराम् ॥ अस्यां निजगृहे देवि न भोक्तव्यं कदाचन ॥२५॥
ये भुंजंते दुराचारा नरके ते पतंति च ॥ स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्धनम् ॥ २६ ॥
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विशेषतः ॥ श्रावणे तु पितृव्यस्य कन्याहस्तेन भोजनम् ॥२७॥
मातुलस्य सुताहस्ताद्भोक्तव्यं भाद्रमासके ॥ पितुर्भ्रातुः स्वसुः कन्ये आश्विने तु तयोः क्रमात् ॥२८॥

और जो दुराचारी दूजको अपने घर खाते हैं वे नरकमे पडते हैं। स्नेहसे भैनके हाथका भोजन करना पुष्टिका बढ़ाने-वाला है ॥ २६ ॥ और भैनोको विशेष दक्षिणा देनी चाहियें श्रावणमें चचाकी लड़कीके हाथका खाय ॥ २७ ॥ और भादोंमें मामाकी बेटीके हाथका खाना चाहिये, और आश्विनमें क्रमपूर्वक बुआकी लड़की और चाचाकी लड़कीके

यहां खाय ॥ २८ ॥ परन्तु कार्तिकमासमें भैनके हाथका अवश्य खाय । यमराज यों कहकर फिर अपनी नगरीको गये ॥२९॥ इसलिये सब श्रेष्ठऋषि कार्तिकमें व्रत करके भैनके हाथसे खाते है यह सत्य २ कहताहूं इसमे संदेह नही है ॥३०॥ जो यमद्वितीयाके दिन भैनके घर नही खाता है तो सूर्यनारायणका कथन है कि उसके वर्ष भरके पुण्य नाश होजाते है ॥३१॥ जो स्त्री भाई दूजके दिन भाईको जिमाती है और उसको टीकाकर पान देती है वह विधवा नही होती ॥ ३२ ॥ और फिर

अवश्यं कार्तिके मासि भोक्तव्यं भगिनीकरात् ॥ एवमुक्त्वा धर्मराजो ययौ संयमिनीं ततः ॥ २९ ॥ तस्मादृषिवराः सर्वे कार्तिकव्रतकारिणः ॥ भुंजंति भगिनीहस्तात्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ३० ॥ यमद्वितीयां यः प्राप्य भगिनीगृहभोजनम् ॥ न कुर्याद्वर्षजं पुण्यं नश्यतीति रवेः श्रुतिः ॥ ३१ ॥ या तु भोजयते नारी भ्रातरं भ्रातृके तिथौ ॥ अर्चयेच्चापि तांबूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥३२॥ भ्रातुरायुःक्षयो नूनं न भवेत्तत्र कर्हिचित् ॥ अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने ॥ ३३ ॥ अज्ञानाद्यदि वा मोहान्न भुक्तं भगिनीगृहे ॥ प्रवासिना ह्यभावाद्वा ज्वरितेनाथ वंदिना ॥ ३४ ॥ एतदाख्यानकं श्रुत्वा भोजनस्य फलं भवेत् ॥३५॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

कभी भाईकी आयुक्षय नही होती । और भाईके जिमानेमें वह दूज अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये ॥ ३३॥ अज्ञानसे वा मोहसे विदेशमें रहनेवाला, ज्वरपीडित, और बंधुआ किसीके कारणसे भैनके घर न खा सके तो ॥ ३४ ॥ इस कथाको सुने इसके सुननेसेही उन्हें भोजनका फल मिलता है ॥ ३५ ॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिके शुक्लनवमी तत्राभूद्वापरं युगम् ॥ पूर्वापराह्णगा ग्राह्या क्रमा-
दानोपवासयोः ॥ १ ॥ अत्र कूष्मांडको नाम हतो दैत्यस्तु विष्णुना ॥ तद्रोमाभःसमुद्भूता
वल्याः कूष्मांडसंभवाः ॥ २ ॥ तस्मात्कूष्मांडदानेन फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ अस्यामेव
नवम्यां तु कुर्यात्कृष्णोत्सवं नरः ॥ ३ ॥ स्वशाखोक्तेन विधिना तुलस्याः करपीडनम् ॥
कन्यादानफलं तस्य जायते नात्रसंशयः ॥ ४ ॥ कार्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेंद्रियः ॥
हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं शुभम् ॥ ५ ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्र-
यम् ॥ एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम् ॥ ६ ॥ ॥ ॥

॥ वालखिल्या वोले। कार्तिकशुक्ला नवमीको द्वापर युगका जन्म दिन है दान और उपवासमें क्रमसे पूर्व और पर ग्रहण करनी
चाहिये अर्थात् दानमें प्रातःकालव्यापिनी और उपवासमें अपराह्णव्यापिनी ॥ १ ॥ इसदिन विष्णुने कूष्मांडक नाम
दैत्यको मारा है और कूष्मांडोंकी वेलें उसके रोमकी कांतिसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २ ॥ इसलिये उसदिन कुह्मड़ा दान करनेका
निश्चय वड़ा फल होता है और इसी नवमीके दिन मनुष्य श्रीकृष्णका उत्सव करै ॥ ३ ॥ अपनी शाखामें कही हुई
विधिसे तुलसीका विवाह करै तो उस मनुष्यको कन्यादानका फल होता है इसमें संदेह नहीं है ॥ ४ ॥ कार्तिकशुक्ला
नौमीको जितेन्द्री होकर और सुवर्णके भगवान् वनवाकर तुलसी सहित अच्छे प्रकारसे ॥ ५ ॥ व्रती मनुष्य तीन दिन-

तक भक्तिसे विधिपूर्वक पूजन करै। और इसप्रकार कही हुई विधिसे विवाहकी रीति करै ॥ ६ ॥ और नौमीसे लेकर तीन रात्रि ग्रहण करनी चाहियें और नौमी पूर्वविद्धा और मध्याह्नव्यापिनी लेना योग्य है ॥ ७ ॥ आमलेका और पीपलका वृक्ष इन दोनोंका एकत्र लगाकर उनका विवाह करै तो उस मनुष्यका पुण्य करोड़ो कल्पतक नाश नहीं होता है ॥ ८ ॥ यहां एक पुराने इतिहासका उदाहण देते है। विष्णुकांचीमें कनकनामा एक क्षत्री रहता था ॥ ९ ॥ वह

ग्राह्यं त्रिरात्रमत्रैव नवम्यामनुरोधतः ॥ मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या नवमी पूर्ववेधिता ॥ ७ ॥
धात्र्यश्वत्थौ य एकत्र पालयित्वा समुद्वहेत् ॥ न नश्यते तस्य पुण्यं कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८ ॥
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ बभूव विष्णुकांच्यां तु क्षत्रियः कनकाभिधः ॥ ९ ॥
धनाढ्यो वैश्यवृत्तिश्च वैष्णवो राजपूजितः ॥ बहुकालो गतस्तस्य विनापत्यं मुनीश्वराः ॥१०॥
ततो नानाव्रतैर्जाता कन्या कमललोचना ॥ सुरूपा लक्षणोपेता नानागुणसमन्विता ॥ ११ ॥
पिता तस्या नाम चक्रे किशोरीति च विश्रुतम् ॥ एकदा तद्गृहे यातो जन्मपत्रनिरीक्षकः ॥ १२ ॥

धनवान्, विष्णुभक्त और वैश्यकी आजीविका करनेवाला था और राजाके यहां भी उसका बड़ा आदर था। हे मुनीश्वरो! उसके बहुत कालतक संतान नही हुई ॥ १० ॥ फिर बहुतसे व्रत करनेसे उसके कमलके समान नेत्रवाली कन्या उत्पन्न हुई वह बड़ी स्वरूपवती सुलक्षणा थी और उसमे बहुतसे गुण थे ॥ १२ ॥ पिताने उसका नाम किशोरी धरा।

एक दिन उसके घर कोई ज्योतिषी आये ॥ १२ ॥ उसके पिताने उसका जन्मपत्र दिखलवाकर पूंछा कि इसका फल कहिये । तब ज्योतिषीने क्षणभर ध्यानकरके कहा कि हे कनक ! मेरी बात सुनो ॥ १३ ॥ जो मैं तुझसे सत्य २ कहूंगा तो तुझे दुःख होगा । और जो मैं असत्य कहूं तो मेरी बात झूठ होगी ॥ १४ ॥ इसलिये सत्य कहूंगा जो तुझे अच्छा लगे सो कर । इसका व्याह जिससे करैगा वह वज्रसे मरैगा ॥ १५ ॥ उसका यह वचन सुनकर पिता बडा दुखी

दर्शयित्वा जन्मपत्रं कथमस्या भवेदिति ॥ ततस्तेन क्षणं ध्यात्वा कनक शृणु मे वचः ॥ १३ ॥
यदि ब्रवीमि सत्यं चेत्तव दुःखं भविष्यति ॥ यद्यसत्यमहं ब्रूयां मिथ्यात्वं मम जायते ॥ १४ ॥
तस्मात्सत्यं वदिष्यामि रोचते यत्तथा कुरु ॥ अस्याः करग्रहं कुर्यादसौ वज्रान्मरिष्यति ॥१५॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा जनको दुःखितोभवत् ॥ न चकार विवाहोऽस्या सा च ब्राह्मणभोजने ॥१६॥
नियुक्तान्यद्गृहं दत्तं नानेया मन्मुखाग्रतः ॥ दृष्ट्वेमां रूपसंपन्नां दुःखं मे वर्द्धयिष्यति ॥ १७ ॥
स्थित्वान्यस्मिन्गृहे सा तु द्विजातिथ्यमचीकरत् ॥ तत्रागाद्दैवयोगेन कदाचिद्द्विजपुंगवः ॥ १८ ॥

हुआ । और उसने उसका विवाह नहीं किया वह कन्या ब्राह्मण भोजनमें ॥१६॥ लग गई । पिताने उसे दूसरा घर दे दिया और कह दिया कि इसे मेरे सामने मतलाओ । क्योंकि इस स्वरूपवती देखकर मुझे दुख बढैगा ॥१७॥ वह कन्या इस घरमें रहकर ब्राह्मणोंका अतिथिसत्कार करने लगी । वहां दैवयोगसे एक ममय कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण ॥ १८ ॥

शंकरनाम वैशाखमासमें विष्णुकांचीकी यात्राके लिये घूमता २ हेमकको ब्राह्मणोंका आदर करनेवाला जानकर वहा भी आया ॥ १९ ॥ और आकर जब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण आंगनमें बैठ गया तब किशोरीने आकर उस शंकरका अतिथि-सत्कार किया ॥ २० ॥ उस ब्राह्मणने उसे तरुण, नम्र सुन्दर वस्त्र पहिर, विनयशील, बिनव्याही देखकर सखीसे

यात्रार्थं विष्णुकांच्यायां वैशाखे मासि शंकरः ॥ हेमको विप्रशुश्रूषी ज्ञात्वात्रैव समागतः ॥ १९ ॥ आगत्यांगणमध्ये तु उपविष्टो द्विजोत्तमः ॥ किशोर्यागत्य चातिथ्यं शंकरस्य कृतं तदा ॥२०॥ दृष्ट्वा तां तरुणीं नम्रां सुवेषां विनयान्विताम् ॥ अजातकरपीडां च सखीं पृष्ट्वाभ्युवाच सः ॥ २१ ॥ शंकर उवाच ॥ चंदने वद शीघ्रं त्वं किशोरी न विवाहिता ॥ किमत्र कारणं जाता तरुणी कामरूपिणी ॥ २२ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा चंदना सर्वमब्रवीत् ॥ तदा कृपालुना तेन तत्पित्रे विनिवेदितम् ॥ २३ ॥ अस्यै मंत्रं प्रयच्छामि श्रीविष्णोर्द्वादशाक्षरम् ॥ करोतु वर्षत्रितयं जपमस्य सुलोचना ॥ २४ ॥ ॥ ॥

पूंछा और कहने लगा ॥ २१ ॥ शंकर बोला ॥ हे चंदना ! तू शीघ्र बता कि यह किशोरी कामके समान स्वरूपवती तरुणी होगई और अभीतक नही व्याही गई इसका क्या कारण है ॥ २२ ॥ उसका वचन सुनकर चंदनाने सब वृत्तांत कहा तब उस कृपालु ब्राह्मणने उसके पिताको जताया कि ॥ २३ ॥ मै इसे विष्णुके द्वादशाक्षर मंत्रका उपदेश

देताहूं और यह सुन्दर नेत्रवाली तेरी पुत्री उसका जप तीन वर्षतक करै ॥ २४ ॥ प्रातःकाल स्नानकर तुलसीके वनकी पूजा करै । और कार्तिकशुक्लपक्षमें नौमीके दिन सुवर्णके विष्णुके साथ ॥ २५ ॥ तुलसीका विवाह करै उस व्रतके प्रभावसे यह विधवा नहीं होगी ॥ २६ ॥ उसके पिताने कहा कि अच्छा ऐसाही करेंगे और उसने प्रायश्चित्त दिया फिर उस ब्राह्मणने किशोरीको संपूर्ण वैष्णव धर्मका उपदेश किया ॥ २७ ॥ और किशोरी भी जैसे उस ब्राह्मणने

प्रातःस्नानवती चास्तु तुलसीवनपालिका ॥ कार्तिकस्य सिते पक्षे नवम्यां विष्णुना सह ॥ २५ ॥
सौवर्णेन तुलस्याश्च विवाहं च करोत्वियम् ॥ तेन व्रतप्रभावेन विधवा न भविष्यति ॥ २६ ॥
तत्पित्रापि तथेत्युक्तं प्रायश्चित्तं स दत्तवान् ॥ किशोर्यै वैष्णवं धर्मं समग्रं चादिदेश सः ॥२७॥
द्विजेन तेन यत्प्रोक्तं किशोर्यपि तथाकरोत् ॥ वर्षत्रयं यथाशास्त्रं किशोर्या तद्व्रतं कृतम् ॥२८॥
चतुर्थे कार्तिके मासि किशोरी स्नपनाय च ॥ प्रातःकाले गता बाला दृष्टा मार्गे विलेपिना ॥२९॥
क्षत्रियेण यदा दृष्टा प्राप मोहं जडात्मकः ॥ पृष्ठे तस्यास्तु संलग्नो भावयंस्तामनिंदिताम् ॥ ३० ॥

कहा था वैसे करने लगी और शास्त्रविधिसे तीन वर्षतक किशोरीने उस व्रतको किया ॥ २८ ॥ और चौथे कार्तिक मासमें किशोरी स्नानके लिये प्रातःकाल गई तो मार्गमें उस बालाको विलेपी ॥ २९ ॥ क्षत्रीने जब देखी तो विह्वल हो उसपर मोहित होगया और उस सुन्दरीको चाहता हुआ उसके पीछे लग लिया ॥ ३० ॥

कितनेही लोगोने उस कन्याको दूरसे देखा और कितनेही छुपकर देखने लगे । स्त्रियां भी उसे देखने लगी फिर पुरुषोंकी क्या कथा है ॥ ३१ ॥ जैसे लोग दूजके चंद्रमाके दर्शनके उत्सुक होते हैं वैसेही रातमे सव मनुष्य उसके द्वारपर उसकी वाट देखते ॥ ३२ ॥ एक पलभर सूर्यने भी ठहरकर उस वालिकाको देखी । हे मुनीश्वरो ! इससे अधिक उसके सौंदर्यका क्या कहैं ॥ ३३ ॥ कोई कहते हैं यह देवी है कोई नागकन्या वताते हैं कि यह तो शिवजीके

केचित्तां ददृशुर्दूरात्केचित्पश्यंति गुप्ततः ॥ स्त्रियोपि तां प्रपश्यंति पुरुषाणां तु का कथा ॥३१॥
यथा द्वितीयाचंद्रस्य दर्शने चोत्सुका जनाः ॥ तथा रात्रौ प्रतीक्षंते तद्द्वारे सकला जनाः ॥ ३२ ॥
निमेषमात्रमर्केण दृष्टा स्थित्वा तु बालिका ॥ अधिकं किं वर्णनीयं तत्सौंदर्य मुनीश्वराः ॥ ३३ ॥
केचिद्वदंति देवीयं नागकन्येति चापरे ॥ रुद्रसंमोहनार्थाय जाता सा मोहिनीति च ॥ ३४ ॥
सा न पश्यति लोकांश्च न मार्गं न सखीगणान् ॥ ध्यायंती हृदये विष्णुं तुलसीं देवरूपिणीम् ॥३५॥
तां गृहीतुं मनश्चक्रे विलेपी द्रव्यवान् वली ॥ नानाभेदाः कृतास्तेन न लेभे चांतरं क्वचित् ॥३६॥

मोहनेके लिये दूसरी मोहिनी उत्पन्न हुई है ॥ ३४ ॥ और वह न लोगोको न मार्गको और न सखियोंको देखती थी । वह तो हृदयमें विष्णु और देवतारूप तुलसीका ध्यान करती रहै थी ॥ ३५ ॥ द्रव्यवान् और वली ऐसे विलेपी क्षत्रीने उसे लेनेके लिये मन चलाया । और उसने अनेक प्रकारके भेद किये परन्तु जव विलेपी उसे किसी उपायसे नहीं

पा सका ॥ ३६ ॥ तब उसने मालीके घर जाकर मालिनको द्रव्य दिया और कहा कि जिस प्रकारसे किशोरीके साथ मिलाप हो ॥ ३७ ॥ सो कर हे कल्याणि ! मैं तुझे इससे चौगुना और दूंगा। और उसने उसे पानेके लिये बहुतसे उपाय कर देखे ॥३८॥ परंतु जब उस मालिनको कोई उपाय नहीं दीखा तो उसने विलेपीसे कहा कि मुझे तो उपाय नहीं दीखता

मालाकारगृहं गत्वा तस्यै द्रव्यं प्रयच्छत ॥ येन केन प्रकारेण किशोर्या सह संगमः ॥ ३७ ॥
यथा स्यात्क्रियतां भद्रे देयमस्माच्चतुर्गुणम् ॥ तथा च बहवोपाया दृष्टास्तद्ग्रहणाय च ॥ ३८ ॥
न ददर्श ततोपायमवदत्सा विलेपिनम् ॥ न दृश्यते मयोपायस्त्वया या प्रोच्यतेऽधुना ॥ ३९ ॥
मया तदेव वक्तव्यं द्रव्यग्रहणसिद्धये ॥ विलेप्युवाच ॥ तव कन्या तु भूत्वाहं नयामि कुसु-
मानि च ॥ ४० ॥ अग्रे यद्भावि भवतु गृहाणाह्नि शतंशतम् ॥ तयापि च तथेत्युक्त्वा
सप्तम्यां निश्चयः कृतः ॥ ४१ ॥ अष्टम्यां सा गता तत्र किशोरी तामुवाच ह ॥ मालाकृते
श्वो नवमी तुलस्याः पाणिपीडनम् ॥ ४२ ॥ ॥ ॥

अब जो बात तू कहे ॥ ३९ ॥ वह मैं द्रव्य लेनेके लालचसे कहूं। विलेपी बोला ॥ मैं तेरी कन्या बनकर फूल ले चलूं ॥ ४० ॥ आगे जो कुछ होना हो सो होगा तू मुझसे सौ रुपये रोज लियाकर। उसने भी अच्छा कहकर यह सप्तमीके दिन निश्चय किया ॥ ४१ ॥ और अष्टमीके दिन वह वहां गई सो किशोरीने उससे कहा। हे मालिन ! कल

नवमी है और तुलसीका विवाह है ॥ ४२ ॥ सो तू पुष्पोंके मुकुट ले आ । मालिन बोली । मेरी कन्या गांवसे आई है वह अनेक कौतुक करनेवाली है ॥ ४३ ॥ हे बाला ! जो जो तू कहैगी वह शीघ्र लादेगी । उसने कहा अच्छा फिर मालिन अपने घर चली गई॥४४॥और सब वृत्तात विलेपीकें आगे कहा तो उसने ऐसा सुख पाया मानों इन्द्रकी पदवी

तिष्ठत्यतस्त्वया नेया मुकुटाः पुष्पसंभवाः ॥ मालिन्युवाच ॥ मत्कन्या चागता ग्रामान्नाना-कौतुककारिणी ॥ ४३ ॥ यद्यत्प्रोक्तं त्वया बाले समानेष्यति सत्वरम् ॥ तया सापि तथे-त्युक्त्वा मालिनी स्वगृहं ययौ ॥ ४४ ॥ कथितः सर्ववृत्तांतो विलेप्यग्रे ततो भवत् ॥ प्राप्ता मयेंद्रपदवीत्येवं सुखमवाप सः ॥ ४५ ॥ मालिन्या रचिता रात्रौ मुकुटा विविधास्तदा ॥ ॥ बालखिल्या ऊचुः ॥ विष्णुकांच्यां तदा राजा जयसेनो बभूव ह ॥ ४६ ॥ तस्य पुत्रो मुकुंदोऽभूत्सूर्यभक्तिपरायणः ॥ किशोर्यास्तु श्रुता तेन वार्तेयमतिसुंदरा ॥ ४७ ॥ तदा तेन मुकुंदेन संकल्पः कृत एव हि ॥ किशोरी यदि भार्या मे भविष्यति दिवाकर ॥ ४८ ॥ ॥

मिलगई ॥ ४५ ॥ मालिनने तब रातको अनेक प्रकारके मुकुट बनाये । बालखिल्या बोले । उस समय विष्णुकांचीका राजा जयसेन था ॥ ४६ ॥ उसका पुत्र मुकुंद सूर्यका बडा भक्त था उसने किशोरीकी वार्ता सुनी थी कि वह बड़ी सुन्दर है ॥ ४७ ॥ फिर उस मुकंदने यही संकल्प किया हे सूर्यनारायण जो मेरी स्त्री किशोरी होगी ॥ ४८ ॥ ॥

तो मैं अन्न खाऊंगा नहीं तो मेरी मृत्यु होगी । वह ऐसा संकल्प करके उपवास करने लगा ॥ ४९ ॥ सातवें दिन सूर्य देवने उससे स्वप्नमें कहा कि किशोरीके विधवायोग है तेरी क्या दशा होगी ॥ ५० ॥ मै तुझे दूसरी कमलसमान नेत्र-वाली पत्नी दूंगा । मुकुंद बोला । हे देव ! यदि आप प्रसन्न है और हे स्वामी ! जो आपही विश्वको उत्पन्न करते हो

तदान्नमहमश्नामि नान्यथा स्यान्मृतिर्मम ॥ कृत्वेत्थं स तु संकल्पमुपवासांश्चकार सः ॥ ४९ ॥
सप्तमेहनि सूर्योसौ स्वप्ने वचनमब्रवीत् ॥ किशोर्या विधवायोगे वर्त्तते ते कथं भवेत् ॥ ५० ॥
सा ते पत्नीः प्रदास्यामि त्वन्यां पद्मायतेक्षणाम् ॥ मुकुंद उवाच ॥ यदि देव प्रसन्नोसि विश्वं
सृजसि त्वं प्रभो ॥ ५१॥ वालवैधव्ययोगं च हंतुं त्वं च क्षमो ह्यसि ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा
सांत्वना वहुला कृता ॥ ५२ ॥ न मन्यते मुकुंदोऽसौ तथेत्युक्त्वा गतो रविः ॥ तुलसीव्रत-
माहात्म्यात्स्वप्नोऽभूत्कनकस्य तु ॥ ५३ ॥ इयं कन्या त्वया देया मुकुंदायामलाय च ॥ तुलस्यु-
द्वाहमाहात्म्याद्विधवात्वं गमिष्यति ॥ ५४ ॥ ॥ ॥

॥ ५१ ॥ तो आप वालविधवायोगकोभी दूरकरने योग्य हो । उसका यह वचन सुनकर सूर्य देवताने मीठी २ वातोंसे वहुत मने किया ॥ ५२ ॥ परंतु इस मुकुंदने नही माना तव इसीसे व्याह करादेंगे ऐसा कहकर सूर्यदेव चले गये । और तुलसीके व्रतके माहात्म्यसे कनकको स्वप्न हुआ कि ॥ ५३ ॥ इस कन्याको तुझे पवित्र मुकुंदको देनी योग्य है ।

तुलसीविवाहके माहात्म्यसे इसका विधवापन जाता रहैगा ॥ ५४ ॥ और उस रातको किशोरीको भी स्वप्न हुआ कि कोई कन्या भर्ताके साथ आई है और भर्तासे कहती है कि मेरी माता यह किशोरी है और उसके भर्ताने भी अच्छा कहकर कहा कि जब इसका विवाह मेरे साथ हो जायगा तब इसके हाथसेही तुझे बलिदान दूंगा स्वप्नमें बलिदानकी बात

रात्रौ स्वप्नः किशोर्यास्तु तस्यां चैवाभ्यजायत॥आगता कन्यका काचिद्भर्त्रा सह समन्विता ॥५५॥
भर्तारं वदति स्वप्ने मम माता किशोरिका ॥ तद्भर्तापि तथेत्युक्त्वा प्रदास्ये बलिमुत्तमम् ॥ ५६ ॥
एतद्धस्तेन पश्चात्तु विवाहोस्या भविष्यति ॥ स्वप्ने श्रुत्वा बलेर्दानं सा वै चिंतातुराभवत् ॥५७॥
क्व द्वादशाक्षरी विद्या क्वेदं विष्णुसमर्चनम् ॥ नरकद्वारमूलं क्व मद्धस्तात्पशुमारणम् ॥ ५८ ॥
एवं सा तु समुत्थाय स्वप्नोयमिति निश्चितम् ॥ भावयित्वा समाहूय चंदनां वाक्यमब्रवीत् ॥५९॥
निवेद्य दृष्टं स्वप्नं तु कीदृगस्य फलं वद ॥ चंदनोवाच ॥ फलं तु सम्यकल्याणि तवानिष्टं विनश्यति ॥ ६० ॥ ॥ ॥ ॥

सुनकर उसे बड़ी भारी चिंता हुई ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ कहां तो द्वादशाक्षरी विद्या और कहां यह भगवान्का अर्चन और कहां यह नरकके द्वारकी जड़ पशुका मारना ॥ ५८ ॥ इसप्रकार वह उठकर और इसे स्वप्न निश्चय जानकर और चन्दनाको बुलाकर यह वचन बोली ॥ ५९ ॥ और देखे हुये स्वप्नको जताया और पूछा कि इसका क्या फल है सो

कह । चंदना बोली ॥ हे कल्याणी ! इसका फल तो अच्छा है तुह्मारी बुराई दूर होगी ॥ ६० ॥ और तुलसीके व्रतके प्रभावसे शीघ्र विवाह होगा इसप्रकार स्वप्नके फलको सुनतेही मुरगेने शब्द किया ॥ ६१ ॥ यह सुन और एक साथ उठकर उसने स्नान किया और जबतक वह किशोरी स्नान करके घर आवै ॥ ६२ ॥ तबतक विलेपी मालिनकी पुत्री बनकर आगई । गौके पूंछके तो सिरपर बाल बनायें और दाढ़ी मूछके बालोंको बलपूर्वक नौंच डाला ॥ ६३ ॥ और

विवाहो भविता शीघ्रं तुलसीव्रतकारणात् ॥ इत्थं स्वप्नफलं श्रुत्वा तावत्कुक्कुटशब्दितम् ॥ ६१ ॥
श्रुत्वा सा सहसोत्थाय स्नानोद्यममचीकरत् ॥ यावदायाति सा स्नानं कृत्वा गेहं किशोरिका॥६२॥
तावद्विलेपी मालिन्याः पुत्री भूत्वा समाययौ॥कृताः केशाश्च गोपुच्छैः श्मश्रु ह्युत्पाटितं बलात् ६३
अंतरे शाटकं गृह्य निंबुभ्यां च स्तनौ कृतौ ॥ सर्वालंकारशोभाढ्या कटाक्षयति चापरान् ॥ ६४ ॥
न ज्ञाता सा तु केनापि पुमान्स्त्रीरूपधारकः ॥ ध्यानं कृत्वा प्रसार्येते तया हस्तौ यदा तदा ॥६५॥
दत्ते विलेपी पुष्पाणि विलोकयति सर्वतः ॥ कथमस्या मम स्पर्शो भविष्यति विचिंतयत् ॥६६॥

साड़ी पहिरकर भीतर नींबूके समान कुच बनाये और संपूर्ण अलंकारोंसे शोभाको बढ़ाती हुई दूसरोंकी ओर कटाक्ष फैंकने लगी ॥ ६४ ॥ किसीने उसे नहीं जाना कि मनुष्यने स्त्रीरूप धारण किया है । ध्यान करके जब कभी दोनों हाथोंको पसारकर ॥ ६५ ॥ विलेपी पुष्पोंको देती तो सब ओर देखकर । विचारती कि मेरा और इसका कैसे स्पर्श

होगा ॥६६॥ हे मुनीश्वरो ! ऐसे उसको तीन दिन वीतगये । और उसदिन कनक शोकसे वड़ा पीडित हुआ ॥६७॥ कि हमें अव क्या करना चाहिये कन्याको राज पुत्र वरैगा । ऐसे उसे चिंता करते २ प्रातःकाल होगया ॥ ६८ ॥ और वस्त्र तथा सवारी लेकर राजाके लोग आये । और भीतर आकर मंत्रीने यह कहा कि ॥ ६९ ॥ तुह्मारे घर एक कन्या

एवं दिनत्रयं तस्य प्रयातं तु मुनीश्वराः ॥ तस्मिन्नहनि संजातः कनकः शोकपीडितः ॥६७॥
किं कार्यमधुनास्माभी राजपुत्रो वरिष्यति ॥ एवं चिंतयतस्तस्य प्रातःकालो वभूव ह ॥६८॥
राजलोकाः समायाता गृहीत्वा वस्त्रवाहनम् ॥ अभ्यंतरं समागत्य मंत्री वचनमब्रवीत् ॥ ६९ ॥
गृहेऽस्ति तव कन्यैका मुकुंदार्थे प्रदीयताम् ॥ माविचारोस्तु भवतो नृपाज्ञा परिपाल्यताम् ॥ ७० ॥
कनकेन तथेत्युक्तं मम भाग्यमुपस्थितम् ॥ महाराज कुमारस्य वधूः कन्या भविष्यति ॥७१॥
प्रोवाच मंत्रिणं चापि द्वादश्यां लग्नमुत्तमम् ॥ रात्रौ तिष्ठति युग्माख्यं रविः षष्ठे विधुश्च खे ॥ ७२ ॥
भवे भौमो गुरुर्धर्मे पंचमे बुधभार्गवौ ॥ शनिस्तृतीयेऽरौ राहुर्विवाहसमयः स तु ॥ ७३ ॥

है सो उसे राजा मुकुंदके लिये दो इसमें कुछ तुम विचार मतकरो राजाकी आज्ञा पालो ॥ ७० ॥ कनकने भी अच्छा कहकर विचारा कि मेरा तो भाग्य आड़े आया मेरी कन्या महाराज कुमारकी वहू होगी ॥ ७१ ॥ और मंत्रीसे वोला कि द्वादशीकी लग्न उत्तम है रात्रिमे मिथुन लग्नमें सूर्य छटे और चंद्रमा दशवे है ॥ ७२ ॥ ग्यारहवे भौम नवें बृहस्पति

और पांचवें वुध शुक्र है तीसरे शनि छटै राहु यह विवाहका समय है ॥ ७३ ॥ दोनों धनवानोंने तयारी करी और द्वादशीके सायंकालको अपनी सेनासहित राजपुत्र आया ॥ ७४ ॥ और वहां राज पुत्रके पुरोहित तेकीने कनकसे कहा ॥ तेकी वोला ॥ राजाकी आज्ञासे अव किशोरीका परदा करो ॥ ७५ ॥ यह वडी रानी होगी कोई पुरुष देखने न पावै । उसका यह वचन सुनकर कनकने सव मनुष्योंको निकाल दिया ॥ ७६ ॥ दैवयोगसे स्त्रीके रूपमें विलेपी वहांही

उभौ संभृतसंभारावुभावपि धनान्वितौ ॥ द्वादश्यामाययौ सायं राजपुत्रः ससैनिकः ॥७४॥
अब्रवीत्तत्र कनकं तेकिराजपुरोहितः ॥ तेक्युवाच ॥ अथो निरोधः क्रियतां किशोर्याश्च नृपाज्ञया ॥७५॥ भविष्यति महादेवी नो दृश्या पुरुषैः क्वचित् ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा पुरुषास्तु निराकृताः ॥७६॥ जायारूपी विलेपी तु दैवात्तत्रैवसंस्थितः ॥ ततोर्द्धरात्रवेलायां मुकुंदोभ्यंतरे ययौ ॥७७॥
तुलस्यग्रे स्थिता वाला किशोरी संस्मरद्धरिम् ॥ ततो घनघटाशव्दस्तुमुलः समपद्यत ॥७८॥
महावायुर्ववौ तत्र प्रशांताः सर्वदीपकाः ॥ विद्युलताश्च स्फुरिता अंधीभूतोऽखिलो जनः ॥७९॥
मिथ्या न भास्करवचो मुकुंदो चिंतयद्धृदि ॥ अन्यैः प्रतर्कितं लोकैर्वैधव्यस्य तु कारणं ॥८०॥

वैठा रहा । फिर आधी रातके समय मुकुंद भीतर गया ॥ ७७ ॥ और तुलसीके सामने किशोरी भी भगवान्को स्मरण करती हुई वैठी । इतनेमें वादलोंकी घटाओंका वड़ा शव्द होने लगा ॥७८॥ वहां वड़ी भारी हवा चली और सव दीपक बुझगये । विजली चमकने लगी और आदमी अंधके समान होगये ॥७९॥ मुकुंदने विचारा कि सूर्यदेवकी वात झूंठी नही

होसकी और दूसरे लोगोंने इसबातकी बड़ी तर्कना करी कि यह वैधव्यका कारण है ॥८०॥ मुकुंद हृदयमें डरा और सूर्यका ध्यान करने लगा इस बीचमें विलेपीने उस किशोरीका कमलके समान हाथको पकड़ा ॥८१॥ उसके हाथके संसर्ग होतेही स्वर्गसे पृथ्वीपर बिजली गिरी और उससे विलेपी उसी समय यम लोकको गया ॥८२॥ बाहर भघड़ होने लगा कि मुकुंद मरा, फिर क्षण भरमें ज्ञात हुआ कि मालीकी बेटी मरी है ॥ ८३ ॥ फिर तो मुकुंद और किशोरी दोनोंका विवाह हुआ

भीतो मुकुंदो हृदये यावद्ध्यायति भास्करम् ॥ तस्यां संधौ धृतं तस्याः करपद्मं विलेपिना ॥८१॥
तस्याः करस्य संसर्गात्स्वर्गाद्वज्रं पपात कौ ॥ नीतस्तेन विलेपी तु तत्कालं यममंदिरम् ॥ ८२ ॥
बहिरासीत्कलकलो मुकुंदोयं मृतस्त्विति ॥ क्षणादेव ततो ज्ञातं मालाकारसुता मृता ॥ ८३ ॥
ततस्तयोर्विवाहोभूद्राज्यं प्राप किशोरिका ॥ किशोर्याश्च समुत्पन्ना भ्रातरस्तुलसीव्रतात् ॥८४॥
आदौ शास्त्रं सत्यमासीत्ततो देवो दिवाकरः ॥ तुलसीव्रतमाहात्म्यात्कथं न स्युर्मनोरथाः ॥८५॥
सौभाग्यार्थं धनार्थं च विद्यार्थं तु निवृत्तये ॥ संतत्यर्थं प्रकर्त्तव्यं तुलस्याः पाणिपीडिनम् ॥८६॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहोनाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः १९

और किशोरीको राज्य मिला । और तुलसीव्रतके प्रभावसे किशोरीके भाई हुये ॥ ८४ ॥ पहिले शास्त्र सत्य हुआ फिर सूर्य देवने कृपा करी । और तुलसीव्रतके माहात्म्यसे कहो मनोरथ कैसे सिद्ध नहीं ॥ ८५ ॥ सौभाग्य, धन, विद्या मोक्ष, संतति, इनके लिये तुलसीका विवाह करना चाहिये ॥ ८६ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमहात्म्ये तुलसीविवाहो नाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ वालखिल्या बोले ॥ कार्तिकके शुक्लपक्षमें व्रती मनुष्य अच्छी भांति स्नान करके एकादशीके दिन पांच दिनका व्रत ग्रहण करै ॥१॥ शरपंजरपर सोतेहुये महात्मा भीष्मने राजधर्म मोक्षधर्म और फिर दानधर्म ॥ २ ॥ कहे और पांडवोंने और कृष्णजीने भी सुने । फिर प्रसन्न मनसे श्रीकृष्णजीने कहा ॥ ३ ॥ हे भीष्मजी! तुम्हें धन्य है धन्य है जो तुमने धर्म

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिकस्यामलेपक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः ॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पंचदिनात्मकम् ॥ १ ॥ शरपंजरसुप्तेन भीष्मेण तु महात्मना ॥ राजधर्मा मोक्षधर्मा दानधर्मास्ततः परम् ॥२॥ कथिताः पांडुदायादैः कृष्णेनापि श्रुतास्तदा ॥ ततः प्रीतेन मनसा वासुदेवेन भाषितम् ॥ ३ ॥ धन्य धन्योसि भीष्म त्वं धर्माः संश्रावितास्त्वया ॥ एकादश्यां कार्तिकस्य याचितं च जलं त्वया ॥ ४ ॥ अर्जुनेन समानीतं गांगं बाणस्य वेगतः ॥ तुष्टानि तव गात्राणि तस्मादद्य दिनावधि ॥ ५ ॥ पूर्णांतं सर्वलोकास्त्वां तर्पयंत्वर्घ्यदानतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मम संतुष्टिकारकम् ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

सुनाये और कार्तिककी एकादशीको तुमने जल मांगा ॥ ४ ॥ अर्जुनने बाणके वेगसे गंगाजल लादिया । इसलिये आज दिनतक तुम्हारे शरीर तुष्ट होगये ॥ ५ ॥ सब लोग पूर्णिमातक अर्घ्यदानसे तुम्हारा तर्पण करें । ऐसा करनेसे वह अर्घ्य मुझे सब प्रकारसे संतुष्ट करनेवाला है ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

और मनुष्य इस भीष्मपंचक नाम व्रतको करैं। और जो कार्तिकका व्रत करके भीष्मपंचक न करै तो ॥ ७ ॥ उसके कार्तिकके सब व्रत वृथा होजाते हैं। मनुष्य कार्तिकमे समर्थ हो अथवा असमर्थ हो ॥ ८ ॥ भीष्म पंचकका व्रत करनेसे कार्तिकका फल पाता है। और "सत्यव्रत पवित्र गांगेय महात्मा ॥ ९ ॥ जन्मसे ब्रह्मचारी ऐसे भीष्मके अर्थ यह अर्घ्य देताहूं"। इसमंत्रसे सव्य होकर सब वर्णोंके करने योग्य इस तर्पणको करै ॥ १० ॥ इसप्रकार

एतद्व्रतं प्रकुर्वंतु भीष्मपंचकसंज्ञितम् ॥ कार्तिकस्य व्रतं कृत्वा न कुर्याद्भीष्मपंचकम् ॥ ७ ॥
समग्रं कार्तिकव्रतं वृथा तस्य भविष्यति ॥ अशक्तश्चेन्नरो भूयादसमर्थश्च कार्तिके ॥ ८ ॥
भीष्मस्य पंचकं कृत्वा कार्तिकस्य फलं भवेत् ॥ सत्यव्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने ॥ ९ ॥
भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥ सव्येनानेन मंत्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् ॥ १० ॥
व्रतांगत्वात्पूर्णिमायां प्रदेयः पापपूरुषः ॥ अपुत्रेण प्रकर्तव्यं सर्वथा भीष्मपंचकम् ॥ ११ ॥
यः पुत्रार्थं व्रतं कुर्यात्सस्त्रीको भीष्मपंचकम् ॥ प्रदत्त्वा पापपुरुषं वर्षमध्ये सुतं लभेत् ॥ १२ ॥

पूर्णिमाको व्रत करके पाप पुरुषका दान करै। और जिसके पुत्र न हो उसे अवश्य भीष्मपंचक करना चाहिये ॥ ११ ॥ जो स्त्रीसहित पुत्रके लिये भीष्मपंचक करता है और पापपुरुषका दान करता है तो वर्ष भरमेंही पुत्र पाता है ॥ १२ ॥

॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इसलिये भीष्मपंचकको अवश्य करना चाहिये । मेरा कहा हुआ यह भीष्मपंचक विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है ॥ १३ ॥ हे खग ! और इसीमें भगवान्‌की प्रबोधिनी एकादशीका व्रत करै ॥ श्रावणशुक्लमें भगवान्‌ने शंखासुर दैत्यको मारा है॥१४॥ फिर एकादशीके दिन भगवान् चार महीने सोये और कार्तिककी एकादशीके दिन क्षीरसमुद्रमें जागे ॥ १५ ॥ इसलिये वैष्णवोंको एकादशीके दिन जगाना चाहिये । (और यह मंत्र पढ़े) " हे शंखदैत्यके नाशक !

अवश्यमेव कर्तव्यं तस्माद्भीष्मस्य पंचकम् ॥ विष्णुप्रीतिकरं प्रोक्तं मया भीष्मस्य पंचकम् ॥१३॥
अत्रैव तु प्रकर्तव्यः प्रबोधस्तु हरेः खग ॥ हतः शंखासुरो दैत्यो नभसः शुक्लपक्षके ॥ १४ ॥
एकादश्यां ततो विष्णुश्चातुर्मास्ये प्रसुप्तवान् ॥ क्षीरांभोधौ जागृतो सावेकादश्यां तु कार्तिके॥१५॥
अतः प्रबोधनं कार्यमेकादश्यां तु वैष्णवैः ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शंखघ्न उत्तिष्ठांभोधिचारक ॥ १६ ॥
धर्मरूपधरोत्तिष्ठ त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वाराह दंष्ट्रोद्धृतवसुंधर ॥ १७ ॥ उत्तिष्ठ
धरणीधार वराहादिकधारक ॥ उत्तिष्ठ भुवनाधार त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ १८ ॥ ॥

उठो । हे अंभोधिचारक ! उठो ॥ १६ ॥ हे धर्मरूपधर उठिये और त्रिलोकीमें मंगल करिये । दांतसे पृथ्वीको उठानेवाले वाराहजी उठिये उठिये ॥ १७ ॥ हे धरणीधर ! हे वराह आदि स्वरूपधारी ! उठिये । हे भुवनाधार उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

हे हिरण्याक्षके प्राणनाशक ! त्रिलोकीमें मंगल करो । तुम हिरण्यकशिपुको मारनेवाले और प्रल्हादको आनंद करनेवाले हो ॥ १९ ॥ हे वलिके अहंकारनाशक ! हे इन्द्र को राज्य देनेवाले ! उठो । हे लक्ष्मीपति ! उठो और तीनों लोकोंमें मंगल करो ॥ २० ॥ हे अदितिपुत्र ! तुम उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो हे हयग्रीवावतार ! हे समस्त कुल-

हिरण्याक्षप्राणघातिन् त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ हिरण्यकशिपुघ्नस्त्वं प्रह्लादानंदकारक ॥ १९ ॥
उत्तिष्ठ वलिदर्पघ्न देवेंद्रपददायक ॥ लक्ष्मीपते समुत्तिष्ठ त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २० ॥ उत्तिष्ठादितिपुत्र त्वं त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ उत्तिष्ठ हैहयाधीश समस्तकुलनाशन ॥ २१ ॥ रेणुकाघ्न त्वमुत्तिष्ठ त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ उत्तिष्ठ रक्षोदलन अयोध्यास्वर्गदायक ॥ समुद्रसेतुकर्त्ता त्वं त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २२ ॥ उत्तिष्ठ कंसहनन मदघूर्णितलोचन ॥ उत्तिष्ठ हलपाणे त्वं त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २३ ॥ उत्तिष्ठ त्वं गयावासिन् त्यक्तलौकिकवृत्तिक ॥ उत्तिष्ठ पद्मासनग त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥

नाशक उठो ॥ २१ ॥ हे रेणुकानाशक ! उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो । हे राक्षसदलन ! हे अयोध्याको स्वर्ग देनेवाले उठो । हे समुद्रका पुल बांधनेवाले ! उठो और तुम त्रिलोकीका मंगल करो ॥ २२ ॥ हे कंसनाशक ! हे मदसे मतवाले नेत्रवाले ! उठो और हे हाथमें हलधारी उठो और त्रिलोकीका मंगल करो ॥ २३ ॥ हे गयावासी ! हे संसा-

रकी वृत्ति त्यागनेवाले ! उठो । हे पद्मासन भगवन् उठो और त्रिलोकीका मंगल करो ॥ २४ ॥ हे म्लेच्छोंके समूहको युगांतमें खड्गसे नाश करनेवाले कल्की भगवान् उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो ॥ २५ ॥ हे गोविंद ! उठो २ हे गरुड़ध्वज ! उठो हे कमलाकांत ! उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो ॥ २६ ॥ ये मंत्र पढ़कर प्रातःकाल शंख भेरी आदि बजावै । और वीणा, वेणु, मृदंग आदि बजवावै और नाच गाना करावै ॥ २७ ॥ और भगवान्को जगाकर

उत्तिष्ठ म्लेच्छनिवह खड्गसंहारकारक ॥ अश्ववाह युगांते त्वं त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २५ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद उत्तिष्ठ गरुडध्वज ॥ उत्तिष्ठ कमलाकांत त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २६ ॥
इत्युक्त्वा शंखभेर्यादि प्रातःकाले तु वादयेत् ॥ वीणावेणुमृदंगादि नृत्यगीतादि कारयेत् ॥२७॥
उत्थापयित्वा देवेशं पूजां तस्य विधाय च ॥ सायंकाले प्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजो विधिः ॥ २८ ॥
अवश्यमेव कर्तव्यः प्रतिवर्षं तु वैष्णवैः ॥ विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि यथा सांगक्रिया भवेत् ॥२९॥
विष्णोस्तु प्रतिमां कुर्यात्पलस्य स्वर्णजां शुभाम् ॥ तदर्धार्द्धं तदर्धार्द्धं यथाशक्त्या प्रकल्पयेत्॥३०॥

और उनकी पूजा करके सायंकाल कालको तुलसीके व्याहकी विधि करै ॥ २८ ॥ और वैष्णवोंको यह हर वर्ष अवश्य करनी चाहिये । उसकी विधि कहूंगा कि जिससे सांगोपांग कार्य होजाय ॥ २९ ॥ भगवान्की एक पल सौनेकी सुंदर मूर्ति बनवावै और एक पलकी न होसकै तो उससे आधेकी अथवा उससे आधेकी यथाशक्ति बनवावै

॥ ३० ॥ फिर तुलसी और विष्णुकी प्राणप्रतिष्ठा करके पहिले कहे हुये स्तवोंसे भगवान्‌को उठावै ॥ ३१ ॥ फिर षोडशोपचारसे पुरुषसूक्तके मंत्रोंद्वारा पूजन करै । और देशकालका स्मरण करके उसमें गणेशजीका पूजन करै ॥३२॥ फिर पुण्याहवाचन पढ़कर नांदीश्राद्ध करै और वेद पढते हुये और वाजे वजाते हुये विष्णुकी मूर्तिको लावै ॥ ३३ ॥ और उसे तुलसीके पास अंतःपट करके स्थापन करै और कहै कि हे भगवन् ! हे देव ! हे केशव ! आइये मैं

प्राणप्रतिष्ठां कृत्वैव तुलसीविष्णुरूपयोः ॥ तत उत्थापयेदेनं पूर्वोक्तैश्च स्तवादिभिः ॥ ३१ ॥
उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्पुरुषोक्तिभिः ॥ देशकालौ ततः स्मृत्वा गणेशं तत्र पूजयेत् ॥ ३२॥
पुण्याहं वाचयित्वाथ नांदीश्राद्धं समाचरेत् ॥ वेदवाद्यादिनिर्घोषैर्विष्णुमूर्तिं समानयेत् ॥ ३३ ॥
तुलसीनिकटे सा तु स्थाप्या चांतर्हितापटैः ॥ आगच्छ भगवन्देव अर्चयिष्यामि केशव ॥ ३४ ॥
तुभ्यं दास्यामि तुलसीं सर्वकामप्रदो भव ॥ दद्यात्रिवारमर्घ्यं च पाद्यं विष्टरमेव च ॥ ३५ ॥
तत आचमनीयं च त्रिरुक्त्वा च प्रदापयेत् ॥ ततो दधिघृतं क्षीरं कांस्यपात्रपुटीकृतम् ॥३६॥

आपकी पूजा करूंगा ॥ ३४ ॥ और मैं आपको तुलसी अर्पण करूंगा मेरी सब कामना पूरी करो । और तीन वार अर्घ्य, पाद्य और विष्टर दे ॥ ३५ ॥ फिर तीनवार कहके आचमन करावै । फिर दही घी, दूध, कासेके पात्रमें मिलाकर ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मधुपर्क दे और कहै हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है यह मधुपर्क ग्रहण करिये । फिर हरिद्राका लेपन और उवटन यह सब करके ॥ ३७ ॥ गोधूलिसमय तुलसी और भगवान्का पूजन करै । और दोनोंके जुदे २ काम करके उनके सामने मंगल पाठ करै ॥३८॥ जब सूर्य थोड़े दीखते हो उस समय संकल्प पूरा करै और अपने गोत्र प्रवर और अपने तीन पुरखोंका नाम लेकर ॥ ३९ ॥ कहै कि हे अनादिमध्यनिधन ! हे त्रिलोकीके प्रतिपालक भगवन् इन तुलसीजीको

मधुपर्कं गृहाण त्वं वासुदेव नमोस्तु ते ॥ हरिद्रालेपनाभ्यंगं कार्यं सर्वं विधाय च ॥ ३७ ॥
गोधूलिसमये पूज्यौ तुलसीकेशवौ पुनः ॥ पृथक् पृथक् तथा कार्यौ संमुखौ मंगलं पठेत् ॥३८॥
ईषद्दृश्ये भास्करे तु संकल्पं तु समापयेत् ॥ स्वगोत्रप्रवरानुक्त्वा तथा त्रिपुरुपादिकम् ॥ ३९ ॥
अनादिमध्यनिधन त्रैलोक्यप्रतिपालक ॥ इमां गृहाण तुलसीं विवाहविधिनेश्वर ॥ ४० ॥
पार्वतीवीजसंभूतां वृंदाभस्मनि संस्थिताम् ॥ अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम् ॥४१॥
पयोघटैश्च सेवाभिः कन्यावद्वर्धिता मया ॥ त्वत्प्रियां तुलसीं तुभ्यं ददामि त्वं गृहाण भो ॥४२॥

विवाहकी विधिसे ग्रहण कीजिये ॥ ४० ॥ पार्वतीके वीजसे उत्पन्न हुई और वृंदाकी भस्ममे स्थित । और जिनका आदि मध्य और अंत नही ऐसी वल्लभाको आपके समर्पण करताहूं ॥ ४१ ॥ पानीके घड़ांसे और सेवा करके मैने इन्है कन्याके समान बढ़ाया है तुह्मारी प्यारी तुलसीको मैं तुह्मेंही देताहूं हे भगवन् ! इसे ग्रहण करो ॥ ४२ ॥ ॥

इसप्रकार भगवान्‌को तुलसी देकर फिर दोनोंका पूजन करै । और रात्रिको विवाहका उत्सव कर जागरण करै ॥ ४३॥

एवं दत्त्वा च तुलसीं पश्चात्तौ पूजयेत्ततः ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्विवाहोत्सवपूर्वकम् ॥ ४३ ॥
प्रतिवर्षमिदं कुर्यात्कार्तिकव्रतसिद्धये ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसं॰ कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः॥२०॥

और कार्तिकके व्रतकी सिद्धिके लिये इसे प्रतिवर्ष किया करै ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥



॥ वालखिल्या बोले । फिर प्रातःकाल तुलसी और विष्णुकी पूजा करै और अग्नि स्थापन करके द्वादशाक्षर मंत्रसे ॥१॥ क्षीर, घृत, शहद, और तिल इनसे १०८ आहुत होमें फिर "स्विष्टकृतेस्वाहा" इससे हवन करके पूर्णाहुति करै ॥२॥ और फिर आचार्यका पूजन करके होम समाप्तकर दे । इसप्रकार चार वर्षतक चार मास नियमसे करै ॥ ३ ॥ और

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ ततः प्रभातसमये तुलसीं विष्णुमर्चयेत् ॥ वह्निसंस्थापनं कृत्वा द्वादशाक्षरविद्यया ॥ १ ॥ पायसाज्यक्षौद्रतिलैर्हुनेदष्टोत्तरं शतं ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ॥ २ ॥ आचार्यं च समभ्यर्च्य होमशेषं समापयेत् ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो येन यः कृतः ॥ ३ ॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तत्तथान्यत्परिपूरयेत् ॥ इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ॥ ४ ॥ न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ रेवतीतुर्यचरणद्वादशीसंयुते नरः ॥ ५ ॥ न कुर्यात्पारणं कुर्वन्व्रतं निष्फलतां व्रजेत् ॥ ततो येषां पदार्थानां वर्जनं तु कृतं भवेत् ॥६॥ ॥ ॥ ॥

कथा कहाकर पहिले ब्राह्मणोंकी और फिर अन्य लोगोंकी पूजा करै और कहै कि हे भगवन् ! हे स्वामी ! मैंने यह व्रत तुह्मारी प्रीत्यर्थ किया है ॥ ४ ॥ हे जनार्दन ! तुह्मारे प्रसादसे जो कुछ रह गया हो सो संपूर्ण होजाय । रेवतीके चौथे चरणयुक्त द्वादशीमे मनुष्य ॥ ५ ॥ पारणा न करै करनेसे व्रत निष्फल होजाता है । फिर जिन पदार्थोंको

छोड़ा हो ॥ ६ ॥ चातुर्मासमें वा कार्तिकमें उन्हैं ब्राह्मणको समर्पण करै । फिर व्रतके दिनोंमें जिस २ को छोड़ा है उन सबको खाय ॥ ७ ॥ और ब्राह्मणोंके सहित और स्त्री पुरुषके जोड़े सहित आप भोजन करै। फिर भोजनके पीछे जो गिरे हुए तुलसीपत्र हैं ॥ ८ ॥ उन्हैं मुखमें गेरै और तुलसीपत्र खाय तो सब पापोंसे छूट जाता है । गन्ना, आमला, और बेरफल ॥ ९ ॥ भोजनके अंतमें खानेसे उसका उच्छिष्ट दूर होजाता है । जो इन तीनोंमेंसे एकको भी नहीं

चातुर्मास्येथवा चोर्जे ब्राह्मणेभ्यः समर्पयेत् ॥ ततः सर्वं समश्नीयाद्यद्यत्त्यक्तं व्रते स्थितम् ॥७॥
दंपतीभ्यां सहैवात्र भोक्तव्यं च द्विजैः सह ॥ ततो भुक्त्युत्तरं यानि गलितानि दलानि च ॥८॥
तानि भुक्त्वा तुलस्याश्च स्वयं पापैः प्रमुच्यते ॥ इक्षुदंडं तथा धात्रीफलं कोलिफलं तथा ॥ ९ ॥
भुक्त्वा तु भोजनस्यांते तस्योच्छिष्टं विनश्यति ॥ एषु त्रिषु न भुक्तं चेदेकेकमपि येन तु ॥१०॥
ज्ञय उच्छिष्ट आवर्षं नरोसौ नात्र संशयः ॥ ततः सायं पुनः पूज्याविक्षुदंडैश्च शोभितैः ॥ ११ ॥
तुलसीवासुदेवौ च कृतकृत्यो भवेत्ततः ॥ ततो विसर्जनं कृत्वा दत्त्वा दायादिकं हरेः ॥ १२ ॥

खाय तो ॥ १० ॥ उस मनुष्यको वर्षभरतक उच्छिष्ट समझना चाहिये इसमें संदेह नहीं है । फिर सायंकालको सुंदर गन्नोंसे ॥ ११ ॥ तुलसी और भगवान्की पूजा करै तो उससे सब सफल होजाता है । फिर विसर्जन करके और भगवान्को दायादिक देकर ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

कहै कि हे भगवन् स्वामी ! तुलसीजीके सहित वैकुंठको जाइये । और मेरे किये पूजनको ग्रहण करके सदा संतुष्ट हूजिये और ॥१३॥ हे परमेश्वर ! हे श्रेष्ठदेव ! जाइये जाइये । हे जनार्दन ! जहां ब्रह्मादि देवता हैं वहां जाइये ॥ १४ ॥ इसप्रकार भगवान्का विसर्जन करके मूर्ति आदि सब आचार्यको दे दे तो वह मनुष्यका कर्म सफल हो जाता है

वैकुंठं गच्छ भगवंस्तुलसीसहितः प्रभो ॥ मत्कृतं पूजनं गृह्य संतुष्टो भव सर्वदा ॥ १३ ॥
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ जनार्दन ॥ १४ ॥
एवं विसृज्य देवेशमाचार्याय प्रदापयेत् ॥ मूर्त्यादिकं सर्वमेव कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ १५ ॥
प्रतिवर्षं करोत्येवं तुलस्युद्वाहनं शुभम् ॥ इहलोके परत्रापि विपुलं स यशो लभेत् ॥ १६ ॥
प्रतिवर्षं तु यः कुर्यात्तुलसीकरपीडनम् ॥ भक्तिमान् धनधान्यैः स युक्तो भवति निश्चितम् ॥ १७ ॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहफलानुकीर्त्तनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥

॥१५॥ जो मनुष्य प्रतिवर्ष तुलसीजीका सुंदर विवाह करता है तो इसलोक और परलोकमें बहुतसा यश पाता है ॥१६॥ जो मनुष्य प्रतिवर्ष तुलसीजीका विवाह करता है वह भक्तिमान् और धनधान्यसे युक्त निश्चय करके होता है ॥१७॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहफलानुकीर्तनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ वालखिल्या बोले ॥ सत युगमें कार्तिकशुक्लपक्षकी चौदसके दिन भगवान् वैकुंठसे काशीपुरीमे गये ॥ १ ॥ और जब चौथाई रात्रि रह गई उन्होंने मणिकर्णिकापर स्नान करके और सुवर्णके हजार कमल लेकर वहांसे गये ॥ २ ॥ और बड़ी भक्तिसे पार्वतीसहित महादेवजीका पूजन करके फिर कमलोंसे शिवजीका पूजन किया ॥ ३ ॥ पहिले

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां समागमत् ॥ वैकुंठेशस्तु वैकुंठाद्वाराणस्यां कृते युगे ॥ १ ॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायां स्नात्वासौ मणिकर्णिके ॥ गृहीत्वा हेमपद्मानां सहस्रं वै ततो व्रजेत् ॥ २ ॥ अतिभक्त्या पूजयितुं शिवया सहितं शिवम् ॥ विधाय पूजां वैश्वेशीं ततः पद्मैरपूजयत् ॥ ३ ॥ सहस्रसंख्यां कृत्वादावेकनाम्ना ततः परम् ॥ आरब्धं पूजनं तेन शिवस्तद्भक्तिमैक्षत ॥ ४ ॥ एकं पद्मं पद्ममध्यान्निलियात्तं हरेण तु ॥ ततः पूजितवान्विष्णुरेकोनं कमलं त्वभूत् ॥ ५ ॥ इतस्ततस्तेन दृष्टं पद्मं तिष्ठति न क्वचित् ॥ कमलेषु भ्रमो जातोऽथवा नामसु मे भ्रमः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

हजार कमल गिनकर फिर एक एक नामसे विष्णुने पूजन करना आरंभ किया तो शिवजीने उनकी भक्ति देखनेकेलिये ॥ ४ ॥ हरने कमलोंमेसे एक कमल लोप कर दिया । फिर विष्णु पूजा करते रहे और वहां एक कमल कमती होगया ॥ ५ ॥ विष्णुने इधर उधर देखा पर पर कमल कहीं नहीं था । फिर भगवान्ने सोचा कि कमल गिनतेमें

भ्रम होगया अथवा नामोंमें मुझे भ्रम होगया ॥ ६ ॥ क्षणभर विचारकर भगवान्ने जाना कि मुझे नाममें भ्रम नहीं हुआ मुझे कमलमेही भ्रम होगया ऐसा वार २ विचार कर कि ॥ ७ ॥ मैंने पूजाके लिये हजार कमलोंका संकल्प किया था सो एक कम कमलोंसे मै महादेवका पूजन कैसे करूं ॥ ८ ॥ जो लेनेके लिये जाताहूं तो आसन भंग होजा-

क्षणं विचार्य स हरिर्न मे नामभ्रमोऽभवत् ॥ पद्मे चैव भ्रमो जातो विचार्यैवं पुनः पुनः ॥७॥
सहस्रपद्मसंकल्पः पूजार्थं तु कृतो मया ॥ अर्च्यः कथं महादेव एकोनकमलैर्मया ॥ ८ ॥
यद्यानेतुं गमिष्यामि भंगः स्यादासनस्य तु ॥ अतःपरं किं विधेयं चिंतोद्विग्नो हरिस्तदा ॥९॥
एकः प्रकार उत्पन्नो हृदयेऽस्य मुनीश्वराः ॥ पुंडरीकाक्ष इत्येवं मां वदंति मुनीश्वराः ॥ नेत्रं मे
पद्मसदृशं पद्मार्थे त्वर्पयाम्यहम् ॥ १० ॥ इति निश्चित्य मनसा दत्त्वा तर्जनिकां स तु ॥ नेत्र-
मध्यात्तदुत्पाट्य महादेवस्तु पूजितः ॥ ११ ॥ ततो महेश्वरस्तुष्टो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ महादेव
उवाच ॥ त्वत्समो नास्ति मद्भक्तस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १२ ॥ ॥ ॥

यगा ॥ और अब क्या करना चाहिये भगवान् इस चिन्तासे बड़े दुखी हुये ॥९॥ फिर हे मुनीश्वरो ! इनके मनमें एक रीति आई कि मुनीश्वर मुझे पुंडरीकाक्ष कहते है और मेरा नेत्र कमलके समान है सो कमलके अर्थ मैं उसे अर्पण करता हूं ॥१०॥ विष्णुने ऐसा मनसे विचारकर और तर्जनी अंगुलीसे नेत्रकमल उखाड़कर महादेवका पूजन किया ॥११॥ फिर शिवजीने प्रसन्न

होकर यह वचन कहा ॥ महादेवजी बोले ॥ सचराचर त्रिलोकीमें तुह्मारे समान कोई मेरा भक्त नहीं है ॥ १२ ॥ मैंने तुह्मैं त्रिलोकीका राज्य दिया तुम लोकपाल होउ । तुह्मारा कल्याण होय और जो तुह्मारे मनमें इच्छा हो सो और मांगो ॥ १३ ॥ मैं अवश्य दूंगा इसमें कोई विचार नहीं करना है । मेरी भक्ति करके जो भगवान्से वैर करते हैं ॥ १४ ॥ वे मेरे और विष्णुके द्वेषी मनुष्य निश्चय करके नरकको जायंगे ॥ विष्णु बोले ॥ हे महेश्वर ! आपने

राज्यं दत्तं त्रिलोक्यास्ते भव त्वं लोकपालकः ॥ अन्यं वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेप्सितम् ॥ १३ ॥ अवश्यमेव दास्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥ मद्भक्तिं तु समालंब्य ये द्विषंति जनार्दनम् ॥ १४ ॥ ते मद्द्वेष्या नरा विष्णो व्रजेयुर्नरकं ध्रुवम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्रैलोक्यरक्षाकरणं ममादिष्टं महेश्वर ॥ १५ ॥ दुर्मदाश्च महासत्त्वा दैत्या मार्याः कथं मया ॥ शिव उवाच ॥ एतत्सुदर्शनं चक्रं महादैत्यनिकृंतनम् ॥१६॥ गृहाण भगवन्विष्णो मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ अनेन सर्वदैत्यानां भगवन्कदनं कुरु ॥ १७ ॥ ॥ ॥

मुझे त्रिलोकीकी रक्षा करनेकी आज्ञा दीनी ॥ १५ ॥ परंतु मैं दुर्मद और बड़े २ दैत्योंको कैसे मारूंगा ॥ शिवजी बोले ॥ बड़े २ दैत्योंको नाश करनेवाला यह सुदर्शन चक्र है ॥ १६ ॥ हे विष्णु हे भगवन् ! तुम इसे लो मैंने तुह्मैं इसे दिया । और हे भगवन् ! इससे सब दैत्योंका नाश करो ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥

इसप्रकार विष्णुको चक्र देकर फिर कहने लगे। शिवजी बोले ॥ हेमलंब नाम वर्षमें और सुन्दर कार्तिकमासके ॥ १८ ॥ शुक्लपक्षकी चौदस महादेवकी तिथिके दिन अरुणोदयके समय ब्राह्म मुहूर्तमें मणिकर्णिकामें ॥ १९ ॥ स्नान करके विश्वेश्वरनाथके लिंगको तुमने वैकुंठसे आकर हजार कमलोंसे पूजा है इसलिये मेरी प्रिया ॥ २० ॥

एवं चक्रं हरेर्दत्त्वा ततो वचनमब्रवीत् ॥ शिव उवाच ॥ वर्षे च हेमलंबाख्ये मासे श्रीमति कार्तिके ॥ १८ ॥ शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति ॥ महादेव तिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके ॥ १९ ॥ स्नात्वा वैश्वेश्वरं लिंगं वैकुंठादेत्य पूजितम् ॥ सहस्रकमलैस्तस्माद्भविष्यति मम प्रिया ॥ २० ॥ विख्याता सर्वलोकेषु वैकुंठाख्या चतुर्दशी ॥ अन्यं वरं प्रदास्यामि शृणु विष्णो वचो मम ॥ २१ ॥ पूर्वरात्रे तु ते पूजा कर्तव्या सर्वजातिभिः ॥ उपवासं दिवा कुर्यात्सायंकाले तवार्चनम् ॥ २२ ॥ पश्चान्ममार्चनं कार्यमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥ ग्राह्या तु हरिपूजायां रात्रिव्याप्ता चतुर्दशी ॥ २३ ॥ ॥ ॥

वैकुंठ चतुर्दशी सब लोकमें विख्यात होगी और हे भगवन्! मैं दूसरा वरदान देता हूं सो मेरा वचन सुनो ॥ २१ ॥ पहिली रात्रिको सब वर्णोंको तुह्मारी पूजा करनी चाहिये और दिनमें उपवास करके सायंकालको तुह्मारी पूजा करके ॥ २२ ॥ फिर मेरा पूजन करै नही तो निष्फल होजायगा। और विष्णुकी पूजामें रात्रिव्यापिनी चौदस ग्रहण करै

॥ २३ ॥ और अरुणोदयके समय शिवजीका पूजन करै । जो मनुष्य हजार कमलोंसे पहिले भगवान्का पूजन करैंगे ॥ २४ ॥ और पीछै शिवजीकी पूजा करैंगे वे निश्चय जीवन्मुक्त हैं । जो सायंकालको पंचगंगामे स्नान करके विंदुमाधवको पूजते हैं ॥ २५ ॥ और सुन्दर हजार कमल हजार नाम लेकर भगवान्को चढ़ाते है और फिर मणिकर्णिकामें स्नानकर विश्वेश्वरनाथको पूजते हैं ॥ २६ ॥ और पवित्र सहस्रनामका पाठ करते है वे निश्चय जीवन्मुक्त हैं ।

अरुणोदयवेलायां शिवपूजां समाचरेत् ॥ सहस्रकमलैर्विष्णुरादौ यैः पूजितो नरैः ॥ २४ ॥
पश्चाच्छिवः पूजितश्चेज्जीवन्मुक्तास्त एव हि ॥ सायं स्नात्वा पंचनदे विंदुमाधवमर्चयेत् ॥ २५ ॥
सहस्रनामभिर्विष्णोः कमलैः सुमनोहरैः ॥ मणिकर्ण्यां ततः स्नात्वा विश्वेश्वरमथार्चयेत् ॥ २६ ॥
सहस्रनामभिः पुण्यैर्जीवन्मुक्तः स एव हि ॥ स्नात्वा यो विष्णुकांच्यां वानंतसेनं समर्चयेत् ॥२७॥
रुद्रकांच्यां ततः स्नात्वा प्रणवेशं समर्चयेत् ॥ पृथिव्यां च श्रुता ये ये धर्माः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥२८॥
सर्वेषां फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ आदौ स्नात्वा वह्नितीर्थे यजेन्नारायणं ततः ॥ २९ ॥

जो कोई विष्णुकांचीमे स्नान करके अनंत सेनका पूजन करता है ॥ २७ ॥ और फिर रुद्रकांचीमे स्नानकर प्रणवेशकी पूजा करता है । तो पृथिवीपर पण्डितोने जो जो धर्म कहे हैं ॥ २८ ॥ वह उन सवका फल पाता है इसमे कुछ विचारका काम नहीं है । और जो पहिले वह्नितीर्थमें स्नानकर और फिर नारायणका पूजन करता है ॥ २९ ॥

और फिर रेतोदक तीर्थमें स्नान करके केदारेश्वरकी पूजा करता है तो इसी लोकमे इच्छा करनेवालोंकी कामना सफल होजाती है इसमें संदेह नहीं है ॥ ३० ॥ और जो कमल न मिलै तो स्थलपद्मोंसेही पूजा करै । पहिले यमुनाजीमें स्नान करके वेणीमाधका पूजन करै ॥ ३१ ॥ फिर गंगाजीमे स्नान करके संगमेश्वरका पूजन करै । और रक्त कमलोंसे भगवान्‌का और श्वेत कमलोंसे शिवजीका पूजन करै तो सब संपत्तियां उसके वशमे होजाती हैं यह सत्य है

रेतोदके ततः स्नात्वा केदारेशं समर्चयेत् ॥ इहैवार्थवतामर्थो भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ ३० ॥
स्थलपद्मैस्तत्रपूजा कर्तव्या जलजक्षयात् ॥ आदौ स्नात्वा सूर्यपुत्र्यां वेणीमाधवमर्चयेत् ॥३१॥
जाह्नव्यां च ततः स्नात्वा संगमेशं प्रपूजयेत् ॥ रक्तपद्मैः श्वेतपद्मैर्हरिरुद्रौ क्रमेण च ॥ सर्वाः
श्रियस्तस्य वश्याः सत्यं विष्णो मयोदितम् ॥ ३२ ॥ मोक्षार्थं काशिकामध्ये तिष्ठतः शुभदा-
यकौ ॥ बिंदुमाधवविश्वेशौ जगदानंदकारकौ ॥ ३३ ॥ न लभेत्पूजयित्वा किं मोक्षं विश्वेश्वरं
हरिम् ॥ विना यो हरिपूजां तु कुर्याद्रुद्रस्य चार्चनम् ॥ ३४ ॥ ॥

मैंने विष्णुसे कहा है ॥ ३२ ॥ काशीमें कल्याण देनेवाले और जगतको आनंद करनेवाले बिंदुमाधव और विश्वेश्वरनाथ मोक्ष देनेके लिये रहते है ॥ ३३ ॥ सो क्या महेशको पूजकर मनुष्य मोक्ष नहीं पाता । जो मनुष्य भगवान्‌को विना पूजे शिवजीका पूजन करता है ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

वृथा तस्य भवेत्पूजा सत्यमेतद्वचो मम ॥ एवं तस्मै वरान्दत्त्वा ह्यंतर्धानं ययौ शिवः ॥३५॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यौ हरिहरावुभौ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे शौचाचारविवर्जिते ॥ ३६ ॥ तत्त्वसंख्यैस्सहस्रैस्तु वर्षैर्देवो महेश्वरः ॥ वाराणसीस्थलिंगानि पाताले स नयिष्यति ॥३७॥ ततो द्विगुणवर्षैस्तु गंगा वाराणसी तथा ॥ भविष्यति ह्यदृश्या सा तथैव मुनीश्वराः ॥ ३८ ॥ अंतर्हिता यदा काशी भविष्यति तदा मुने ॥ नाशस्तु लिंगचिह्नानां निष्प्रभाः सकला जनाः ॥ ३९ ॥ चतुर्दशाब्दं दुर्भिक्षं महामारीसमुद्भवः ॥ गोवधश्चापि सर्वत्र मृत्तिका भस्मसन्निभा ॥ ४० ॥

तो उसकी पूजा वृथा जाती है यह मेरा सत्य वचन है। इसप्रकार विष्णुको वर देकर शिवजी अंतर्धान होगये ॥३५॥ इसलिये सब प्रकारसे विष्णु और शिव दोनोंको पूजना चाहिये। जब घोर कलियुग आवेगा तो पवित्रता और आचार सब जाता रहैगा ॥ ३६ ॥ और उसके पांच हजार वर्ष वीत जानेपर काशीमें जितने लिंग स्थापित हैं उन सबको शिवजी पाताल लेजायंगे ॥ ३७ ॥ फिर उससे दुगुने वर्षोंमें अर्थात् दस हजार वर्षमें गंगा और वाराणसी अदृश्य हो जांयगीं और हे मुनीश्वरो ! ॥ ३८ ॥ जब काशी लोप होजायगी तब और लिंगोंके चिन्ह नाश होजायंगे और सब लोग कांतिरहित होजायंगे ॥ ३९ ॥ फिर चौदह वर्ष अकाल पड़ेगा और महामारी चेतेगी ! सब जगह गोवध होगा

और मृत्तिकाकी आभा राखकैसी होजायगी ॥ ४० ॥ फिर गंगाके जलकी धारा जो हरिद्वारसे वायव्यस्थानकी ओर भागीरथके आश्रममें गिरती है उसका लोप होजायगा ॥ ४१ ॥ जब गंगाजी लोप होजायंगी तो मकड़ीके तंतुके ममान कीड़े जलमें होजायंगे और जलका नीला रंग पड़ जायगा ॥४२॥ और चार हजार वर्षके अनंतर पर्वतपर रहनेवाले सब

गांगतोया तु या धारा पतेद्भागीरथाश्रमे ॥ हरिद्वाराच्च वायव्ये तस्या लोपो भविष्यति ॥ ४१ ॥
भागीरथ्यां गतायां तु मर्कटीतंतुसन्निभाः ॥ भविष्यंति जले कीटास्तोयं नीलिनिभं तथा ॥ ४२ ॥ चतुर्वर्षसहस्रेस्तु शैलस्थाः सर्वदेवताः ॥ सत्वं त्यक्त्वा गमिष्यंति मानसं च सरोवरम् ॥ ४३ ॥ गतेपु सर्वदेवेषु राजानो धैर्यविच्युताः ॥ पापिष्ठाश्च दुराचारा नानादुःखेन पीडिताः ॥ ४४ ॥ कलेरयुतवर्षाणि भविष्यंति यदा खग ॥ श्रौतमार्गस्य लोपस्तु भविष्यति न संशयः ॥ ४५ ॥ तदा लोका भविष्यंति मद्यपानपरायणाः ॥ स्वल्पायुषः स्वल्पभाग्या नानारोगैश्च पीडिताः ॥ ४६ ॥ ॥ ॥ ॥

देवता सत्वको छोड़ मानससरोवरको चले जायंगे ॥ ४३ ॥ सब देवताओंके चले जानेपर राजा धैर्यसे रहित पापी दुराचारी और अनेक प्रकारके दुःखसे पीड़ित होंगे ॥ ४४ ॥ और हे खग ! जब कलियुगके हजार वर्ष वीत जायंगे तब वेदमार्गका लोप होजायगा इसमें संदेह नहीं है ॥ ४५ ॥ उस समय लोग मद्यपान करनेमें तत्पर होंगे थोड़ी आयु-

वाले मंदभाग्य और अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होंगे ॥ ४६ ॥ दो तीन वेद पाठी दक्षिण देशमें होंगे सो

द्वित्रास्तु दक्षिणे देशे वेदज्ञाः संभवंति च ॥ आनीयतांश्छाककर्ता धर्मं संस्थापयिष्यति ॥४७॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

राजा उन्है लाकर धर्म स्थापित करैंगा ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥



॥ वालखिल्या बोले । कार्तिककी पूर्णिमाके दिन त्रिपुरका उत्सव करना चाहिये और सायंकालको शिवजीके मंदिरमें अवश्य दीपक चढ़ाना चाहिये ॥ १ ॥ दैत्योंके स्वामी त्रिपुरने प्रयागमें तप किया था । उसने एक लाख वर्ष तप किया और सचराचर तीनों लोकको दुःख दिया ॥ २ ॥ उस तपके तेजसे तीनों लोकोंका जलाना आरंभ किया । देवताओंने अनेक देवांगनाओंको उसे वश करनेके लिये भेजीं ॥ ३ ॥ परंतु वह उन देवांगनाओंके वशमें नहीं हुआ और बड़े

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु कुर्यात्त्रैपुरमुत्सवम् ॥ दीपो देयोऽवश्यमेव सायंकाले शिवालये ॥ १ ॥ त्रिपुरो नाम दैत्येंद्रः प्रयागे तप आस्थितः ॥ लक्षवर्षं तपस्तप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २ ॥ तत्तपस्तेजसारब्धं दग्धुं तु भुवनत्रयम् ॥ नानादेवांगनादेवैः प्रेषिता संविमोहितुम् ॥ ३ ॥ न तासां वशगः सोभूद्धर्षणैश्चापि धर्षितः ॥ न क्रोधमोहलोभानां वशो दैत्यो नु जायते ॥ ४ ॥ वरं दातुं ययौ ब्रह्मा नारदादिभिरन्वितः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वरं वरय भद्रंते संतुष्टोहं पितामहः ॥ ५ ॥ ॥ ॥

२ कठिन कामोसे धमकाये जाने पर भी वह दैत्य क्रोध मोह लोभ इनके वशमें नहीं आया ॥ ४ ॥ फिर नारद आदिको साथ लेकर ब्रह्माजी उसे वर देनेके लिये गये । ब्रह्मा बोले । मैं ब्रह्मा तुझसे प्रसन्नहूं तू वर माग तेरा कल्याण होय ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तपसे फल सिद्ध होजाता है तो कौनसा मनुष्य क्लेश सहता है ॥ त्रिपुर बोला ॥ हे ब्रह्माजी ! मुझे अमर करो नही तो मैं तप करूंगा ॥ ६ ॥ हे ब्रह्माजी ! जो यह देनेको समर्थ नहीं हो तो शीघ्र चले जाओ। ब्रह्माजी बोले ॥ हे बालक ! मुझकोभी मरना है औरोंकी तो क्या कथा है ॥ ७ ॥ प्राणियोंकी मृत्यु अवश्य होती है इसलिये जो बात होसके सो

तपसा तु फले सिद्धे कः क्लेशं सहते जनः ॥ त्रिपुर उवाच ॥ अमरं कुरु मां ब्रह्मन् करोमि ह्यन्यथा तपः॥ ६ ॥ दातुं शक्तं न चेद्ब्रह्मन्न व्यथा गच्छ सत्वरम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मयापि बालमर्त्तव्यमितरेषां तु का कथा ॥ ७ ॥ अवश्यं देहिनां मृत्युः संभाव्यं याचयस्व मे ॥ त्रिपुर उवाच ॥ न मे मृत्युर्देवताभ्यो मनुष्येभ्यो निशाचरात् ॥ ८ ॥ न स्त्रीभ्यो न च रोगेण देह्येवं वरमुत्तमम् ॥ ब्रह्मापि च तथेत्युक्त्वा सत्यलोकं जगाम सः ॥ ९ ॥ एवं लब्धवरं ज्ञात्वा नाना- दैत्या समाययुः ॥ तान् दैत्यानागतान्दृष्ट्वा सो ज्ञापयत दानवान् ॥ १० ॥ अस्मद्विरोधिनो देवा धर्त्तव्याः सर्वएव हि ॥ नोचेद्यानि च रत्नानि देवादीनां समीपतः ॥ ११ ॥ ॥

मांगले ॥ त्रिपुर बोला ॥ मेरी मृत्यु देवता मनुष्य और राक्षससे न हो ॥ ८ ॥ और न स्त्रीसे और न रोगसे होय ऐसा उत्तम वर दान दो ॥ ब्रह्माजीने कहा "ऐसाही होगा" यह कहकर वे सत्य लोकको गये ॥ ९ ॥ जब उसने ऐसा वर पाया तो उसके पास बहुतसे दैत्य आये । उन दैत्योंको आया देखकर उसने दानवोंसे आज्ञा करी कि ॥१०॥ देवता हमारे शत्रु हैं

उन सबको पकड़ लाओ। नहीं तो देवता आदिके पास जो रत्न हैं ॥ ११ ॥ उन सबको लाकर मेरी भेट करो। उसकी इस आज्ञाको शिरपर धरके वे सब दानव ॥ १२ ॥ देवता नाग और यक्षोंको पकडकर सामने ले आये तब सब देवता उस त्रिपुरको नमस्कारकर निवेदन करने लगे कि ॥ १३ ॥ हे दैत्य राजेन्द्र ! जो हमारे पास हो लेलो हम तुह्मारी सेवा करके जैसे होगा वैसे जीयेंगे ॥ १४ ॥ उनका यह वचन सुनकर उनको अधिकारसे अलग करदिया।

गृहीत्वा तानि सर्वाणि कुर्वंतूपायनं मम ॥ इत्याज्ञां तस्य शिरसि कृत्वा ते सर्वदानवाः ॥१२ ॥
देवान्नागांश्च यक्षांश्च धृत्वाग्रे विनिवेदिताः ॥ प्रणम्य सर्वदेवास्तं त्रिपुरं च व्यजिज्ञपुः ॥ १३ ॥
गृह्यतां दैत्यराजेंद्र यदस्माकं भविष्यति ॥ वयं कृत्वा तु ते सेवां जीविष्यामो यथा तथा ॥१४॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषामधिकारच्युताः कृताः ॥ तेषां स्त्रियः समानीय देववेश्याः सहस्रशः ॥१५॥
एवं भास्करमुत्सृज्य सर्वेदेवास्तदाज्ञया ॥ चक्रुर्यथोक्तं दैत्यस्य द्वारस्थाः सर्वएव हि ॥ १६ ॥
सूर्यस्य निकटेप्युक्तं मद्वारे स्थीयतां सदा ॥ तेनापि च तथेत्युक्त्वा तद्वारे संस्थितं क्षणम् ॥ १७ ॥

और उनकी स्त्रियोंको और हजारो देवांगनाओंको ले आये ॥ १५ ॥ इसप्रकार सूर्यनारायणको छोड़कर सब देवता उसकी आज्ञासे जैसा उसने कहा करने लगे और सब उस दैत्यके द्वारपर खड़े होगये ॥ १६ ॥ उसने सूर्यसे भी कहा भेजा कि सदा मेरे द्वारपर खड़े रहो और वे भी "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर उसके द्वारपर क्षणभर खड़े होगये

॥ १७ ॥ और क्षणमात्रमें अपनी किरणोंसे उसके सब घरको तपादिया फिर उसने आज्ञा दीनी कि जहां तुह्मारी इच्छा हो वहां चले जाओ ॥ १८ ॥ फिर यह भगवान् सूर्यनारायण भुवनोंको प्रकाश करते हुये चले गये । और सब देवता निकाल देनेपर भी उसके द्वारपर बैठ उसकी आज्ञा पालन करने लगे ॥ १९ ॥ एक समय उसके घर नारदजी

ददाह भवनं सर्वं स्वकरैः क्षणमात्रतः ॥ आदिष्टश्च ततस्तेन स्वेच्छया गम्यतामिति ॥ १८ ॥
ततो गतो सौ भगवान्भुवनानि विभावयन् ॥ चक्रुर्देवास्तदाज्ञां च द्वारि तिष्ठंति वारिताः ॥१९॥
कदाचित्तस्य गेहेतु नारदः समुपाययौ ॥ तेनापि पूजितो भक्त्या पप्रच्छ स्व पराक्रमान्
॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ ईदृशो जयघोषस्तु न केनापि कृतो भुवि ॥ अस्मिन्देशे तु दैत्येंद्र
किमिदानीं निगद्यताम् ॥ २१ ॥ त्रिपुर उवाच ॥ सर्वस्थलेषु मे कीर्तिर्न गता किं नु नारद ॥
मया प्रस्थापिता दैत्याः सर्वएव इतस्ततः ॥ २२ ॥ यत्र यत्र गतो दैत्य स्तत्र तत्र प्रभुः सहि ॥
तव नाम न गृह्णाति वक्ति च स्वपराक्रमम् ॥ २३ ॥ ॥ ॥

आये । उसने भक्तिसे उनका पूजन करके अपने पराक्रमोंके विषयमें पूछा ॥ २० ॥ नारदजी बोले ॥ पृथ्वीपर इस देशमे तुह्मारासा ऐसा जयका शब्द किसीने नही किया हे दैत्येन्द्र ! अब क्या है सो कहो ॥ २१ ॥ त्रिपुर बोला ॥ हे नारदजी ! क्या सब स्थानोंमें मेरी कीर्ति नही पहुंची मैंने तो सब दैत्योको इधर उधर भेज दिया है ॥२२॥ नारदजीने कहा कि

जहां २ जो दैत्य गया वह वहांकाही स्वामी होवैठा वह तुह्मारा नाम भी नहीं लेता अपना पराक्रम कहता है ॥२३॥ यह सुनकर उसने शीघ्रही मुनिको विदाकर दिया । और इसको बड़ा क्रोध आया कि अव मुझे क्या करना चाहिये ॥ २४ ॥ उसने विश्वकर्माको बुलाकर यह कहा कि हे विश्वकर्मा! तीन धातुओंके तीन पुर बना ॥ २५ ॥ वह विमानके तुल्य हों और जहां हमारी इच्छा हो वहां वे जासके उसका यह वचन सुनकर विश्वकर्माने वही किया

इति श्रुत्वा मुनिस्तेन सद्य एव बिदायितः ॥ क्रोधश्चास्य महान् जातः किं कर्तव्यं मयाधुना ॥२४॥
विश्वकर्माणमाहूय वाक्यमेतदुवाच ह ॥ शीघ्रं कुरु त्रिधातूनां विश्वकर्मन्पुरत्रयम् ॥ २५ ॥
विमानतुल्यं यत्रेच्छा तत्र तत्र गमिष्यति ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्वष्टापि च तथाकरोत् ॥२६॥
रूपत्रयं समास्थाय त्रिपुरेषु समाश्रितः ॥ नारदस्य तु वाक्येन दैत्या वंदीकृतास्तदा ॥२७॥
पुरेणैकेन पाताले भ्रमते त्रिपुरासुरः ॥ स्वर्गं चापि पुरैकेन धरणीमटते पुरा ॥ २८ ॥ कांश्चि-
त्संताडयत्येवं संमारयति कानपि ॥ ददाति केषां स्वामित्वं स्वेच्छाचारी महाबलः ॥ २९ ॥

॥ २६ ॥ और तीनरूप धरकर तीन पुरोंमें आश्रित होगया । और नारदजीके वाक्यसे दैत्योंको कैद करलिया ॥ २७ ॥ और त्रिपुरासुर एक पुरसे पातालमें भ्रमने लगा और एकसे स्वर्गमें और एकसे पृथ्वीपर घूमने लगा ॥ २८ ॥ किसीको मारै किसीको बड़ी ताड़ना दे किसीको स्वामी बनावै क्योंकि वह स्वेच्छाचारी और बड़ा बली था ॥ २९ ॥ ॥

उसने इसप्रकार जब सब पांच लाख लोगोंको दुखी किया तब देवताओंके पास आकर नारदजीने यह वार्ता कही ॥ ३० ॥ नारदजी बोले ॥ तुम पराक्रम वालोंको धिक्कार है हे इन्द्र ! तुह्मारी बुद्धि कहां गई है ॥ हे देवताओ त्रिपुरके मारनेके लिये विचार करो ॥ ३१ ॥ इसप्रकार मुनिका वचन सुनकर इन्द्रने लजाकर नीचा मुख करलिया । फिर नारदजीने इन्द्रसे कहा कि ब्रह्माजीकी शरण चलो । फिर इन्द्र उठकर देवगणके साथ गुप्त रीतिसे ॥ ३२ ॥ नारद-

तेनेत्थं पंचलक्षाणि सर्वे लोका उपद्रुताः ॥ तदा देवान् समागम्य नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥ ॥ नारदउवाच ॥ पराक्रमायास्तु ते धिक् देवेंद्र क्वगतास्ति धीः ॥ विचारयंतु भो देवा वधाय त्रिपुरस्य च ॥ ३१ ॥ इत्थं मुनिवचः श्रुत्वा सलज्जोभूदधोमुखः ॥ पुनस्तं नारदः प्राह ब्रह्माणं शरणं व्रज ॥ तत उत्थाय देवेंद्रो गूढो देवगणैः सह ॥ ३२ ॥ नारदेन समायुक्तः सत्यलोकं जगाम सः ॥ तत्रापश्यत्सधातारमुवाच करुणं वचः ॥३३॥ इंद्र उवाच ॥ धातरस्मद्गतिर्नास्ति हननीयास्त्वया वयम् ॥ नासाग्रे संस्थिताः प्राणास्त्रिपुरस्य तु शासनात् ॥ ३४ ॥ ॥

जीको साथ लेकर सत्यलोकको गये और वहां जाकर इन्द्रने ब्रह्माजीको देखा और उनसे दीन वचन कहे ॥ ३३ ॥ इन्द्र बोले । हे ब्रह्माजी ! हमारा अब ठिकाना नहीं है तुमही हमें मारडालो क्यौंकि त्रिपुरके दंड भुगतते २ हमारा नाकमें दम होगया ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इन्द्रका यह वचन सुनकर ब्रह्माजी इन्द्र और मुनीश्वरोंको साथ लेकर शीघ्र वैकुंठको गये कि जहां भगवान् थे ॥३५॥ वहां जाकर देवता विष्णु भगवान्को प्रणाम करके खड़े होगये । और जब भगवान्ने अनुग्रह करके देखा तो ब्रह्माजी यह वचन बोले ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले ॥ हे भगवान् ! हे देवदेवेश ! हे देवताओंकी आपत्तिके नाशक ! त्रिपुरासुरसे

इतींद्रवचनं श्रुत्वा ब्रह्मा सेंद्रो मुनीश्वराः ॥ सद्यो वैकुंठमगमद्यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ ३५ ॥ तत्र गत्वा महाविष्णुं प्रणिपत्य स्थिताः सुराः ॥ अनुगृहीत्वा दृक्पातैस्तं ब्रह्मा वाक्यमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्देवदेवेश देवापत्तिविनाशन ॥ त्रिपुरासुरनिर्दग्धान् किं देवांस्त्वमुपेक्षसे ॥ ३७ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ त्वयैव नाशितं ब्रह्मन् दत्त्वा नानाविधा वराः ॥ देवादिभ्यः कथं तस्य मृत्युः संभाव्यतेऽधुना ॥ ३८ ॥ न भासते विचारो मे तस्य मृत्यौ सुरेश्वराः ॥ अस्ति कश्चिद्यदोपायः कथं वै करवाण्यहम् ॥ ३९ ॥ इति श्रुत्वा वचो विष्णोः सर्वे बुध्या तु कुंठिताः ॥ यदा नोचुर्वचः किंचिन्नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४० ॥

महा दुखी हम देवताओंका दुख क्यों नहीं सुनते ॥ ३७ ॥ विष्णु बोले ॥ हे ब्रह्माजी ! तुमनेही अनेक प्रकारके वर देकर नाश किया है अब देवता आदिसे उसकी मृत्यु कैसे होसक्ती है ॥ ३८ ॥ हे देवताओ ! उसकी मृत्यु होनेका हमें कोई उपाय नही दीखता । और जो उपाय है तो हम उसे कैसे करैं ॥ ३९ ॥ भगवान्का यह वचन सुनकर सबकी बुद्धि

कुंठित होगई। और जब कुछ उत्तर नहीं दिया तो नारदजीने कहा ॥ ४० ॥ हे देवताओ! खेद मतकरो मैं उपाय कहताहूं कि सृष्टिके मध्यमे जो एकही उत्पन्न हुआ है न देवता है न मनुष्य है ॥ ४१ ॥ और राक्षस दैत्य भूत तथा पिशाच कोई नहीं है। न पुरुष है न स्त्री है न मूर्ख है न पण्डित है ॥ ४२ ॥ न उसके बाप है न माता है न भाई है

॥ श्रीनारद उवाच ॥ कुर्वंतु खेदं मा देवा उपायः कथ्यते मया ॥ एको सृष्टः सृष्टिमध्ये न देवो न च मानुषः ॥ ४१ ॥ न राक्षसो न वै दैत्यो न भूतो न पिशाचकः ॥ नासौ पुमान्न च स्त्री तु न जडो न च पंडितः ॥ ४२ ॥ नास्य तातो न वा माता न भ्राता भगिनी न च ॥ तथैव तस्य संतानं स एनं मारयिष्यति ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतादृशः क्व दृष्टोसौ सत्यं वालीकमेव वा ॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा प्रोवाच जगदीश्वरः ॥ ४४ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ अहो त्रैलोक्यनाथोसौ महादेवो वृषध्वजः ॥ ब्रह्मन्कथं विस्मृतोसौ स नः कार्यं करिष्यति ॥ ४५ ॥ इत्युक्त्वा सर्व एवैते शंकरं शरणं ययुः ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव दैत्येंद्राद्भूशपीडिताः ॥ ४६ ॥

न बहिन है उसकी संतान इसे मारैगी ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले ॥ ऐसा तुमने कहां देखा है यह सत्य है वा झूठ है। ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर भगवान्ने कहा ॥ ४४ ॥ भगवान् बोले ॥ अहा! एसे तो त्रिलोकीके नाथ वृषध्वज महादेवजी है हे ब्रह्माजी! तुम इन्है कैसे भूल गये क्या वे काम नहीं करैंगे ॥ ४५ ॥ यह कहकर वे सब शंकरकी

शरण गये । देवता बोले ॥ हे देवोंकेदेव हे महादेव ! दैत्य राजने हमें वड़ा दुखीकर रक्खा है ॥ ४६ ॥ इसलिये त्रिपुरासुरसे महा दुखी होकर आपकी शरण आये है ॥ शिवजी बोले ॥ हे ब्रह्माजी ! तुमनेही उसे वर दिया है कि जिससे वह मतवाला होगया है ॥ ४७ ॥ तुमनेही तो वर दिया है फिर उसे क्यौं मरवाते हो । उसने मेरा कुछ नहीं विगाड़ा है फिर मैं उस असुरको क्यौं मारूं ॥ ४८ ॥ शिवजीका यह वचन सुनकर वे देवता निराश होगये । उनको ऐसा

त्वामेव शरणं प्राप्तास्त्रिपुरेण प्रपीडिताः ॥ श्रीशिव उवाच ॥ ब्रह्मंस्त्वया वरो दत्त उन्मत्तोसौ भवत्तदा ॥ ४७ ॥ प्रदिष्टोसि वरः कस्मात्पुनर्मारयसे कथम् ॥ मदीयं नाशितं नैव कस्माद्वध्यो मयासुरः ॥ ४८ ॥ इति रुद्रवचः श्रुत्वा हताशास्ते सुरास्तदा ॥ तादृशांस्तान्सुरान्दृष्ट्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्वया प्रतिज्ञा लोकानां पालनाय सदाशिव ॥ कृतातस्त्वां समायाताः शरणं सर्वदेवताः ॥ ५० ॥ मया नानाविधं दुःखं हीयते तु सदाशिव ॥ एतद्दुःखं मया शक्यमपनेतुं यतो नहि ॥ ५१ ॥ ॥ ॥

देखकर विष्णुने यह बात कही ॥ ४९ ॥ विष्णु बोले ॥ हे सदाशिव ! तुमने लोकोंके पालनेकी प्रतिज्ञा करी है इसलिये सब देवता तुह्मारी शरण आये हैं ॥ ५० ॥ और हे सदाशिव ! मैंने अनेक प्रकारका दुख तो दूर करदिया परंतु इस दुखको मैं दूर करनेको निश्चय करके असमर्थहूं ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥

इसलिये आज मैं आपसे याचना करताहूं कि देवताओंको उसकी कैदसे छुड़ाओ ॥ शिवजी बोले ॥ तुह्मारा कहना मैं करूंगा परंतु एक तो मेरे घरमें सामग्री नही है और दूसरे वह मेरा अपराधी नहीं है सो मैं उस दानवको नहीं मारूंगा ॥ ५२ ॥ विष्णु बोले ॥ हे सदाशिव ! संग्रामके लिये सामग्री तो मैं तयार करदूंगा फिर वह दैत्य आप शिवजीका अन्याय कैसे करैगा ॥ ५३ ॥ विष्णुका यह वचन सुनकर महादेवजी बोले कि हा ! बड़ा कष्ट है कहीं त्रिपुरा-

अतस्त्वां याचयाम्यद्य देवान्बंदेर्विमोचय ॥ शिव उवाच ॥ तव वाक्यं करिष्यामि सामग्री नास्ति मे गृहे ॥ ममापराधरहितं हनिष्यामि न दानवम् ॥ ५२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ सामग्रीं तु करिष्यामि संग्रामार्थं सदाशिव ॥ करिष्यति कथं दैत्यः शंभोरन्यायमेव सः ॥ ५३ ॥ इति विष्णुवचः श्रुत्वा हा कष्टमिति चाब्रवीत् ॥ अत्रागमिष्यत्यस्माकं शृणुयात्त्रिपुरासुरः ॥५४॥ न विलंबं मृतौ कुर्यात्किमिदानीं विधीयताम्॥सुरान्म्लानमुखान्दृष्ट्वा नारदो वाक्यमब्रवीत्॥५५॥ नारद उवाच॥सामग्री क्रियतां शीघ्रमायाति त्रिपुरासुरः॥विष्णुं पलायितं दृष्ट्वा क रुद्रोस्तीति लोकयन्

सुर यहां आकर हमारी बातें न सुनले ॥ ५४ ॥ सो उसकी मृत्युमें देर न करनी चाहिये और अब क्या करना चाहिये । फिर देवताओंका उदास मुख देखकर नारदजीने कहा ॥ ५५ ॥ नारदजी बोले ॥ शीघ्र सामग्री तयार करो त्रिपुरासुर ॥

... शिवजीको देखने लगे कि वह कहां है ॥ ५६ ॥

मैंने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा है पर जो मेरे स्थानपर लड़नेको आवेगा तो मै उस महा अभिमानीको अवश्य मारूंगा ॥ ५७ ॥ शिवजीका यह वचन सुनकर सब देवताओंको थामस हुआ । और उन शिवजीके युद्धके लिये विष्णुने सामग्री तयारकर दीनी ॥ ५८ ॥ आप तो बाण बने और अग्नि शल्य बना । वायुने पुंखरूप धारण किया और

मया न नाशितं तस्य यदि यास्यति मत्स्थले॥ योद्धुं तदावश्यमेव मया मार्यः सुदुर्मदः॥ ५७॥
इति रुद्रवचः श्रुत्वा समाश्वस्तास्तु देवताः ॥ सामग्रीं विष्णुरकरोद्युद्धार्थं स तु धूर्जटेः॥ ५८॥
बाणः स्वयं बभूवास्य वह्निः शल्यं बभूव सः ॥ वायुस्तु पुंखरूपोभून्मैनाकं च धनुः करोत् ॥
स्यंदनं धरणी जाता वेदा जाता हयोत्तमाः ॥ ५९ ॥ विधातासारथिर्जातः पताका च दिवाकरः ॥ आतपत्रं च चंद्रोभूद्गणेशाद्याः पदातयः ॥ ६० ॥ ततो वेगात्समुत्पत्य नारदस्त्रिपुरं ययौ ॥ श्रुत्वा नारदमायांतं सत्कारैरर्चयच्च तम् ॥ ६१ ॥ मुने पुराणि पश्याद्य ह्यजेयानि सुरासुरैः ॥ त्रैलोक्ये चाधुना जातं त्वत्कृपातो यशो मुने ॥ ६२ ॥ ॥

मैनाकको धनुष बनाया । पृथ्वी रथ होगई और वेद चारों घोड़े होगये ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी सारथी हुये और सूर्य पताका हुये । चंद्रमा छत्र और गणेशजी आदि पैदल सेना होगये ॥ ६० ॥ फिर नारदजी वेगसे उछलकर त्रिपुरके पास गये । नारदजीको आया हुआ सुनकर उसने वड़े सत्कारसे उनका पूजन किया ॥ ६१ ॥ और कहा हे मुनिराज !

॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा ललाटं कुट्टयन्मुनिः ॥ तूष्णीमासीद्धसित्वैतदवलोक्यासुरोऽब्रवीत् ॥ ६३ ॥ त्रिपुर उवाच ॥ किमर्थं चेदृशी चेष्टा मुने चाद्य कृता त्वया ॥ मद्भाग्यसमभाग्यश्चेदस्ति कश्चिन्निगद्यताम् ॥ ६४ ॥ नारद उवाच ॥ कैलासे तु गतश्चाहं दैत्येंद्र शृणु वैभवम् ॥ महेश्वरस्य किं वाच्यं तल्लक्षांशोपि न त्वयि ॥ ६५ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्तु विदायितः ॥ गृहीत्वा दैत्यसंघान्सै कलासं त्रिपुरो ययौ ॥ ६६ ॥ तत्र देवैर्महद्युद्धं जातं तत्र दिनत्रयम् ॥ पश्चाद्धरेण निहतस्त्रिपुरश्चैकबाणतः ॥ ६७ ॥

आज मेरे पुरोंको देखो इन्हें देव दानव कोई नहीं जीत सक्ते और हे मुनि! आपकी कृपासे अब तीनों लोकोंमें यश होगया ॥ ६२ ॥ उसके यह वचन सुनकर मुनि अपने माथेको ठोकते हुये हंसकर चुपके होगये यह देखकर असुरने कहा ॥ ६३ ॥ त्रिपुर बोला ॥ हे मुनि! आज तुमने ऐसी चेष्टा क्यों बनाई। मेरे भाग्यके समान भाग्यवाला कोई होतो बताओ ॥ ६४ ॥ नारदजी बोले ॥ हे दैत्येन्द्र! मैं कैलासपर गया था सो शिवजीका वैभव सुन क्या कहना है उसमे लाखवां अंश भी तुझमें नही है ॥ ६५ ॥ नारदजीका यह वचन सुनकर उसने उन्हें तो विदा किया और दैत्योंके समूहको लेकर त्रिपुर कैलासको गया ॥ ६६ ॥ वहां देवताओंके साथ तीन दिनतक बड़ा भारी युद्ध हुआ फिर शिवजीने एक बाणसे त्रिपुरको ॥ ६७ ॥

कार्तिकी पूर्णिमाके दिन मारदिया और सब देवता प्रसन्न होगये । उसदिन सब देवताओंने शिवजीके अर्थ दीपदान किया ॥ ६८ ॥ इसलिये शिवजीके प्रसन्नार्थ अवश्य सातसो बीस वत्तियोंके दीपक जलावै ॥ ६९ ॥ पूर्णिमाके दिन दीपक चढ़ानेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है । और पूर्णिमाकी संध्याको त्रिपुरोत्सव करना चाहिये ॥ ७० ॥ और देवमंदिरमें इसमंत्रसे दिये चढ़ावै "कीट पतंग मच्छर और वृक्ष और जो जीव जल और स्थलमें विचरते हैं दीपकको

कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु सर्वे देवाः प्रतुष्टुवुः ॥ तस्मिन्दिने सर्वदेवैर्दीपा दत्ता हराय च ॥६८॥ सर्वथैव प्रदेयाश्च दीपास्तु हरतुष्टये ॥ विंशतिः सप्तशतकाः सहिता दीपवर्तयः ॥ ६९ ॥ ददद्दीपं पूर्णिमायां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ पौर्णिमायां तु संध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः ॥ ७० ॥ दद्यादनेन मंत्रेण प्रदीपांश्च सुरालये॥कीटाः पतंगा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरंति जीवाः॥ दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवंति नित्यं श्वपचा हि विप्राः७१॥कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् ॥ शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् ॥ कार्यस्तस्मात्पौर्णमास्यां त्रिपुराय महोत्सवः ॥७२॥इति श्रीसनत्कुमारसं० कार्तिकमाहात्म्ये त्रिपुरोत्सवदीपविधिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३।

देख पुनर्जन्मके भागी न हों और सदा श्वपच ब्राह्मणहों ॥७१॥" कार्तिकी पूर्णिमाके दिन वृषोत्सर्ग करके रात्रि वितावै वह शिवपदको पाता है और यह शिवजीका व्रत कहा है इसलिये पूनोंके दिन त्रिपुरके अर्थ महोत्सव करना चाहिये ॥७२॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये त्रिपुरोत्सवदीपविधिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ वालखिल्या बोले ॥ अब कार्तिकमें व्रत करनेवालेका अच्छे प्रकारसे उद्यापन कहते हैं क्योंकि उद्यापन करनेसे निश्चय करके व्रत सफल होता है ॥ १ ॥ कार्तिकशुक्ला चौदसके दिन व्रती मनुष्य उद्यापन करै । और तुलसीके ऊपर सुन्दर मंडप बनावै ॥ २ ॥ और तुलसीके नीचे सर्वतोभद्र बनावै । उन्नीस लंबी और उन्नीस तिरछी रेखा खेंचे यों ३२४ कोष्टकका चक्र होगा ॥ ३ ॥ चारों कोणके तीन २ कोष्टकोंको खंडेन्दु कहते हैं और खंडेन्दुके सामनेके सीधे

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनमथोच्यते ॥ कृते उद्यापने सांगं व्रतं भवति निश्चितम् ॥ १ ॥ ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मंडपिकां शुभाम् ॥ २ ॥ तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च ॥ तिर्यगूर्ध्वं कृता रेखा ऊनविंशतिसंख्यकाः ॥ ३ ॥ खंडेंदुस्त्रिपदं कोणे शृंखलापंचभिः पदैः ॥ एकादशपदावल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः ॥ ४ ॥ चतुर्विंशत्पदावापी परिधिर्विंशतिः स्मृतः ॥ मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम् ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

पांच कोष्टकोंको शृंखला कहते हैं और शृंखलाकी दोनो बगलीमें ग्यारह २ कोष्टकोंका नाम वल्ली है और उससे आगे नौ कोष्टकोंका नाम भद्र है ॥ ४ ॥ फिर २४ कोष्टकोंका नाम वापी है फिर २० कोष्टकोंका नाम परिधि है फिर मध्यमें सोलह कोष्टकोंका अष्टदल कमल होता है ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

खंडेंदवो वेदसंख्या वाप्योपि श्वेतवर्णकाः ॥ चतस्रः शृंखला श्यामारक्तं भद्राष्टकं स्मृतम्॥६॥
वल्यष्टकं नीलरूपं पीतस्तु परिधिर्भवेत् ॥ कमलं पंचरंगं तु यथाशोभं बुधो लिखेत् ॥ ७ ॥
तस्योपरिष्टात्कलशं पंचरत्नसमन्वितम् ॥ पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ ८ ॥ रात्रौ
जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमंगलैः ॥ ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥ ९ ॥
त्रिंशन्मितान् तदर्द्धं वा शक्त्यैकं वा निमंत्रयेत् ॥ अतो देवा इतिद्वाभ्यां होमयेत्तिलपायसम्॥१०॥
ततो वै कपिलां दद्यात्पूजयेद्विधिवद्गुरुम् ॥ परात्र पौर्णमास्यां तु यात्रा स्यात्पुष्करस्य तु ॥ ११ ॥

चार खंडेदव और वापी इनको श्वेतवर्ण करै चारों शृंखलाओंको श्याम करै और आठ भद्रोंको लाल करै ॥ ६ ॥
आठो वल्लियोंको नीली बनावै और परिधिको पीली बनावै । और कमलको पंचरंगा बनावै अथवा जैसा शोभा दे
वैसा पण्डितको बना देना चाहिये ॥ ७ ॥ उसके ऊपर पंचरत्न सहित कलश स्थापन करै वहा गुरुकी आज्ञासे सुव-
र्णके भगवान्का पूजन करै ॥ ८ ॥ और गीतबाजे आदि मंगलाचारोंसे रात्रिको जागरण करै । फिर पूनोके दिन
स्त्रीसहित उत्तम ब्राह्मण ॥ ९ ॥ तीसहो वा पंद्रह वा शक्तिपूर्वक एककोही निमंत्रण करै । फिर "अतोदेवा और
इदं विष्णुः" इनदोनों मंत्रोसे तिल और खीरका हवन करै ॥ १० ॥ फिर कपिला गऊका दान करै और विधि-
पूर्वक गुरुकी पूजा करै और इसी उदयात पौर्णमासीको पुष्करकी यात्रा होती है ॥ ११ ॥

इसप्रकार उद्यापन करके मनुष्य व्रतका पूर्ण फल पाता है। ऐसा वर देकर भगवान् मत्स्यरूप होगये ॥ १२ ॥ सो उस कार्तिककी पौर्णमासीके दिन दान हवन और जप करनेसे मनुष्य अक्षय फल पाता है और उसदिन सदा विष्णु भगवान्की आरती करे ॥ १३ ॥ और हे राजा ! आरती प्रदोपसमय करनेसे मनुष्य दारिद्र्यको नहीं पाता। और कार्तिकी पूनोंको कृत्तिका योगमें जो भगवान्का दर्शन करता है ॥ १४ ॥ वह ब्राह्मण सात जन्मतक धनवान् और

एवमुद्यापनं कृत्वा सम्यग्व्रतफलं लभेत् ॥ वरान्दत्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूप्यभवत्ततः ॥ १२ ॥
तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं लभेत् ॥ कार्तिक्यां पौर्णिमायां तु विष्णुं नीराजयेत्सदा ॥१३॥
प्रदोपसमये राजन्न दारिद्र्यमवाप्नुयात् ॥ कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम्॥१४॥
सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥ एतानि कार्तिके मासि नरः कुर्याद्व्रतानि तु ॥ १५ ॥
इह लोके शरीरं स क्लेशयित्वा फलं लभेत् ॥ न कार्तिकसमो मासो विष्णुसंतोपकारकः ॥ १६ ॥
स्वल्पक्लेशैर्विष्णुलोकप्रापको नापरो भवेत् ॥ इत्थं तैर्नैमिपारण्ये वालखिल्यैरुदाहृतम् ॥ १७॥

वेदमें पारंगत होता है और जो मनुष्य कार्तिक मासमें इन व्रतोंको करता है ॥ १५ ॥ वह इस लोकमे शरीरको क्लेशित करके अगले जन्मफल पाता है । कार्तिकके समान कोई मास विष्णुको संतोपकारक नहीं है ॥ १६ ॥ थोड़ेही क्लेशोंसे मनुष्य विष्णु लोकका भागी होता है ॥ इस प्रकार वालखिल्योंने जो कुछ सूर्यनारायणके मुखसे सुना था

उसे नैमिषारण्यमें शौनकादिक ऋषियोंको सुनाया और फिर उनको प्रणामकर सूर्यकी स्तुति करते हुये सूर्यके निकट चले गये ॥१७॥ १८ ॥ फिर सनत्कुमारजीने आत्रेयस ऋषिसे कहा कि यह सब मैंने कार्तिकके व्रतकी उत्तमता कही कि

भास्करस्य मुखाच्छ्रुत्वा ततस्तानभिवाद्य च ॥ ययौ सूर्यस्य निकटे कुर्वंतो भास्करस्तुतिम् ॥१८॥
इत्येतत्सर्वमाख्यातं कार्तिकस्य व्रतोत्तमम् ॥ यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥१९॥
अतः परं किं वक्ष्यामि ब्रूह्यात्रेयस सत्वरम् ॥ २० ॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये उद्यापनविधिर्नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

जिसके करनेसे मनुष्य सब पापोंसे उसी क्षण निवृत्त होजाता है ॥ १९ ॥ इसके उपरांत हे आत्रेयस ! जो कुछ पूछनेकी इच्छा हो शीघ्र पूछो कि मैं क्या वर्णन करूं ॥ २० ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये उद्यापनविधिर्नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥



॥ आत्रेयस उवाच ॥ अद्भुतोयं त्वया प्रोक्तो महिमा कार्तिकस्य तु ॥ स्वस्य कर्त्तुमसामर्थ्यं कथमेतत्कृतं भवेत् ॥ १ ॥ कुमार उवाच ॥ नास्ति कर्त्तुं स्वसामर्थ्यमुपायात्प्राप्यते फलम् ॥ द्रव्यं दत्त्वा ब्राह्मणाय गृह्णीयात्फलमुत्तमम् ॥ २ ॥ शिष्याद्वा भृत्यवर्गाद्वा स्त्रीभ्यो वाताश्च कारयेत् ॥ तस्मादपि फलं गृह्णन् फलभाग्जायते नरः ॥ ३ ॥ आत्रेयस उवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि प्राप्यंते केनचित्क्वचित् ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतुकं मम वर्तते ॥ ४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि लभंते पातकान्यपि ॥ येनोपायेन तद्वच्मि शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ५ ॥ सुकृतं वा दुष्कृतं वा कृतमेकेन यत्कृते ॥ जायते तस्य तद्राष्ट्रे त्रेतायां तु पुरे भवेत् ॥ ६ ॥

॥ आत्रेयस बोले ॥ तुमने जो कार्तिककी महिमा कही सो बडी अद्भुत है जो आप करनेवालेकी सामर्थ्य न हो तो इसके कियेका कैसे फल हो ॥ १ ॥ कुमार बोले ॥ जो कर्ताको आप करनेकी सामर्थ्य न हो तो उपायसे फल प्राप्त होता है । ब्राह्मणको द्रव्य देकर उत्तम फलको ग्रहण करे ॥ २ ॥ शिष्यसे, भृत्यवर्गसे स्त्रीसे वा अपने संबन्धीसे करवावे । उससे भी फल लेनेसे मनुष्य फलका भागी होता है ॥ ३ ॥ आत्रेयस बोले । कभी विनादिये पुण्य भी किसीको मिल जाते हैं, मैं यह सुनना चाहताहूं क्योंकि मुझे बडा कौतुक है ॥ ४ ॥ सनत्कुमार बोले ॥ विनादिये पुण्य मिलते हैं और पाप भी मिलते हैं और जिस उपायसे मिलते हैं वह कहताहूं मनको एकत्र करके सुनो ॥ ५ ॥ सतयुगमें जो एक

मनुष्य पुण्य वा पाप करता था तो उसका वह राज्यभरमें होता था और त्रेतामें पुरमें होता था ॥ ६ ॥ और द्वाप-
रमें वंशमें और कलियुगमें केवल कर्ताकोही होता है । और बालकपनेमें जो अज्ञानसे कर्म किया गया है उसका
स्वप्नमें फल होता है ॥ ७ ॥ और तरुणावस्थामें अज्ञानसे किया जाता है उसका फल बाल्यावस्थामें होता है ॥ और
जो जान बूझकर कर्म किया है उसका फल जन्मके अंत तक मिलता है ॥ ८ ॥ छः महीने पापीका संग करनेसे मनुष्य

द्वापारे वंशमध्ये तु कलौ कर्तैव केवलम् ॥ अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म बाल्ये स्वप्ने तु तत्फलम् ॥ ७ ॥
अज्ञानाद्यच्च तारुण्ये बाल्ये तस्य फलं भवेत् ॥ ज्ञानपूर्वं कृतं कर्म आजन्मांतं च तत्फलम् ॥ ८ ॥
षण्मासं पापिसंगेन नरः पापी प्रजायते ॥ पापिनां वा धर्मिणां वा संसर्गाद्दशमासिकम् ॥ ९ ॥
भोजनादेकपंक्तौ च विंशांशः पुण्यपापयोः ॥ एकासने द्वयोर्वासात्सहस्रांशेन लिप्यते ॥ १० ॥
यो वै यस्यान्नमश्नाति स भुंक्ते तस्य किल्बिषम् ॥ जपादौ पापिसंसर्गात्षोडशांशो विनश्यति ॥ ११ ॥

पापी होजाता है । और पापी वा धर्मात्माओंके संसर्गसे दश महीनेतक ॥ ९ ॥ एक पंक्तिमें भोजन करनेसे पुण्य
पापका वीसवें अंशका भागी होता है । और एक आसनपर दोनोंके वास करनेसे हजार भाग पाप लगता है ॥ १० ॥
जो जिसका अन्न खाता है वह उसके पातकको ग्रहण करता है । और जपकी आदिमें पापीका संसर्ग करनेसे
अपने पुण्यका १६ वां भाग नष्ट होजाता है ॥ ११ ॥

दूसरेकी स्तुति करनेसे, मेलकर लेनेसे तथा एक पात्रमें भोजन करनेसे, एक शय्यापर सोनेसे पुण्य-पापके छटवें भागका अधिकारी होता है ॥ १२ ॥ पुरुष अपनी स्त्रीके सब पुण्य पापका भागी होता है और औरस पुत्रके आधे पुण्य पापका और शिष्यके चौथाई पुण्य पापका भागी होता है ॥ १३ ॥ और पतिव्रता स्त्री अपने पतिके आधे पुण्यकी भागिनी होती है ॥ और जो जिसके हाथसे पका हुआ भोजन करता है उसके पापके दशांशका भागी होता

परस्य स्तवनाद्यौनादेकपात्रस्थभोजनात् ॥ एकशय्याप्रवरणात्षष्ठांशः पुण्यपापयोः ॥ १२ ॥
पुरुषो हरते सर्वं भार्याया औरसस्य च ॥ अर्द्धं शिष्याच्चतुर्थांशं पापं पुण्यं तथैव च ॥ १३ ॥
भर्तुराज्ञाकरी नारी भर्तुरर्द्धं वृषं हरेत् ॥ यद्धस्तपक्वं भुंजीयाद्दशांशं तदघं हरेत् ॥ १४ ॥
वर्षाशनं तु यो दत्ते तदर्धाघस्य भागयम् ॥ वर्षाशनार्द्धं पुण्यं तु भुंक्ते वर्षाशनी नरः ॥१५॥
पुरोहितस्य षष्ठांशं पापं वा पुण्यमेव वा ॥ यजमानो भुनक्त्येव तद्दशांशं पुरोहितः ॥ १६ ॥
उद्योगी चानुमंता च यश्चोपकरणप्रदः ॥ षष्ठांशं पुण्यपापानामुपद्रष्टा दशांशकम् ॥ १७ ॥

है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य किसीको वर्षभरके लिये भोजन देता है तो लेनेवाला उसके आधे पापका भागी होता है। और वर्षभरका भोजन देनेवाला मनुष्य लेनेवालेके आधे पुण्यका भागी होता है ॥ १५ ॥ और यजमान पुरोहितके पुण्य पापके छटवें हिस्सेका भागी होता है और पुरोहित यजमानके दशवें अंशका भागी होता है ॥१६॥ जो जिससे आजीविका

करता है जो किसीको संमति देता है और जो किसीका उपकार करता है तो वह उनके पुण्य पापके छटे अंशका भागी होता है और जो किसीके कामका देखनेवाला है वह उसके पुण्य पापके दशांशका भागी होता है ॥ १७ ॥ जो किसीसे काम कराकर उसे सेवक और शिष्यको छोड़कर अन्न खानेको नहीं देता है तो वह उसके पुण्य पापके छटे अंशका भागी होता है ॥ १८ ॥ जो जिससे व्यवहार प्रीति और बातचीत करता है वह उसके दशांश पुण्य पापका भागी

यद्धस्तात्कार्यंते कर्म नान्नमस्मै प्रयच्छति ॥ विनाभृत्यकशिष्याभ्यां षष्ठांशं पुण्यमाहरेत् ॥ १८ ॥
व्यवहारात्तथा प्रीत्या नित्यं संभाषणादिभिः ॥ दशांशपुण्यपापानां लभते नात्र संशयः ॥ १९ ॥
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ वाराणस्यां कर्मदत्तो भरद्धाजकुले भवत् ॥ २० ॥
वेदवेदांगवित्पूज्यो जपध्यानपरायणः ॥ सुशीला नाम तद्भार्या सुशीला तरुणी शुभा ॥ २१ ॥
एकदंतः सुतः सोपि सर्वविद्यामधीतवान् ॥ तारुण्यं स वयः प्राप्य कामाविष्टस्तदाभवत् ॥ २२ ॥

होता है ॥ १९ ॥ इसी विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहते हैं । काशीजीमें भरद्धाज गोत्रमें एक कर्मदत्त नाम ब्राह्मण था ॥ २० ॥ वह वेद वेदांगोंका ज्ञाता और जप ध्यान करनेवाला था । उसकी सुशीला नाम स्त्री बड़ी सुशील युवा और सुन्दर थी ॥ २१ ॥ और उसका पुत्र एकदंत नाम सब विद्याओंका जाननेवाला था । एक समय वह अपनी तरुणअवस्थामें कामातुर हुआ ॥ २२ ॥

उसकी रूपावली नाम स्त्री यद्यपि बड़ी चतुर,सुन्दर और पतिव्रता भी थी तो भी एकदंत उसे छोड़कर कामके वश होगया ॥२३॥ और परस्त्रीके व्यसनसे अपना बहुतसा द्रव्य नाशकर दिया ॥ और उसके पिताको दुःख होगा इस भयसे लोग उससे बुरा भला कुछ नहीं कहते थे ॥ २४ ॥ उसकी माताने उसे बहुत मने किया परंतु उसने अपना काम नहीं छोड़ा । फिर वह जब जातिसे पतित होगया तो उसकी स्त्री और उसके मित्रादिक उसे धिक्कार देने लगे ॥ २५ ॥ परंतु वह रात दिन पर-

तस्य रूपावली भार्या चतुरातीव सुंदरा ॥ पतिव्रतापि तां हित्वा सोपि कामवशं ययौ ॥२३॥
परस्त्री व्यसनात्तेन बहुद्रव्यं विनाशितम् ॥ पितुर्दुःखभयाल्लोका नोचुः किंचिच्छुभाशुभम् ॥२४॥
मात्रा निवारितो भूयो व्यसनं सोत्यजन्न च ॥ ततश्च पतितं भार्या धिक्करोति सुहृज्जनः ॥ २५ ॥
अहोरात्रं वचस्तस्य परस्त्रीव्यसनाय च ॥ परस्त्रीव्यसनासक्त्या वयोनीतमजानता ॥ २६ ॥
बहुभिः शिक्षितं नैव करोति च विमोहितः ॥ ततश्चौर्यं समारब्धं परस्त्रीसुखलब्धये ॥ २७ ॥
ततो लोकैश्च तज्ज्ञातं भीत्या काश्याः पलायितः ॥ एकदंतस्तदा चिंतामुपलेभे क्याम्यहम् ॥२८॥

स्त्री परस्त्रीही चिल्लाता था । और परस्त्रीकी इच्छामेंही उसकी आयु पूरी होगई और जान नहीं पड़ी ॥ २६ ॥ बहुतसे लोगोंने समझाया परंतु उस मूर्खने किसीका कहा न माना और परस्त्रीके सुखके लिये चोरी करना आरंभ किया ॥ २७ ॥ फिर लोगोंने इस बातको जानकर डरके मारे उसे काशीसे भगादिया फिर तो एकदंत चिंता करने लगा

कि अब मैं कहां जाऊं ॥ २८ ॥ फिर वह मार्गको न जाननेवाला धीरे २ जातेमें देवताओंके दर्शन करता हुआ और देश देशांतरोंमें होता हुआ यमुनाके तीरपर आया ॥ २९ ॥ उस समय लोग कार्तिकस्नानके लिये आये। और वहां जो अनेक देशोंसे कार्तिकस्नानके लिये आये थे ॥३०॥ उन सुन्दररूप और अवस्थावाले स्त्रीपुरुषोंको उसने देखा और उनका कौतुक देखता हुआ वहां एक मास रहा ॥ ३१ ॥ पर उनमेंसे किसीने उस दुष्टका चरित्र नहीं जाना। और

मार्गानभिज्ञो गच्छन्स शनैर्देवान्विलोकयन् ॥ देशाद्देशांतरं गच्छन्यमुनातीरमागतः ॥ २९ ॥
स्नानार्थं कार्तिके मासि तदा लोकाः समागमन्॥कार्तिकव्रतिनस्तत्र नानादेशात्समागतान् ॥३०॥
नरान्ददर्श स्त्रीश्चापि सुरूपा वयसान्विताः ॥ स दृष्ट्वा कौतुकं पश्यन्मासमेकमुवास ह ॥ ३१ ॥
न तन्मध्ये कोपि जनश्चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥ संध्याकाले भ्रमंस्तत्र स्त्रीणां दर्शनलालसः ॥ ३२ ॥
ददर्श ब्राह्मणांस्तत्र जपदेवार्चनस्थितान् ॥ कांश्चित्पुराणं पठतः कांश्चित्तच्छ्रवणे रतान् ॥ ३३ ॥
नृत्यतो गायतः कांश्चिद्विष्णुस्तवनतत्परान्॥तुलसीधारिणः कांश्चिद्विष्णुमुद्रांकितान्परान्॥३४॥

वह संध्याकालको वहां स्त्रियोंके देखनेकी इच्छासे घूमने लगा ॥ ३२ ॥ और उसने जप और देवार्चनमें बैठे हुये ब्राह्मणोंको देखा कि जो कितनेही पुराणका पाठ करते थे और कितनेही सुनते थे ॥ ३३ ॥ कोई नाचते थे कोई गाते थे और कोई विष्णुकी स्तुति करते थे। कोई तुलसीकी माला पहिरें थे और कोई विष्णु मुद्रा लगायें थे ॥ ३४ ॥

उनके समाजमें नित्य फिरते हुये उन पुण्यात्मा जनोंके दर्शन स्पर्शन और भाषणसे उसका संपूर्ण पाप नाश होगया ॥ ३५ ॥ फिर उसने पूर्णमासीके दिन ब्राह्मण और गायोंका पूजन दक्षिणा, भोजन और दीपदान आदि देखा ॥ ३६ ॥ और रात्रिमें परस्त्रीकी इच्छासे दीपोत्सवको देखता हुआ आधी रातके समय वह एक क्षत्रीकी स्त्रीको बलसे ॥ ३७ ॥ पकड़कर आलिंगन करने लगा उस समय उसके पतिने देखा तो उस स्त्रीको छोड़कर भागा ॥ ३८ ॥

नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणैः ॥ पुण्यात्मनां जनानां च पापं तस्य क्षयं ययौ ॥ ३५ ॥
पौर्णमास्यां ततोपश्यद्विप्रगोपूजनादिकम् ॥ दक्षिणाभोजनाद्यं च दीपदानादिकं तथा ॥ ३६ ॥
रात्रौ दीपोत्सवं पश्यन् परस्त्रीकामुकः स तु ॥ ततोर्द्धरात्रसमये राजन्यस्य स्त्रियं बलात् ॥३७॥
जग्राह चालिलिंगासौ दृष्टस्तत्पतिना तदा ॥ दृष्टमात्रस्तु तेनाथ तां विहाय पलायितः ॥ ३८ ॥
एकदंतस्य मार्गे च सर्पेङ्घ्रिरपतत्तदा ॥ पृदाकुना ततो दष्टः सद्योमृतिमुपाययौ ॥ ३९ ॥
बहवो मिलितास्तत्र वैष्णवाः पुण्यशालिनः ॥ एकदंतो द्विजः सोयं दष्टः सर्पेण दैवतः ॥ ४० ॥

और मार्गमेंसे एकदंतका पांव सर्पके ऊपर गिरा तो सर्पने उसे काट खाया और वह मरगया ॥ ३९ ॥ वहां वैष्णव पुण्यात्मा बहुतसे ब्राह्मण एकत्र हुये और कहने लगे कि यह वही एकदंत नाम ब्राह्मण है प्रारब्धसे इसे सर्पने काट खाया है ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दैवसे जो बात होनेवाली है उसे कोई रोक नहीं सकता ऐसा कहकर कोई राम राम, कोई शिव शिव और कोई विष्णु २ कहने लगे ॥ ४१ ॥ और वह सब लोग बड़ी करुणा करके ऊंचे शब्दसे भगवान्‌का नाम उसके कानमें सुनाने लगे। और कोई मनुष्य जलमें तुलसी गेरकर बड़े आदरसे उसके मुखमें डालने लगे ॥ ४२ ॥ फिर यमदूतोंने उसे बांधकर अनेक प्रकारसे मारा और जब उसे बांधकर यमके सामने लेगये तब उसे देखकर

किं करिष्यति यद्भावि न तत्केनापि वार्यते ॥ इत्यूचू रामरामेति केचिद्विष्णो शिवेति च ॥४१॥ कर्णे जपंतस्तारेण स्वरेण करुणान्विताः ॥ केचित्तु तुलसीमिश्रं जलं चिक्षिपुरादरात् ॥ ४२ ॥ यमदूतैस्तदा बद्धस्ताडितोनेकधा ततः ॥ यमस्य सन्निधौ नीतस्तं दृष्ट्वा सूर्यनंदनः ॥ ४३ ॥ अब्रवीच्चित्रगुप्तं वै किमस्य दुष्कृतं कृतम् ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ जानतानेन विप्रेण कृतं कर्माशुभं बहु ॥ ४४ ॥ तस्मान्निरयवासाय योग्योयं नास्ति संशयः ॥ चित्रगुप्तवचः श्रुत्वा यमः प्रेतपमब्रवीत् ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥

यमराज ॥ ४३ ॥ चित्रगुप्तसे बोले कि इसने क्या पाप किया है यह सुनकर चित्रगुप्त बोले इस ब्राह्मणने जान बूझकर बहुतसा पाप किया है ॥ ४४ ॥ इसलिये यह नरकवासके योग्य है इसमें संशय नहीं। चित्रगुप्तका यह वाक्य श्रवणकर यमराजने प्रेतपसे कहा ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

यम बोले ॥ हे प्रेतप ! तुम इस ब्राह्मणको नरकमें शीघ्र लेजाओ फिर प्रेतप उस ब्राह्मणको पकड़कर नरकके पास लेगया॥४६॥ इस ब्राह्मणने अनेक भयानक नरकोंको देखकर और भयसे कंपित होकर कहा कि मैने अपना जन्म व्यर्थ खोया॥४७॥ फिर प्रेतपने कहा कि अब क्रमसे नरकोंमें घुस—और जब यह ब्राह्मण न घुसा तब तेलके तपे हुवे कढावमें ॥ ४८ ॥

॥ यम उवाच ॥ प्रेतपैनं द्विजं शीघ्रं नरके विनिपातय ॥ प्रेतपस्तु ततो धृत्वा तं विप्रं नरके नयत् ॥ ४६ ॥ नानाभयानकान् दृष्ट्वा नरकांस्तेन वै तदा ॥ भयकंपित आहेदं वृथा जन्मविनाशितम् ॥ ४७ ॥ प्रेतपेन ततश्चोक्तं नरकान् क्रमशो विश ॥ यदासौ नाविशत्तत्र तैलतप्ते कटाहके ॥ ४८ ॥ कुंभीपाकाभिधे क्षिप्तः प्रेतपेन हठात्तदा ॥ प्रक्षिप्तोपि द्विजो नासौ वेदनामापकामपि ॥ दृष्ट्वाश्चर्यं यमायोक्तं प्रेतपेन कुतूहलात् ॥ ४९ ॥ कुंभीपाके परिक्षिप्तः सुखमास्ते यथा ह्रदे ॥ जलस्य घर्मतप्तो हि तथायमभवद्द्विजः ॥ ५० ॥ तच्छ्रुत्वा धर्मराजोपि किमिदं कस्य कर्मणः ॥ फलं विचारयेद्यावत्तावत्तत्र समागतः ॥ ५१ ॥ ॥

जिसे कुंभीपाक कहते हैं प्रेतपने हठसे उसे उसमें डालदिया पर गेरनेसे भी इस ब्राह्मणको कोई पीड़ा नहीं हुई । प्रेतपने यह आश्चर्य देख कौतुकसे यमराजको जता दिया ॥ ४९ ॥ यह ब्राह्मण कुंभीपाकमें डालनेसे ऐसा सुखी हुआ कि जैसे गर्मीसे तपा हुआ मनुष्य जलके तालावमें गिरनेसे सुख पाता है ॥ ५० ॥ इसे सुन यमराजने विचारा कि यह न जाने

कौनसे कर्मका फल है यह विचार करही रहेथे कि तबतक नारदजी आगये ॥ ५१ ॥ सब वृत्तान्तको जाननेवाले नारदजी यमसे आदरसहित बोले । नारदजी बोले । इस एकदंत नाम ब्राह्मणको स्वर्गमें लेजाओ यह यातना भोगने योग्य नहीं है ॥ ५२ ॥ इसने कार्तिकमासमें स्नानके लिये यमुनाजीपर आये हुये सज्जन और महात्माओंके साथ सब मास बिताया है ॥ ५३ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे इसका सब पाप नाश होगया है इसलिये नरकोंको दिखाकर इसे

नारदः सर्वदर्शी च यमं प्रोवाच सादरम् ॥ नारद उवाच ॥ एकदंतः समानेयो नायमर्हति यातनाम् ॥ ५२ ॥ अनेन किल कालिंद्यामूर्जे मासि समागतैः ॥ स्नानार्थं सज्जनैः सार्धं मासः सर्वोतिवाहितः ॥ ५३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेन क्षीणं पातकमस्य वै ॥ अतः प्रदर्श्य नरकान्नेयोसौ स्वर्गमेव हि ॥ ५४ ॥ ततो नारदवाक्येन दर्शयित्वा द्विजस्य तु ॥ नरकान्बहुदुःखाढ्यानेकाशीति प्रभेदकान् ॥ ५५ ॥ ततो नीतः स्वर्गमसौ पुण्यभोगाय देववत् ॥ अतः संसर्गजं पुण्यं पापं वापि भवेद्ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

स्वर्गमें लेजाओ ॥ ५४ ॥ इसके पीछे नारदजीके वचनसे उस ब्राह्मणको अनेक दुःखोंको देनेवाले ८१ प्रकारके नरकोंको दिखाकर ॥ ५५ ॥ उसे देवताके समान पुण्य भोगनेके लिये स्वर्गमें लेगये । इससे स्पष्ट है कि संसर्गसे पाप पुण्य अवश्य होता है ॥ ५६ ॥

इसलिये बुद्धिमान्को सज्जनोंकी संगतिके लिये यत्न करना चाहिये क्योंकि दुष्टोंकी संगतिसे कमाया हुआ पुण्य

तस्मात्सतां संगतये यतितव्यं सुधीमता ॥ असत्संगाद्यतः पुण्यमार्जितं च विनश्यति ॥ ५७ ॥
इतिहासमिमं श्रुत्वा शुभं प्राप्नोति मानवः॥ एष सत्संगमहिमा उक्तोन्यत्किंविवक्षितम् ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

भी नाश होजाता है ॥ ५७ ॥ इस इतिहासके सुननेसे मनुष्य कल्याणको पाता है । सनत्कुमार कहते हैं कि हे आत्रेय ! मैंने यह सत्संगकी महिमा तुमसे कही है अब अधिक क्या सुननेकी इच्छा है सो कहिये ॥ ५८ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥



॥ आत्रेय बोले ॥ कार्तिकमासका ऐसा व्रत है कि जिसमे थोड़ा तो क्लेश है और फल भारी मिलता है । हे महाराज !
सनत्कुमारजी ! तिसपर भी कोई २ मनुष्य इसे क्यों नहीं करते हैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले । ब्रह्माजीने अपनी सृष्टि
वढ़ानेके लिये धर्म तथा अधर्मको बनाया है । धर्मको करनेवाले अच्छी गतिको पाते हैं॥ २ ॥ और अधर्मको करनेवाले

॥ आत्रेय उवाच ॥ ईदृशं कार्तिकव्रतमल्पायासं महत्फलम् ॥ न कुर्वंति जनाः केचित्कि-
मर्थं मुनिसत्तम ॥ १ ॥ कुमार उवाच ॥ स्वसृष्टिवृद्धये वेधा धर्माधर्मौ ससर्ज ह ॥ धर्ममेवा-
नुतिष्ठंतः प्राप्नुवंति शुभांगतिम् ॥ २ ॥ अधर्ममनुतिष्ठंतो यांति तेऽधोगतिं नराः ॥ पुण्यकर्म-
फलं नाको नरकस्तद्विपर्ययः ॥ ३ ॥ तयोः पालनकर्तारौ द्वावेव विधिना कृतौ ॥ शतक्रतु-
यमौ तौ च पुण्यपापनुसारिणौ ॥ ४ ॥ गुरुतल्पादयः पुत्राः कामस्य प्रथिता भुवि ॥ क्रोधस्य
पितृघाताद्या लोभस्य तनयां शृणु ॥ ५ ॥ ब्रह्मस्वहरणाद्याश्च एते नरकनायकाः ॥ कृता
यमेन तैर्व्याप्ता मनुजा नहि कुर्वते ॥ ६ ॥

अधोगतिको पाते हैं । पुण्यका फल स्वर्ग और पापका फल नरक है ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीने उन पाप पुण्यके पालन करनेवाले
तो दोही वनाये हैं एकतो यम और दूसरा इन्द्र और ये ही पुण्य और पापके स्वामी हैं ॥ ४ ॥ पृथ्वीपर कामदेवके पुत्र
तो गुरुतल्प आदि प्रसिद्ध हैं और क्रोधके पितृघात आदि, और अब लोभके पुत्रोंको सुनो ॥ ५ ॥ उनका नाम है ब्रह्मस्वह-

रण अर्थात् ब्राह्मणोंका धन हरनेवाले और ये नरकके नायक हैं और यमराजने मनुष्योंको कामादिकोंसे लिप्तकर दिया है इसकारण व्रत आदि धर्मके कृत्योंको वे नही करते ॥ ६ ॥ और जिनमे काम आदि नहीं है वे करते हैं ॥ ७ ॥ और इस पृथ्वीपर जिनकी श्रद्धा और बुद्धि सदा भ्रष्ट रहती हैं उन्होंसे घिरे हुए मनुष्य श्रीविष्णुभगवान्‌की कथा वार्ता आदि श्रवण नहीं करते ॥ ८ ॥ और वे दुष्टबुद्धि मनुष्य घोर नरकमे जाते हैं। आत्रेयजी बोले ॥ गरीब

व्रतादिधर्मकृत्यं यत्तैर्मुक्तास्ते हि कुर्वते ॥ ७ ॥ श्रद्धामेधाविघातिन्यौ वर्तेते भुवि सर्वदा ॥ ताभ्यां व्याप्तास्तुमनुजाः श्रीविष्णोः श्रवणादिकम् ॥ ८ ॥ न कुर्वते सुदुर्मेधा येनांधं याति वै तमः ॥ आत्रेय उवाच ॥ ऊर्जे व्रतोद्यापनादावशक्तः सिद्धिभाक्कथम् ॥ ९ ॥ कथं विमुच्यते जंतुर्दुःखसंसारसागरात् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान् ॥ १० ॥ संपूर्णमथवाध्यायमेकश्लोकमथापि वा ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ११ ॥ मुहूर्तं वापि शृणुयात्कथां पुण्यां दिने दिने ॥ यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तः स्यात्तु मानवः ॥१२॥

मनुष्य कार्तिकमासके व्रतोंके उद्यापन आदि करके कैसे फल पासक्ता है ॥ ९ ॥ और इस संसारके दुःखसागरसे कैसे छूट सक्ता है। सनत्कुमार बोले ॥ मनुष्य शुद्ध होकर नियमसे कार्तिकमाहात्म्यको सुने ॥ १० ॥ संपूर्ण अथवा एक अध्याय अथवा एक श्लोकको सुनकर पीछेसे अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराके उन्हें दक्षिणादे॥ ११ ॥सब कामोंको छोड़

कर मनुष्यको नित्य दोघड़ी तो अवश्य भगवान्‌की कथा सुननी चाहिये—जो मनुष्य ॥१२॥ नित्य सुननेमें समर्थ न हो तो पुण्य मासमें अथवा पुण्य तिथिमें तोभी सुने उसके पुण्यके प्रभावसे मनुष्य सब पातकोंसे छूट जाता है ॥ १३ ॥ पुराणका जाननेवाला शुद्ध, चतुर, शांत ईर्ष्यासे रहित दूसरोंका उपकारी, दयालु, मधुरभाषी ऐसा बुद्धिमान् पवित्र कथाको कहै ॥ १४ ॥ जबतक पुराण कहनेवाला व्यासजीके आसनपर स्थित हो तबसे कथाके समाप्त होनेतक वह

पुण्यमासेथवा पुण्यतिथौ संश्रृणुयादपि ॥ तेन पुण्यप्रभावेन पापान्मुक्तोभवेन्नरः ॥ १३ ॥ पुराणज्ञः शुचिर्दक्षः शांतो विगतमत्सरः ॥ साधुः कारुणिको वाग्मी वदेत्पुण्यां कथां सुधीः ॥१४॥ व्यासासनं समारूढो यदा पौराणिको भवेत् ॥ आसमाप्तेः प्रसंगस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥१५॥ न दुर्जनसमाकीर्णमशूद्रश्वापदावृते ॥ देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ १६ ॥ श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥ वाग्यताः शुचयो दक्षाः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥१७॥ अभक्ता ये कथां पुण्यां श्रृण्वंति मनुजाधमाः॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि॥१८॥

किसीको नमस्कार नहीं करै ॥ १५ ॥ पण्डितको चाहिये कि शूद्र चांडाल आदि दुष्ट जिस स्थानमें एकत्र हों वा जहां जुआ होता हो उस जगह कथा न वांचे ॥ १६ ॥ जो श्रद्धा भक्तिसे युक्त हैं, जो दूसरे काममें चित्त नहीं लगाते, जो थोड़ा बोलते हैं, और जो शुद्ध और चतुर हैं ऐसे श्रोताजन इस कथाके पुण्यके भागी होते हैं ॥१७॥ जिनको ईश्वरकी भक्ति

नहीं है ऐसे नीच मनुष्य जो कथा सुनते हैं उनको पुण्यका फल नहीं होता और उनको जन्म २ मे दुःख भोगना पड़ता है ॥ १८ ॥ जो सुन्दर गंध वस्त्र आदिसे पौराणिकको पूजनकर कथा सुनते हैं वे दरिद्री और पापी नहीं होते है ॥१९॥ जो मनुष्य होती हुई कथाको छोड़कर अन्यत्र चला जाय तो जन्म जन्मान्तरमे उसकी स्त्री और संपत्तिका नाश होजाता है ॥ २० ॥ जो मनुष्य वक्तासे ऊंचे स्थानपर बैठे वा नमस्कार न करै अथवा कथामें सोवै तो वह जंगलमे

पौराणिकं च संपूज्य गंधवस्त्रादिभिः शुभैः ॥ शृण्वंति च कथां भक्त्या न दरिद्रा न पापिनः॥१९॥
कथायां कीर्त्यमानायां यो गच्छत्यन्यतो नरः ॥ भोगांतरे प्रणश्यंति तस्य दाराश्च संपदः ॥ २० ॥
उच्चासनसमारूढो न नरः प्रणतो भवेत् ॥ विषवृक्षस्तथास्वापे वने चाजगरो भवेत् ॥ २१ ॥
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वंति ये नराः ॥ कोट्यब्दनरकान्भुक्त्वा भवंति ग्रामसूकराः॥२२॥
ये श्रावयंति मनुजाः कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठंति ब्रह्मणः पदे ॥ २३ ॥
आसनार्थं प्रयच्छंति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥ कंबलाजिनवासांसि मंचं फलकमेव वा ॥ २४ ॥

विपका पेड़ तथा सांप होता है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य कथा होते में विघ्न करते हैं वे कोटि वर्ष नरकोंको भोगकर पीछे गांग के शूकर होते है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य पुराणकी सुन्दर कथा दूसरोंको सुनाते है वे सौ करोड़ कल्पतक ब्रह्मपद पाते हैं ॥ २३ ॥ जो मनुष्य पुराण जाननेवालेके आसनके लिये कंवल, मृगचर्म, वस्त्र, चौकी वा तखत देते हैं ॥२४॥

और जो मनुष्य पहिरनेके वस्त्र देते है और जो आभूषण देते हैं वे ब्रह्मलोकमे वास करते है ॥ २५ ॥ पुराण वांचने-वालेको संतोष होनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं इसलिये मनुष्यको चाहिये कि भक्ति श्रद्धासे वक्ताका संतोष करै॥२६॥ ऐसे मनुष्यकोही पुण्यका पूरा फल मिलता है इसमें संदेह नहीं है। जो फल सब यज्ञोंके करनेसे तथा सब दानोंके देनेसे होता है ॥ २७ ॥ उसी फलको मनुष्य एक वार पुराण सुननेसे पाता है। कलियुगमें विशेष करके पुराण श्रवणके

परिधानीयवस्त्राणि प्रयच्छंति च ये नराः ॥ भूषणादि च यच्छंति वसेयुर्ब्रह्मसद्मनि ॥ २५ ॥ वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ अतः संतोषयेद्भक्त्या भक्तिश्रद्धान्वितःपुमान् ॥२६॥ तस्य पुण्यफलं पूर्णं भवत्येव न संशयः ॥ यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ २७ ॥ सकृत्पु-राणश्रवणात्तत्फलं विंदते नरः ॥ कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ॥ २८ ॥ नास्ति धर्मः परः पुंसां नास्ति मुक्तिपथः परः ॥ पुराणश्रवणाद्विष्णोर्नास्ति संकीर्तनात्परम् ॥ २९ ॥ य एतदूर्जमाहात्म्यं शृणुयाच्छ्रावयेदपि ॥ स तीर्थराजबदरीगमनस्य फलं लभेत् ॥ ३० ॥

सिवाय ॥ २८ ॥ मनुष्योंके लिये दूसरा धर्म और मुक्तिका मार्ग नही है। पुराणका श्रवण और विष्णुका स्मरण इन दोनों वातोंको छोड़ संसारमें और कोई उत्तम वस्तु, नहीं है ॥ २९ ॥ जो कोई मनुष्य इस कार्तिकमाहात्म्यकी कथाको सुने और दूसरोंको सुनावै वह प्रयाग और वदरिकाश्रम जानेका फल पाता है ॥ ३० ॥ ॥ ॥

उसमय रात्रिमें लक्ष्मी संसारका कौतुक देखने आती है और वह लक्ष्मी जहांजहां दीपकोंको देखती है ॥ २७ ॥ वहां २ प्रीति करती है अंधेरेमें कभी वास नहीं करती । इसलिये कार्तिकमासमें सदा दीपक रखना चाहिये ॥ २८ ॥ लक्ष्मी चाहनेवालोंको विशेपकर दीपदान कहा गया है सो देवमंदिर, नदीके तीर, राजमार्ग, और विशेप करके ॥ २९ ॥ निद्राकी जगह जो दीपक बलाता है लक्ष्मी सदा उसके सामने रहती है । गरीबके दीपकशून्य घरको देखकर जो दिया

रात्रौ लक्ष्मीः समायाति द्रष्टुं भुवनकौतुकं ॥ यत्र यत्र च दीपान्सा पश्यत्यब्धिसमुद्भवा ॥२७॥
तत्र तत्र रतिं कुर्यान्नान्धकारे कदाचन ॥ तस्माद्दीपः स्थापनीयः कार्तिके मासि वै सदा ॥२८॥
लक्ष्मीरूपार्थिनां प्रोक्तं दीपदानं विशेपतः ॥ देवालये नदीतीरे राजमार्गे विशेपतः ॥ २९ ॥
निद्रास्थले दीपदाता तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ दुर्बलस्यालयं वीक्ष्य दीपशून्यं तु यो ददेत् ॥३०॥
विप्रस्य वान्यवर्णस्य विष्णुलोके महीयते ॥ कीटकंटकसंकीर्णे दुर्गमे विपमस्थले ॥ ३१ ॥
कुर्याद्यो दीपदानानि नरकं स न गच्छति ॥ एवं संकीर्त्तनं कृत्वा नाडीद्वयनिशामुखे ॥३२॥

देता है ॥ ३० ॥ वा ब्राह्मण वा अन्य वर्णके घर दिया जलाता है वह विष्णुलोकमें सुख भोगता है । कीडे कांटोसे भरे हुये और जहां कोई न जाताहो ऐसे ऊंचे नीचे स्थलमें ॥ ३१ ॥ जो दीप दान करता है वह नरकमें नहीं जाता है । इसप्रकार संकीर्तन करके दोघड़ी रात रहे ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥

जलके पास आकर देश काल आदि संकल्प बोलै । गंगा आदि नदियोंका और विष्णु, शिव आदि देवताओंका स्मरण करै ॥ ३३ ॥ और कमरतक जलमें खड़ा होकर इस मंत्रका उच्चारण करै कि "हे जनार्दन ! कार्तिकमें मैं प्रातःस्नान करूंगा ॥ ३४ ॥ और हे देवेश ! हे कृष्ण ! हे दामोदर हे पापनाशक ! लक्ष्मीसहित तुह्मारे प्रीत्यर्थ इस नित्य नैमि-

आगत्य तोयनिकटे देशकालादि चोच्चरेत् ॥ स्मरेद्गंगादिका नद्यो विष्णुशर्वादिदेवताः ॥ ३३ ॥ नाभिमात्रे जले स्थित्वा मंत्रमेतमुदीरयेत् ॥ कार्तिकेहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ॥३४॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशन ॥ ३५ ॥ गृहणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती ॥ गंगा च यमुना चैव पंचनद्यः पुनंतु मां ॥ ३६ ॥ एतान्मंत्रान्समुच्चार्य मलस्नानं समाचरेत् ॥ ततस्तु पावमानीभिरभिषिंचेत्स्वमस्तकम् ॥ ३७ ॥ अघमर्षणकं कृत्वा वासः परिदधेत्ततः ॥ जाह्नवीस्मरणं कुर्यात्सर्वतीर्थेषु मानवः ॥ ३८ ॥ ॥ ॥ ॥

त्तिक कार्य युक्त कार्तिकमें ॥ ३५ ॥ हे विष्णुभगवन् ! तुम राधासहित मेरे दिये हुये अर्घको ग्रहण करो । और किरणा, धूतपापा, पवित्र जलवाली सरस्वती, गंगा और यमुना ये पाच नदियां मुझे पवित्र करैं ॥ ३६ ॥ इन मंत्रोंको उच्चारण करके मल २ के स्नान करै । फिर उन पवित्र नदियोंसे अपने मस्तकपर अभिषेचन करै ॥३७॥ फिर अघमर्षण

करके वस्त्र धारण करै। मनुष्य सब तीर्थोंमें गंगाका स्मरण करै ॥ ३८ ॥ और गंगामें और तीर्थका स्मरण कभी न करै। स्नानांग और तर्पण करके बाहर आकर वस्त्र निचोड़ै ॥ ३९ ॥ शरीरके मलोंसे जो मैंने जलको अपवित्र किया है उसके दोष दूर करनेके लिये मैं कमलके पुष्पोंका तर्पण करताहूं ॥ ४० ॥ वस्त्रको निचोड़कर फिर तिलक लगावै। फिर

नान्यत्तीर्थं तु जाह्नव्यां स्मरणीयं कदाचन ॥ स्नानांगतर्पणं कृत्वा चांचलं पीडयेद्बहिः ॥ ३९ ॥
यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलसंचयैः ॥ तद्दोषपरिहारार्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम् ॥ ४० ॥
वस्त्रनिष्पीडनं कृत्वा कुर्याच्च तिलकं ततः ॥ ततः संध्यामुपासीत स्वसूत्रोक्तेन वर्त्मना ॥ ४१ ॥
ततः कार्यो जपो देव्या यावदर्कोदयो भवेत् ॥ एतत्प्रोक्तं रात्रिशेषकृत्यं दैनमथोच्यते ॥ ४२ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अपने सूत्रसे कही हुई रीतिसे संध्या करै ॥ ४१ ॥ फिर जबतक सूर्योदय हो तबतक देवीका जप करै। यह रात्रिशेषका कृत्य कहा है अब दिनका कहा जाता है ॥ ४२ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ वालखिल्या बोले । हे मुनीश्वरो ! कार्तिकमासमे जो दिनका कृत्य है उसे सुनो । जिसके करनेसे यह सब कार्तिक सफल होय ॥ १ ॥ प्रातःसंध्याके अंतमें पहिले विष्णुसहस्र नामका पाठ करै फिर देव मंदिरमें आकर पूजाका आरंभ करै ॥ २ ॥ नृत्य और गान आदि कार्योंमें एक प्रहर दिन वितावै फिर आधे प्रहर अच्छी भांति पुराण सुनैं ॥ ३ ॥

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिके दिनकृत्यं यत्तच्छृण्वंतु मुनीश्वराः ॥ यस्मिन्कृते कार्तिकोयं सकलं सफलो भवेत् ॥ १ ॥ विष्णोः सहस्रनामाद्यं संध्यांते च पठेत्ततः ॥ देवालये समागत्य पुनः पूजनमारभेत् ॥ २ ॥ नृत्यगानादिकार्येषु प्रहरं दिवसं नयेत् ॥ ततः पुराणश्रवणं यामार्धं सम्यगाचरेत् ॥ ३ ॥ पौराणिकस्य पूजां च तुलसीपूजनं तथा ॥ कृत्वा माध्याह्निकं कर्म भुंजीत द्विदलोज्झितम् ॥ ४ ॥ बलिदानं वैश्वदेवमतिथीनां समर्पणम् ॥ कृत्वा भुंक्ते तु यो मर्त्यः केवलं चामृतं हि तत् ॥५॥ यथाशक्तिद्विजा भोज्याः प्रत्यहं वाथपर्वणि ॥ हविष्यभोजनं कुर्याद्धविष्यमथ चोच्यते ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

फिर पुराण सुनानेवालेकी और तुलसीकी पूजा करके, फिर मध्यान्हका कर्म करके दालको छोड़कर भोजन करै ॥ ४ ॥ वलिदान वैश्वदेव और अतिथियोंको समर्पण करके जो मनुष्य भोजन करता है वह केवल अमृत है ॥ ५ ॥ यथाशक्ति ब्राह्मणोंको नित्य वा पर्वके दिन भोजन करावै । और हविष्य भोजन करै ॥ अब हविष्य कहते है ॥ ६ ॥ ॥

हेमंतऋतुमें उत्पन्न हुआ स्वेत और कृष्ण धान्य मूंग, जव, तिल । नागरमोथा, कंगनी, सामा वथुआ, हिलसाका शाक यह हविष्यान्न है ॥ ७ ॥ और साठीके चावल नरईका शाक मूली और पान इनको छोड़दे । और कंद, सेंधानोन, समुद्रफेन, गौका दही और घी ॥ ८ ॥ और विना घी निकाला दूध, कटहर, आम, हड्ड । पीपल, जीरा, नारंगी, इमली

हैमंतिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः ॥ कलापकंगुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ॥७॥
षष्टिकाः कालशाकं च मूलकं क्रमुकेतरम् ॥ कंदः सैंधवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥ ८ ॥
पयोनुद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकी ॥ पिप्पली जीरकं चैव नारिंगं चैव तिंतिणी ॥ ९ ॥
कदलीलवलीधात्रीफलानि गुडमैक्षवम् ॥ अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते ॥ १० ॥
सर्वथैव न भोक्तव्यमामिषान्नं तु कार्तिके ॥ तत्सर्वदा वर्जनीयं कार्तिके तु विशेषतः ॥ ११ ॥
दग्धमन्नं द्विपक्वं च मसूरान्नं सवल्कलम् ॥ उद्दालकाः पर्युषितमन्नमामिषमुच्यते ॥ १२ ॥
वृंताकानि पटोलानि तुंबिका च कलिंगकम् ॥ विंबीफलानि त्रपुसं फलं शाकेषु चामिषम् ॥१३॥

॥ ९ ॥ केला, सुगंध मूली, आंवला, गन्नेका गुड़, और विना तेलकी वस्तु इसको मुनि हविष्यअन्न कहते हैं ॥ १० ॥ आमिषान्न सर्वथा भोजन नहीं करना चाहिये और विशेष करके कार्तिकमें तो सदा वर्जनीय है ॥ ११ ॥ जला हुआ अन्न, दोवार पकाया हुआ छिलके समेत दाल, मसूर, निसोढ़ा और वासी अन्न इसको आमिष कहते हैं ॥१२॥ वैगन, पड़वल,

घिया, तरबूज, कुंदरू, खीरा ये शाकमें आमिष हैं अर्थात् ये वर्जित हैं ॥ १३ ॥ रताल्, तुलसी, चौलाईका शाक, मजीठ खस २ के पत्ते, जटामांसी, ये पत्र शाकमें आमिष हैं अर्थात् वर्जनीय हैं ॥ १४ ॥ गाजर, सलगम, प्याज, लहसन, और जिमीकंद ये कार्तिकमे सदा आमिष हैं इन्हें कार्तिकमें कभी न खाना चाहिये ॥ १५ ॥ जो अधम मनुष्य औरोंके माससे अपने मांसको पुष्ट करता है वह दूसरे जन्ममें उसीकी विष्टामे कीड़ा होता है ॥ १६ ॥ जो दुष्ट

दोरका तुलसी चिल्ली छत्राकं पोस्तपत्रकम् ॥ चक्रवर्ती राजगिरिः पत्रशाकेषु चामिषम् ॥१४॥
गृंजरं रक्तमूलं च पलांडुं लशुनं तथा ॥ सर्वदेवामिपाणि स्युः कार्तिके सूरणं त्यजेत् ॥ १५ ॥
परमांसैः स्वमांसानि यः पुष्णाति नराधमः ॥ परजन्मनि तस्यैव विष्ठायां जायते कृमिः ॥१६॥
वालान् मृगान् पक्षिणो वा तथा वालफलानि च॥घातयंति दुरात्मानो जायंते मृतवालकाः॥१७॥
सर्वाण्येकत्र दानानि सर्वतीर्थान्यथैकतः ॥ सर्वव्रतान्येकतश्च अहिंसा कलया समं ॥ १८ ॥
एवं विचार्य भुंजीयादन्नं विष्णुनिवेदितं ॥ वैश्वदेवस्यांतरे तु य आगच्छति भिक्षुकः ॥ १९ ॥

मृग पक्षीके वच्चे और कच्चे फलोंका नाश करते हैं वे मरे हुये वालक उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥ एक २ करके सब दान एक २ करके सब तीरथ और एकसे लेकर सब व्रत अहिंसाकी एक कलाके समान है ॥ १८ ॥ ऐसा विचारकर भगवान्के अर्पण करके भोजन करै और वैश्वदेवके अनन्तर जो कोई भिक्षुक आजाय ॥ १९ ॥ ॥

वह चांडालहो वा चोरहो वह विष्णुका रूप है इसमें संदेह नहीं है । सायंकाल और प्रातःकाल वैश्वदेवके अनन्तर ॥ २० ॥ जो अतिथि विमुख जाता है तो वह मनुष्य दुख पाता है । इसप्रकार भोजन करै कि जूठा न वचै और फिर आचमन करै ॥ २१ ॥ दांतोंमें लगे हुये जूठे अन्नको वाहर निकाले परंतु दातोको पीड़ा न दे । दातमे जो उच्छिष्ट दृढतासे लगा है वह तो दांतकेही समान है ॥ २२ ॥ उसके निकालनेसे जो कदाचित् रुधिर निकलै तो उसकी शुद्धिके

चांडालो वाथ चोरो वा विष्णुरूपी न संशयः ॥ सायंकाल उपःकाले वैश्वदेवस्य चांतरे ॥ २० ॥
अतिथिर्विमुखो याति स तु दुःखस्य भाजनं ॥ एवं भुक्त्वाचमेत्पश्चाद्यथोच्छिष्टं न तिष्ठति ॥ २१ ॥
दंतोच्छिष्टं शलाकाभिर्निर्हरेन्नैव पीडयेत् ॥ दृढं यद्दंतसंलग्नमुच्छिष्टं तत्तु दंतवत् ॥ २२ ॥
तन्निष्कासनतश्चेत्स्यात्कदाचिद्रुधिरागमः ॥ चांद्रायणत्रयं कुर्यात्तस्य संशुद्धिहेतवे ॥ २३ ॥
भक्षयेत्तुलसीं वक्त्रशुध्यर्थं तीर्थवारिणा ॥ तुलस्याधारणं कार्यं कार्तिके तु विशेषतः ॥ २४ ॥
तुलस्यां सर्वतीर्थानि तुलस्यां सर्वदेवताः ॥ कार्तिके मासि तिष्ठंति नात्र कार्या विचारणा ॥२५॥

लिये तीन चांद्रायण व्रत करने चाहियें ॥२३॥ और मुखशुद्धिके लिये तीर्थके जलके साथ तुलसीदल खाले और विशेषकर कार्तिकमे तुलसी धारण करै ॥ २४ ॥ कार्तिकमें तुलसीमें सब तीर्थ और तुलसीमेंही सब देवता रहते है इसमें कुछ विचारका काम नहीं है ॥ २५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मरते समय जिसके मुखमें तुलसी गेरी जाती है वह महापापी, दुराचारी मगध देशमेंहीं क्यों न रहताहो ॥ २६ ॥ वह यमपुरीको नहीं जाता और विष्णुलोकमें सुख भोगता है ॥ तुलसीकी मंजरियोंसे विष्णुकी वा शिवकी ॥ २७ ॥ पूजा जो मनुष्य भक्तिमें तत्परहो सहस्रनामोंसे करता है उसे दान और व्रतोंसे क्या है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥२८॥ (तुलसी लेते समय यह मंत्र पढै) " हे तुलसी ! तुम अमृतसे उत्पन्न हुईहो तुम सदा भगवान्‌की प्रियाहो मैं भग-

यस्यैव मृत्युसमये तुलसी मुखसंस्थिता ॥ महापापो दुराचारः कीकटे वाससंस्थितः ॥ २६ ॥
न यात्यसौ संयमिनीं विष्णुलोके महीयते ॥ तुलसीमंजरीभिश्च विष्णोर्वाथ शिवस्य च ॥२७॥
सहस्रनामभिः कुर्यात्पूजां यो भक्तितत्परः ॥ किं दानैः किं व्रतैस्तस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२८॥
तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ॥ केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥ २९ ॥
मंत्रेणानेन तुलसीस्तुद्याद्वा हरितुष्टये ॥ अंगणे तु समालोक्य तुलसीनां कदंबकम् ॥ ३० ॥
तद्गृहं न विशंत्येव यमदूता न संशयः ॥ यत्किंचिद्दीयते दानं तुलस्या च समन्वितम् ॥ ३१ ॥

वान्‌के लिये तोड़ताहूं इसलिये हे सुन्दरी ! तुम वर देनेवाली होउ ॥ २९ ॥ इस मंत्रसे तुलसियोंको भगवान्‌के प्रीत्यर्थ तोड़ै । आंगनमें तुलसीके वनोंको देखकर ॥ ३० ॥ यमके दूत उस घरमें नहीं घुसते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ जो कुछ दान तुलसी धरकर दिया जाता है ॥ ३१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उसका अपार पुण्य कहा है और दानी मनुष्य नरकको नहीं जाता ॥ शेष दिनको संसारके व्यवहारसे बितादे ॥ ३२ ॥ फिर सायंकालको भगवान्के मंदिरको जाय । और संध्या करके अपनी शक्तिके अनुसार दीपदान करे ॥ ३३ ॥ फिर रात्रिके पहिले प्रहरमें जागरण करे और ब्रह्मचर्य करके जब स्त्रीका आदर कर चुके ॥ ३४ ॥ फिर जो कामकी इच्छा हो तो भार्याके पास जानेमें दोपका भागी नहीं होता और भगवान्की प्रीतिके लिये अपनी प्यारी भोजन

अपारं तु प्रयुक्तं तन्न व्रजेन्नरकं नरः ॥ संसारव्यवहारेण दिनशेषं समापयेत् ॥ ३२ ॥ सायंकाले पुनर्गच्छेद्विष्णोर्देवालयं प्रति ॥ संध्यां कृत्वा प्रयुंजीत तत्र दीपान्यथाबलं ॥ ३३ ॥ निशायाः प्रहरे चाद्ये कुर्याज्जागरणं तथा ॥ ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्याद्भार्यायामादृतो तथा ॥ ३४ ॥ तया कामयमानो वा भार्यां गच्छेन्न दोपभाक् ॥ हरिसंतुष्टये कार्यस्त्यागो वा स्वेष्टवस्तुनः ॥ ३५ ॥ मासांते द्विजवर्याय दद्यात्तद्व्रतपूर्त्तये ॥ सर्वव्रतानि चैकत्र सत्यव्रतमथैकतः ॥ ३६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं भाषेत सर्वदा ॥ अन्यधर्मेष्वधिकृतिः कुलजातिविभागतः ॥ ३७ ॥ ॥

आदिकी वस्तुओंका त्याग करना चाहिये ॥ ३५ ॥ और मासके अंतमें श्रेष्ठ ब्राह्मणको उस व्रतके सफल होनेके लिये छोड़ी हुई वस्तुओंका दानदे । देखो सब व्रत एक और हैं और सत्यव्रत एक और हैं॥३६॥ इसलिये सब प्रकारसे सदा सत्य बोले । यद्यपि अन्य धर्मोंमें कुल और जातिके अनुसार जुदा २ अधिकार है ॥ ३७ ॥

परंतु कार्तिकमें सब लोग अधिकारी होते हैं। और कलियुगमें पापचित्तवालोंका कोई और उपाय नहीं है ॥ ३८ ॥
इसलिये अपने उद्धारके लिये मनुष्य यत्नपूर्वक कार्तिकका व्रत करै। ब्रह्महत्यादिक पाप तभीतक गर्जते हैं कि ॥ ३९ ॥
जबतक प्राणी आदरपूर्वक कार्तिकस्नान नहीं करता। जो कार्तिकमासमें अच्छे २ भोजन पदार्थसे गौग्रास दिया जाता है

अधिकारी कार्तिके तु सर्व एव जनो भवेत् ॥ कलौ कलुषचित्तानामुपायो नैव वर्तते ॥ ३८ ॥
उद्धारार्थं कार्तिकस्य व्रतं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ तावद्गर्जंति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥ ३९ ॥
न कृतं कार्तिकस्नानं यावज्जंतुभिरादरात् ॥ गोग्रासः कार्तिके मासि विशेषाद्यैस्तु दीयते ॥ ४० ॥
तेषां पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोति पितामहः ॥ विष्णुदेवालयं प्रातः संमार्जयति कार्तिके ॥ ४१ ॥
तस्य वैकुंठभवने जायते सुदृढं गृहं ॥ दद्यात्कार्तिकमासे तु धर्मकाष्ठानि भूरिशः ॥ ४२ ॥
न तत्पुण्यस्य नाशोस्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥ सुधादि लापयेद्यस्तु कार्त्तिके विष्णुमंदिरे ॥ ४३ ॥
चित्रादिकं लिखेद्वापि मोदते विष्णुसन्निधौ ॥ रात्रिशेषे भवेत्स्नानमुत्तमं विष्णुतुष्टिकृत् ॥ ४४ ॥

॥ ४० ॥ उन पुण्योंका फल विधाता भी नहीं कह सक्ता है। जो कार्तिकमें प्रातःकाल विष्णुके मंदिरको झाड़ता है ॥ ४१ ॥
उसका वैकुंठभवनमें बड़ा पक्का घर बनता है। जो कार्तिकमासमें बहुतसा चंदन दान करता है ॥ ४२ ॥ तो सैंकडों किरोड़ों वर्षतक
उसके पुण्यका नाश नहीं होता। जो कार्तिकमें विष्णुके मंदिरमें गोबर आदि लीपनेकी वस्तुसे लीपता है ॥ ४३ ॥ वा चित्र आदि

लिखता है वह विष्णुके पास सुख भोगता है। जो थोड़ी रात रहे स्नान होता है वह उत्तम और भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाला है ॥ ४४ ॥ और सूर्योदयपर मध्यम इसलिये जबतक कृत्तिका अस्त नहो तबतक स्नान होना चाहिये नहीं तो कार्तिक स्नान नहीं है ॥ ४५ ॥ देवमंदिरमें वा तीर्थमे दुष्ट राजाओंने जो कर लगाया है उसे जो लोग छुड़वाते हैं उन्होका सदा धर्म रहता है ॥ ४६ ॥ स्त्रियोंको पतिकी आज्ञा लेकर स्नान करना चाहिये । जो पतिसे विना पूछे धर्म किया जाता है वह भर्ताके क्षय करनेवाला है

सूर्योदये मध्यमं स्याद्यावन्नास्ता तु कृत्तिका ॥ तावदेव भवेत्स्नानमन्यथा तन्न कार्तिकम् ॥४५॥ देवालये वा तीर्थे वा कृतो दुष्टैर्नृपैः करः ॥ तं मोचयंति ये लोकास्तेषां धर्मः सनातनः ॥ ४६ ॥ स्नानं स्त्रीभिर्विधातव्यं गृहीत्वाज्ञां धवस्य च ॥ अपृष्ट्वा यत्कृतं धर्म्यं भर्तारं तत्क्षयं नयेत् ॥ ४७ ॥ स्त्रीणां नास्त्यपरो धर्मो भर्तारं प्रोज्झ्य काश्यप ॥ कुर्यात्सहस्रपापानि भर्त्राज्ञां या समाचरेत् ॥ ४८ ॥ सैषा धर्मवती लोके न जायेत व्रतादिना ॥ दरिद्रः पतितो मूर्खो दीनोपि यदि चेत्पतिः ॥ ४९ ॥ तादृशः शरणं स्त्रीणां तत्त्यागान्निरयं व्रजेत् ॥५०॥ इति सनत्कु०संहि०कार्ति०नियमकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ७

॥ ४७ ॥ हे काश्यप ! भर्ताको छोड़ स्त्रियोका दूसरा धर्म नहीं है । जो हजारों पापकरे परंतु भर्ताकी आज्ञापर चलै ॥ ४८ ॥ वही संसारमें पतिव्रता है कोई व्रत आदि करनेसे पतिव्रता नहीं होती है । जो पति दरिद्री, पतित, मूर्ख, और दीन, भी हो ॥ ४९ ॥ तो वैसेही पतिकी शरणमे स्त्रियोंको रहना चाहिये उसके त्यागनेसे स्त्री नरकको जाती है ॥ ५० ॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये नियमकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ अरुण बोले । हे भगवन् ! हे भूतभावन ! कार्तिकका फल विशेष करके किस तीर्थमें वा क्षेत्रमें होता है सो कहिये ॥ १ ॥ सूर्य बोले । कार्तिकमें जहां कहीं हो जलमें स्नान करना चाहिये परंतु कार्तिकमें गरम जलमें कहीं भी स्नान करै ॥ २ ॥ पहिले कहे हुये जलसे दश गुणा पुण्य शीत जलसे स्नान करनेका है । उससे सो गुणा पुण्य वाहर

॥ अरुण उवाच ॥ कस्मिंस्तीर्थे विशेषेण फलं कार्तिकसंभवम् ॥ क्षेत्रे वा एतदाख्याहि भगवन् भूतभावन ॥ १ ॥ सूर्य उवाच ॥ यत्र कुत्रापि कर्त्तव्यं जले स्नानं तु कार्तिके ॥ उष्णोदकेन कर्त्तव्यं स्नानं कुत्रापि कार्तिके ॥ २ ॥ ततो दशगुणं पुण्यं शीततोयनिमज्जनात् ॥ ततः शतगुणं पुण्यं बहिः कूपोदके कृतम् ॥ ३ ॥ कूपात्सहस्रगुणितं फलं वापीनिषेकतः ॥ ततो युतगुणं पुण्यं तडागस्नानतो भवेत्॥४॥ ततो दशगुणं पुण्यं निर्झरेषु निमज्जनात् ॥ ततोधिकतरं पुण्यं नदीस्नानस्य कार्तिके ॥ ५ ॥ नद्यां दशगुणं प्रोक्तं तीर्थस्नाने खगोत्तम ॥ ततो दशगुणं पुण्यं नद्योर्यत्र च संगमः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

कूपके जलसे स्नान करनेका है ॥ ३ ॥ कूपसे हजार गुना फल वावड़ीमें न्हानेका है और उससे दस हजार गुना फल तालावमें स्नान करनेसे होता है ॥ ४ ॥ उससे दसगुना पुण्य झरनोंमें न्हानेसे होता है । उसमे अधिकतर पुण्य कार्तिकमें नदीके स्नानसे होता है ॥ ५ ॥ और हे खगोत्तम ! नदीसे दसगुना पुण्य तीर्थमें स्नान करनेका कहा है । और

उससे दसगुना पुण्य नदियोंके संगममे करनेसे होता है ॥ ६ ॥ जहां तीन नदियोंका संगम है उसमे स्नान करनेके पुण्यका अंत नहीं है समुद्र, कृष्णा, त्रिवेणी, यमुना और सरस्वती ॥ ७ ॥ गोदावरी, विपाशा नर्मदा, तमसा, मही, कावेरी, सरजू, क्षिप्रा, और चर्मण्वती नदी ॥ ८ ॥ वितस्ता, वेदिका, शोण, वेत्रवती, अपराजिता गंडकी, गोमती पूर्णा, ब्रह्मपुत्र सरोवर ॥ ९ ॥ वाग्मती, शतद्रु, और वदरिकाश्रम हे श्रेष्ठ अरुण ! ये तीर्थ कार्तिकमें दुर्लभ है ॥ १० ॥

नदीत्रयस्य संयोगे पुण्यस्यांतो न विद्यते ॥ सिंधुः कृष्णा च वेणी च यमुना च सरस्वती ॥७॥
गोदावरी विपाशा च नर्मदा तमसा मही ॥ कावेरी शरयू क्षिप्रा तथा चर्मण्वती नदी ॥८॥
वितस्ता वेदिका शोणो वेत्रवत्यपराजिता ॥ गंडकी गोमती पूर्णा ब्रह्मपुत्रसरोवरम् ॥ ९ ॥
वाग्मती च शतद्रुश्च तथा बदरिकाश्रमः ॥ दुर्लभाः कार्तिके त्वेते तीर्थाश्चारुणसत्तम ॥ १० ॥
सर्वेभ्यश्च स्थलेभ्यश्च आर्यावर्तस्तु पुण्यदः ॥ कोल्हापुरी ततः श्रेष्ठा ततः कांचीद्वयं स्मृतम् ॥११॥
अवंतसेवनं पुण्यं वराहक्षेत्रमेव च ॥ चक्रक्षेत्रं ततः पुण्यं मुक्तिक्षेत्रं ततोधिकम् ॥ १२ ॥

सब जगहोसे आर्यावर्तमें पुण्य अधिक है। और उससे कोल्हापुरी श्रेष्ठ है और उससे दोनों कांची श्रेष्ठ कही हैं ॥११॥ और उससे वराह क्षेत्रमें भगवान्‌का पूजनका अधिक फल है। और उससे चक्र क्षेत्रका और उससे मुक्ति क्षेत्रका अधिक फल है ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उससे अवंतिका क्षेत्र श्रेष्ठ है और उससे बदरिकाश्रम श्रेष्ठ है। और उससे अयोध्या तथा उससे गंगोत्री श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ उससे कनखल तीर्थ और उससे मधुपुरी श्रेष्ठ है। मथुराके यमुना जलमें एक भी कार्तिक ॥ १४ ॥ जिन्होंने स्नानकर लिया वे वैकुंठमें बहुत कालतक वास करते हैं। क्योंकि वहा कार्तिकमें राधा दामोदरने स्वयं स्नान किया है ॥१५॥ इससे मधुपुरी श्रेष्ठ है और विशेष करके यमुनाजी। और मधुपुरीसे द्वारावती श्रेष्ठ है कि जहां भगवान् नित्य ॥ १६ ॥

अवंतिका ततः श्रेष्ठा ततो बदरिकाश्रमः॥ अयोध्या च ततः श्रेष्ठा गंगाद्वारं ततोधिकम् ॥१३॥
ततः कनखलं तीर्थं ततो मधुपुरी वरा ॥ एकोपि कार्तिको मासो मथुरायमुनाजले ॥ १४ ॥
यैः स्नातस्ते तु वैकुंठे बहुकालं वसंति हि ॥ राधादामोदरस्तत्र स्वयं स्नातस्तु कार्तिके ॥ १५ ॥
अतो मधुपुरी श्रेष्ठा यमुना च विशेषतः ॥ द्वारावती ततः श्रेष्ठा प्रत्यहं स्नाति केशवः ॥ १६ ॥
षोडशस्त्रीसहस्रेण सार्धं यादवसंयुतः ॥ द्वारकायां मृत्तिकायास्तिलको येन मस्तके ॥ १७ ॥
धार्यतेसौ नरो ज्ञेयो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ द्वारकास्नानमाहात्म्यं न वक्तुं शक्यते मया ॥१८॥

सोलह हजार गोपिकाओंके साथ और यादव सहित स्नान करते हैं। द्वारकामें जो मृत्तिकाके तिलकको मस्तकपर लगाता है ॥ १७ ॥ उस मनुष्यको जीवन्मुक्त जानना चाहिये इसमें संदेह नहीं है। द्वारकाके स्नानका माहात्म्य मैं नहीं कह सक्ता हूं ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

जिन्होंने भगवान्में चित्त लगा रक्खा है उनको बहुत भारी पुण्य होता है। और इस कलियुगमें गंगाही श्रेष्ठ है कि जिनका किनारा मंगल होजाता है ॥१९॥ और उससे दशगुना पुण्य स्नानसे प्राप्त होता है। गंगाजीको नामके उच्चारणमात्रसे जो फल होता है ॥ २० ॥ वह हजार तीर्थोंमें जानेसे और स्नान करनेसे नहीं मिलता। जो मनुष्य

गोविंदार्पितचित्तानां जायते पुण्यमाकरः ॥ ततो भागीरथी श्रेष्ठा यत्र किंचिन्न मंगला ॥ १९ ॥
तस्माद्दशगुणं पुण्यं तीर्थराजे प्रजायते ॥ नामोच्चारणमात्रेण गंगाया यत्फलं भवेत् ॥ २० ॥
न तत्सहस्रतीर्थानां यानात्स्नानाच्च लभ्यते ॥ गंगागंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ २१ ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ येषां येषां न पापानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २२ ॥
तानि तानि विनश्यंति गंगाबिंदोस्तु स्पर्शतः ॥ ये निंदंति नदीं गंगां ते नरा नरकौकसः ॥
अयं ब्रह्मद्रवः साक्षान्महेशेन धृतः स्वके ॥ २३ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सर्वे गंगापुरःसरे ॥
कलौ दशसहस्रांते विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीं ॥ २४ ॥ ॥ ॥

चारसौ योजनमें गंगा गंगा कहता है ॥ २१ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें जाता है। जिन २ पापोंका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ २२ ॥ वेही २ पाप गंगाजीकी बूंदके स्पर्शसे नाश होजाते हैं। जो कोई गंगा नदीकी निन्दा करते हैं वे नरकमें वास करते हैं ॥ इस साक्षात् ब्रह्मद्रवको शिवजीने अपने मस्तकपर धरा है ॥ २३ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश

सब गंगाजीकी उपासना करते हैं । कलियुगमें दश हजार वर्षके अंतमें भगवान् पृथ्वीको छोड़देंगे ॥ २४ ॥ उससे आधे वर्षोंमें अर्थात् ५००० वर्षोंमें गंगाजी और उससे आधेमें अर्थात् ढाई हजार वर्षमें देवता चले जांयगे जबतक पृथ्वीपर गंगाजी है तबतक तीर्थ है ॥ २५ ॥ और तभीतक वे अपने २ स्थानमें मनुष्योंके पाप हरते हैं । जब गंगाजी नष्ट होजायंगी तो कौन उस पापको हरैगा ॥ २६ ॥ ऐसा विचारकर श्रेष्ठ तीर्थ पृथ्वीतलमें चले जायंगे । इसलिये सब

तदर्धं जाह्नवीतोयं तदर्धं देवतागणाः ॥ यावत्तिष्ठति गंगात्र तावत्तीर्थानि संति च ॥ २५ ॥
स्वस्वस्थाने नृणां पापं तावदेव हरंति च ॥ यदैव गंगा नष्टा स्यात्को वा तत्पापमाहरेत् ॥२६॥
विचार्यैवं सुतीर्थानि गमिष्यंति धरातले ॥ तस्मान्मुनीश्वरैः सर्वैर्यावत्तिष्ठति जाह्नवी ॥ २७ ॥
तावच्च क्रियतां धर्मस्ततो भूमौ निलीयतां ॥ समाधिं गृह्य सुदृढां यावत्कृतयुगं भवेत् ॥२८॥
अन्यथा कलिकालेन भ्रंशनीया मुनीश्वराः ॥ ततः श्रेष्ठतरा काशी यस्या नाशो न जायते ॥२९॥
यदाश्रयेण गंगापि सर्वपापं व्यपोहति ॥ काशिकाया नैव नाशो ब्रह्मण्यपि मृतौ सति ॥ ३० ॥

मुनीश्वर जबतक गंगाजी है ॥ २७ ॥ तबतक धर्म करलें फिर वह पृथ्वीमें लय होजायगा । और जबतक सतयुग नहीं होगा तबतक बड़ी दृढ़ समाधिको लेकर बैठेंगे ॥ २८ ॥ नहीं तो कलिकाल मुनीश्वरोंका नाशकर देगा । इसलिये काशी बड़ी श्रेष्ठ है कि जिसका नाश नहीं होता ॥२९ ॥ और जिसके आश्रयसे गंगा भी सब पापोंको दूरकर देती है ।

ब्रह्मके नाश होने पर भी गंगाका नाश नहीं होता ॥ ३० ॥ और काशीमें पुण्य और पाप जो कुछ काम करो सैंकडों करोड़ों कल्पतक नाश नहीं होता ॥ ३१ ॥ जिस काशीके दर्शनके लिये गंगा भी उत्तरवाहिनी होगई हैं उसमें पंच गंगा तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है ॥ ३२ ॥ मैंने वहां तप किया है और मेरे पसीनेसे किरणा नदी निकली और

तथा काशीकृतं कर्म सुकृतं चापि दुष्कृतं ॥ नैव नाशं समायाति कल्पकोटिशतैरपि ॥ ३१ ॥
यद्दर्शनार्थं गंगापि जाता चोत्तरवाहिनी ॥ तस्यां पंचनदीतीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतं ॥ ३२ ॥
मया तत्र तपस्तप्तं प्रस्वेदात्किरणा नदी ॥ गभस्तीशादधोभागे गंगया सह संगता ॥ ३३ ॥
धूतपापापि तत्रैव चंद्रांशकसमुद्भवा ॥ रुद्रांशकसमुद्भूता स्वयं भागीरथी स्थिता ॥ विष्णोरंशसमुद्भूता यमुना यत्र संगता ॥ ३४ ॥ ब्रह्मांशसंभवा यत्र दृश्यते तु सरस्वती ॥ तीर्थं पंचनदं नाम भूमावेकं विराजते ॥ ३५ ॥ आगते कार्तिके मासि रौरवं नरकं गताः ॥
आक्रोशंते तु पितरो वंशेस्माकं भविष्यति ॥ ३६ ॥ ॥ ॥

गभस्तीश्वरके नीचे गंगाजीमें मिलगई ॥ ३३ ॥ और वहांही चंद्रके अंशसे उत्पन्न हुई धूतपापा नदी है। और अंशसे उत्पन्न स्वयं गंगाजी है। और विष्णुके अंशसे उत्पन्न यमुना आ मिली है ॥ ३४ ॥ और ब्रह्मके अंशसे उत्पन्न वहां सरस्वती दीख रही है। सो पृथ्वीपर यह एकही पंचनद नाम तीर्थ विराजमान है ॥ ३५ ॥ जब कार्तिक मास आता

है तब रौरव नरकमें गिरे हुये पितर पुकार मचाते हैं कि हमारे वंशमें ॥ ३६ ॥ कोई भाग्यवानोंमें श्रेष्ठ होगा कि जो सुन्दर पंचनदपर जाकर नरकसे तारनेवाले हमारे तर्पणको करैगा ॥३७॥ जब कार्तिक आता है तो प्रयाग आदि जितने तीर्थ है पंच गंगापर स्नान करने आते है इसमें संदेह नहीं है ॥ ३८ ॥ पवित्र पंचनदमें स्नान करतेही और बिंदुमाधवकी पूजा करनेसे उसी क्षण लाखों पाप नाश होजाते हैं ॥ ३९ ॥ जिसने जन्मभरमें एकवार भी पवित्र पंचनदमें स्नान

कश्चित् भाग्यवतां श्रेष्ठो गत्वा पंचनदे शुभे ॥ अस्माकं तर्पणं कुर्यान्नरकार्णवतारकम् ॥३७॥
तीर्थराजादितीर्थानि प्राप्ते कार्तिकमासके ॥ स्नानार्थं पंचगंगं तु समायांति न संशयः ॥ ३८ ॥
कृत्वा तु लक्षपापानि स्नात्वा पंचनदे शुभे ॥ बिंदुमाधवमभ्यर्च्य विलयं यांति तत्क्षणात् ॥ ३९ ॥
जन्ममध्ये सकृदपि स्नानं पंचनदे शुभे ॥ बिंदुमाधवमभ्यर्च्य मुक्तो जन्मांतरे भवेत् ॥ ४० ॥
दद्याद्रात्रौ पंचनदे दीपं यो विधिपूर्वकम् ॥ तस्य वंशे प्रजायंते वालकाः कुलदीपकाः ॥ ४१ ॥
कार्तिके मासि यो विप्रो गभस्तीश्वरसन्निधौ ॥ शतरुद्रीजपं कृत्वा मंत्रसिद्धिः प्रजायते ॥ ४२ ॥

और बिंदुमाधका पूजन किया है वह जन्मांतरमें मुक्त होजाता है ॥ ४० ॥ जो रात्रिमें विधिपूर्वक पंचनदको दीपक चढाता है उसके वंशमें कुलदीपक बालक उत्पन्न होते हैं ॥ ४१ ॥ जो ब्राह्मण कार्तिकमासमें गभस्तीश्वरके सामने रुद्रीके सौ पाठ सुनाता है वह मंत्र सिद्ध होजाता है ॥ ४२ ॥ ॥ ॥ ॥

और हे सारथि! दिनमें निश्चय सब तीर्थ उस तीर्थपर जाते हैं और काशीके तीर्थयात्राके अर्थ कहीं भी नहीं जाते ॥ ४३ ॥ परंतु वे सब पवित्र पंचनदपर स्नानके लिये आते हैं। मणिकर्णिका भी आती है फिर और पुरवालोंका क्या कहना है वे तो आतेही हैं ॥ ४४ ॥ प्रथमतो मनुष्य देह दुर्लभ है फिर काशीपुरी दुर्लभ और उसमें भी कार्तिकमासमें पंचगंगा बहुतही दुर्लभ है ॥ ४५ ॥ जिन्होंने कार्तिकमासमें एकवार भी शुभ पंचनदमें गोता लगया है उसका फल सब तीर्थोंके स्नानसे करोड़ गुना अधिक होता है

सर्वतीर्थानि गच्छंति तत्तीर्थं दिने खलु ॥ यात्रार्थं काशिकास्थानि न यांति क्वापि सारथे ॥४३॥ तानि सर्वाणि चायांति स्नातुं पंचनदे शुभे ॥ मणिकर्ण्यपि चायाति पुर्यादीनां च का कथा ॥ ४४ ॥ दुर्लभो मानुषो देहो दुर्लभा काशिकापुरी ॥ तत्रापि कार्तिके मासि पंचगांगं सुदुर्लभम् ॥ ४५ ॥ यैः स्नातं कार्तिके मासि सकृत्पंचनदे शुभे ॥ सर्वतीर्थकृतात्स्नानात्फलं कोटिगुणं भवेत् ॥ ४६ ॥ वाराणस्यां तु यैः स्थित्वा त्रिवर्षं कार्तिकव्रतम् ॥ सोपांगं सांगं यैर्मर्त्यैः कृतं भक्त्यैकतत्परैः ॥ ४७ ॥ इह लोके फलं तेषां प्रत्यक्षं जायते खग ॥ संपत्त्या चैव संतत्या यशोभिर्धर्मबुद्धिभिः ॥ भवंति संयुता ब्रूहि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४८॥ इति श्रीसनत्कु०संहि०कार्ति०पुण्यतीर्थकथनं नाम अष्टमोऽध्यायः॥८॥

॥४६॥काशीमें रहकर जो मनुष्य एक भक्त होकर तीन वर्षतक कार्तिका व्रत सांगोपांग करते हैं ॥ ४७॥ तो हे खग इस संसारमें उन लोगोंको प्रत्यक्ष फल मिलता है । औ वे लोग संपत्ति, संतान यश और धर्म बुद्धि इनको पाते हैं। अव कहो क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ४८ ॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये पुण्यतीर्थकथनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥

॥ ऋषि बोले । अब हमसे कार्तिकके उपांग कहिये कि जिनके करनेसे संपूर्ण कार्तिकके व्रतका फल होजाय ॥ १ ॥
॥ वालखिल्या बोले ॥ आश्विनशुक्लपक्षकी जो पूर्णिमा होती है उसे कोजागरी कहते हैं उसदिन लक्ष्मीका पूजन और रात्रिको जागरण करे ॥ २ ॥ नारियलका जल पीकर पासोंसे खेले रातमें वरके देनेवाली लक्ष्मी कौन जागता है ऐसे

॥ ऋषय ऊचुः ॥ कार्तिकस्य उपांगानि व्रतानि कथयंतु नः ॥ कृतेषु येषु भवति संपूर्णं कार्तिकव्रतम् ॥ १ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ आश्विने शुक्लपक्षे तु भवेद्या चैव पूर्णिमा ॥ तत्रादौ पूजनं कुर्यात् श्रियो जागृतिपूर्वकम् ॥ २ ॥ नारिकेरोदकं पीत्वा अक्षक्रीडां समाचरेत् ॥ निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी ॥ ३ ॥ जगत्प्रभ्रमते तस्यालोकचेष्टावलोकिनी ॥ तस्मै वित्तं प्रयच्छामि यो जागर्ति महीतले ॥ ४ ॥ सर्वथैव प्रकर्त्तव्यं व्रतं दारिद्र्यभीरुभिः ॥ एतद्व्रतप्रभावेण वलितोऽप्यभवद्धनी ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वलितः प्रोच्यते कोसौ लब्धवान्स कुतो व्रतम् ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूत वालखिल्यास्तपस्विनः ॥ ६ ॥ ॥

कहती हुई कि ॥ ३ ॥ "पृथ्वीतलपर जो जागता है उसको धन देतीहूं ॥" संसारमें भ्रमण करती है और जागनेवालेकी मुख और काम देखती है ॥ ४ ॥ दरिद्रसे डरनेवालोंको सदा उसका व्रत करना चाहिये । इस व्रतके प्रभावसे वलित ब्राह्मण धनी होगया ॥ ५ ॥ ऋषि बोले ॥ जिसकी बात कह रहे हो वह वलित कौन है और उसने व्रत कहांसे पाया

हे वालखिल्या ! हे तपस्विओ ! यह हमसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ ६ ॥ वालखिल्या बोले । मगध देशमें कुशका पुत्र वलित नाम एक ब्राह्मण था । यह अनेक विद्याओंका जाननेवाला और स्नानसंध्याशील था ॥ ७ ॥ और यह श्रेष्ठ ब्राह्मण मांगनेको मरणके समान मानता था । घर आ जाता सो लेलेता पर कभी दूसरेसे याचना नहीं करता ॥ ८ ॥ उसकी स्त्री बड़ी कर्कशा थी नित्य क्लेश किया करे कि मेरी बहिन तो सोने चादीके गहनोंसे सजी रहती है ॥ ९ ॥ और

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ ब्राह्मणो वलितो नाम मागधः कुशसंभवः ॥ नानाविद्याप्रवीणोसौ स्नानसंध्यापरायणः ॥ ७ ॥ याचनं मरणं तुल्यं मन्यतेसौ द्विजोत्तमः ॥ गृहागतं स गृह्णाति नान्यं याचयते क्वचित् ॥ ८ ॥ तस्य भार्या महाचंडी नित्यं कलहकारिणी ॥ मद्भगिन्यः स्वर्ण-रौप्यालंकारादिविभूषिताः ॥ ९ ॥ नानामाल्यांबरधरा दृश्या देवांगना इव ॥ अहं दरिद्रस्य गृहे पतितास्मि दुरात्मनः ॥ १० ॥ लज्जा मां बाधतेत्यर्थं ज्ञातीनां मुखदर्शने ॥ धिगस्तु चैतद्विद्याया निर्धनस्य कुलस्य च ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

अनेक प्रकारकी माला और वस्त्र पहिरती है और वह दूसरी देवांगनाके समान दीखती है और मैं दुष्ट दरिद्रीके घर आगिरीहूं ॥ १० ॥ मुझे तो जातिवालोंके सामने मुख दिखातें बड़ी लाज आती है । सो ऐसी विद्या और निर्धन कुलको धिक्कार है ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

लोगोंके सामने ऐसा कहती और पतिका कहा नहीं करती । और उसने एक संकल्प करलिया था कि जो भर्ता कहे गा ॥ १२ ॥ उससे उलटा करूंगी कि जबतक लक्ष्मी प्रसन्न न होगी । उसने पतिसे कहा हे भर्ता ! हे पाषाणबुद्धि ! तू राजाके घरमें चोरी कर ॥ १३ ॥ और बहुतसा धन ला नहीं तो मैं तुझे मारूंगी । कभी रोती कभी नहीं खाती कभी बहुत खाती ॥ १४ ॥ वह उसके सिरपर मारती और इस प्रकार पतिको बड़ा क्लेश देती ॥ और वह याचनाके

एवं वदति लोकेषु न करोति पतीरितम् ॥ संकल्पं कृतवत्येकं यद्यद्भर्ता वदिष्यति ॥ १२ ॥
विपरीतं करिष्यामि यावल्लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ भर्तः पाषाणबुद्धे त्वं चौर्यं कुरु नृपालये ॥ १३ ॥
आनीयतां धनं भूरि नो चेत्संताडयाम्यहम् ॥ क्षणं रोदिति नाश्नाति कदाचिद्बहु खादति ॥१४॥
सा कपालं ताडयति एवं क्लेशयते पतिम् ॥ सोढा तस्यास्तु चरितं याचना दुःखभीतितः॥१५॥
नोवाच वचनं किंचिद्यथालाभेन तोषितः ॥ एकस्मिन् श्राद्धपक्षे तु उद्विग्नोभूद्द्विजोत्तमः ॥ १६ ॥
एतस्मिन्वत्सरे सर्वं श्राद्धसामग्रिकं गृहे ॥ वर्तते गृहिणी चेयं न करिष्यति किंचन ॥ १७ ॥

दुःखके डरसे उसके चरित्रको सह लेता था ॥ १५ ॥ और कुछ नहीं कहता था। जैसे मानो कोई लाभसे संतुष्ट बैठा हो । एक दिन श्राद्ध पक्षमें यह श्रेष्ठ ब्राह्मण बड़ा घबराया कि ॥ १६ ॥ इस वर्ष श्राद्धकी सब सामग्री घरमें है परंतु यह घरवाली कुछ नहीं करेगी ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इससे ब्राह्मणका मन तो दुखी हुआ परंतु कुछ कह नहीं सका और जब वह चिंतामें मग्न था उस समय उसके पास एक उत्तम मित्र आया ॥ १८ ॥ उसका नाम गणपति विख्यात था और जब वह पास आया तो वलितने पहिलेके समान बात नही की तब मित्रने कहा ॥ १९ ॥ हे वलित ! किस कारण तुह्मारा चित्त चिंतायुक्त होरहा है । मै अवश्य

इत्युद्विग्नमना विप्रो भाषते न च किंचन ॥ चिंतयाविष्टमेवं तमाययौ मित्र उत्तमः ॥ १८ ॥
नाम्ना गणपतिः ख्यातस्तस्मिन्नभ्यागते सति ॥ नोवाच पूर्ववद्वार्तां मित्रं वचनमब्रवीत् ॥१९॥
भो भो वलित चित्तं ते किमर्थं चिंतयान्वितम् ॥ अवश्यं स्वधिया कृत्वा चिंतां ते निर्हराम्यहम्
॥ २० ॥ वलित उवाच ॥ अधुना पितृपक्षे तु पितुः श्राद्धं समागतम् ॥ सामग्रिकं चास्ति गृहे
विपरीतकरी प्रिया ॥ २१ ॥ कथं संपाद्यते श्राद्धमितिचिंतायुतोस्म्यहम् ॥ गणपतिरुवाच ॥
धन्योसि कृतकृत्योसि भार्या यस्येदृशी गृहे ॥ २२ ॥ ब्रूहि त्वं वैपरीत्येन भार्या कार्यं करि-
ष्यति ॥ वलितस्तु तथेत्युक्त्वा सायं भार्यामभाषत ॥ २३ ॥ ॥ ॥

अपनी बुद्धिसे तुह्मारी सब चिंता दूरकर दूंगा ॥ २० ॥ वलित बोला । अब पितृपक्षमें पिताका श्राद्ध आया सो घरमें सामग्री तौ है परंतु स्त्री उलटा करनेवाली है ॥ २१ ॥ श्राद्ध कैसेहो यही चिंता मुझे लग रही है । गणपति बोला । तुमको धन्य है तुम कृतकृत्य हो कि जिसके घरमें ऐसी स्त्री है ॥ २२ ॥ तुमें जो करनाहो उससे उलटा कहो तो स्त्री

काम करैगी । वलितने अच्छा ऐसा कहकर संध्याको स्त्रीसे कहा ॥ २३ ॥ हे अनर्थ करनेवाली ! हे चंडी ! परसो मेरे पिताका श्राद्ध है उन पापात्माने मेरे लिये कुछ धन नहीं छोड़ा ॥ २४ ॥ इसलिये तू शीघ्र रसोई मत करियो और जो करै तो ज्वारी और शुद्धाचारसे रहित ब्राह्मणोंको ॥ २५ ॥ न्यौता दीजियो हे कल्याणि ! अच्छे ब्राह्मणोंको कभी न दीजो ॥ भर्ताका यह वचन सुनकर उसने वड़ी तयारी करी ॥ २६ ॥ उसने अच्छे २ ब्राह्मणोंको न्यौता दिया और

अनर्थकारके चंडी परश्वः श्राद्धकं पितुः ॥ न स्थापितं धनं यस्मान्मदर्थे तैस्तु पापकैः ॥२४॥
तस्मान्न पाकं शीघ्रं त्वं कुरु दुष्टे करोपि चेत् ॥ ब्राह्मणा ये द्यूतकाराः शौचाचारविवर्जिताः॥२५॥
निमन्त्र्यास्ते त्वया भद्रे नोत्तमास्तु कदाचन ॥ इति भर्तृवचः श्रुत्वा संभारस्तु महान्कृतः ॥२६॥
निमंत्रिताश्च सद्विप्राः काले पाकस्तया कृतः ॥ विपरीतैरेव वाक्यैः श्राद्धं संपादितं तया ॥ २७ ॥
पिंडदानं ततः कृत्वा भार्यां वचनमब्रवीत् ॥ विस्मृत्य पिंडान्नीत्वा त्वं क्षिप गंगाजले शुभे ॥२८॥
पिंडा नीतास्तथेत्युक्त्वा शौचकूपे व्यपक्षिपत् ॥ तज्ज्ञात्वा वलितो दुःखी वभूवाकुलिताननः॥२९॥

समयपर पाक भी तयार करलिया । और पतिके कहनेके विपरीत उसने अच्छे प्रकारसे श्राद्ध करलिया ॥ २७ ॥ फिर वलितने पिंडदान करके स्त्रीसे भूलकर यह कहदिया कि पिंडोंको लेजाकर पवित्र गंगाजलमें वहा आ ॥ २८ ॥ पर उस स्त्रीने अच्छा कहकर और पिंडोंको लेकर उन्हैं शौचके कुयेमें फैंक दिये यह जानकर वलित बड़ा दुखी

हुआ और उसका मुख उदास होगया ॥ २९॥ क्रोधके मारे घरसे निकल गया और उसने यह संकल्प किया कि जो लक्ष्मी प्रसन्न होगी तो मैं अन्न भोजन करूगा ॥ ३० ॥ तबतक मैं कंद फल खाऊंगा और वनमें रहूंगा । वह ब्राह्मण ऐसा संकल्प करके गहरे निर्जन वनमें चला गया ॥ ३१ ॥ और अकेला धर्म नदीके किनारे वृक्षकी छाल धारण करके वीस दिनतक रहा इतनेमें आश्विनशुक्का पूर्णमासी आगई ॥ ३२ ॥ उस वनमें काली नागके वंशकी सुन्दर नेत्रवाली नाग-

क्रोधाद्विनिर्ययौ गेहात्संकल्पं कृतवानिति ॥ लक्ष्मीर्यदि प्रसन्ना स्यात्तदान्नं भक्षयाम्यहम् ॥३०॥
तावत्कंदफलाहारो वनमध्ये वसाम्यहम् ॥ इति संकल्प्य विप्रः स गहने निर्जने वने ॥ ३१ ॥
एको धर्मनदीतीरे वृक्षवल्कलधारकः ॥ विंशद्दिनानि न्यवसदागता चैषपूर्णिमा ॥ ३२ ॥
कालीवंशसमद्भूता नागकन्याः सुलोचनाः ॥ निवसंत्यो वने तस्मिन्व्रतं चक्रू रमाप्तये ॥ ३३ ॥
श्वेतीकृतं तु सुधया गृहं चंद्रगृहोपमम् ॥ मंडलानि विचित्राणि नानापिष्टैः कृतानि च ॥ ३४ ॥
पंचामृतानि रत्नानि दर्पणाच्छादनानि च ॥ स्थापयित्वेंदिरापूजा कृता ताभिः प्रयत्नतः ॥३५॥

कन्या रहतीथीं उन्हों लक्ष्मीप्राप्तिके लिये व्रत किया ॥ ३३ ॥ उन्होंने अपने घरको चंद्रगृहके समान अमृतसे श्वेत किया और अनेक प्रकारके चूर्ण वा रंगोंसे भांति २ के विचित्र चौक पूरे ॥ ३४ ॥ और उन्होंनें बड़ी भक्तिसे पंचामृत, रत्न, दर्पण और चंदोये लटकाके और लक्ष्मीकी स्थापना करके पूजन किया ॥ ३५ ॥ ॥ ॥

और इसप्रकार उन कन्याओंने पहिला प्रहर तो बिताया। और फिर जब जुआ आरंभ हुआ तब उन्हें कोई चौथा मनुष्य नहीं मिला ॥ ३६ ॥ और चारके विना पासोंका खेल नहीं होता इसलिये चौथा कोई ढूंढना चाहिये ऐसा विचार उनमेंसे एक बाहर निकली ॥ ३७ ॥ और उस कन्याने नदीके तीरपर वलित ब्राह्मणको देखा और उसके मुखकी आकृतिसे उसे सुन्दर चलनवाला और चिंतायुक्त जानकर ॥ ३८ ॥ वह सुन्दर वचन बोली कि हे ब्राह्मण !

एवं तु प्रथमो यामो बालाभिर्नीत एव हि ॥ प्रारब्धं तु ततो द्यूतं तुर्यं तास्तु न लेभिरे ॥ ३६ ॥
चतुर्भिस्तु विनाक्षाणां क्रीडनं नैव जायते ॥ तस्मान्मृग्यस्तुरीयस्तु विचार्यैवं विनिर्गता ॥ ३७ ॥
कन्यका तु नदीतीरे ददर्श वलितं द्विजम् ॥ ज्ञात्वा तं साधुचरितं सचिंतं च मुखाकृतेः ॥ ३८ ॥
उवाच वचनं चारु द्विज कोसि समागतः ॥ याह्यद्य क्रीडितुं द्यूतं रमाप्रीतिकरं परम् ॥ ३९ ॥
इत्थं तद्वचनं श्रुत्वा वलितो वाक्यमब्रवीत् ॥ वलित उवाच ॥ द्यूतेन क्षीयते लक्ष्मीर्द्यूताद्धर्मो विनश्यति ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥

तुम कौनहो और कहांसे आयेहो आज तुम लक्ष्मीको बडा प्रसन्न करनेवाले जुयेको खेलने चलो ॥ ३९ ॥ इसप्रकार उसका वचन सुनकर वलितने कहा ॥ वलित बोला। जुयेसे तो लक्ष्मी घटती है और जुयेसे धर्मनाश होजाता है ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तू वावलीके समान क्या कहती है जुयेसे लक्ष्मी कैसे प्रसन्न होती है। कन्याने कहा कि पंडितके न्याई वात करते हो मूर्खके न्याई काम करते हो ॥४१॥ आश्विनशुक्ल पूर्णिमाके दिन जुआसे लक्ष्मी प्रसन्न होता है जुआ खेल चुको तब लक्ष्मीका कौतुक देखना ॥४२॥ यह कहकर वह कन्या उसे अपने घर जुआ खेलनेको लेगई और उसे नारियलका जल और भोजन आदि

मुग्धवद्वदसे किं त्वं कथं लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ कन्योवाच ॥ भाषसे त्वं पंडितवत्कर्म तेऽस्ति तु मूर्खवत् ॥ ४१ ॥ इषस्य शुक्लपूर्णायां द्यूताल्लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ द्यूतक्रीडां तु कृत्वैव कौतुकं पश्य चैंदिरम् ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वासौ तया नीतः क्रीडार्थं स्वस्य मंदिरे ॥ दत्त्वा तस्मै नारिकेलं जलं भक्ष्यादिकं तथा ॥ ४३ ॥ आरब्धं च ततो द्यूतं श्रीलक्ष्मीः प्रीयतामिति ॥ लापितानि च रत्नानि कन्याभिर्ब्राह्मणेन तु ॥ ४४ ॥ कौपीनं लापितं स्वीयं ताभिर्निर्जितमेव तत् ॥ ब्राह्मणः क्रोधसंयुक्तः किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥ ४५ ॥ उपवीतं लापयित्वा ततः स्वीयं कलेवरम् ॥ लापयिष्ये विनिश्चित्य उपवीतं ललाप सः ॥ ४६ ॥ ॥ ॥

देकर ॥४३॥ "श्रीलक्ष्मी इससे प्रसन्न होय" ऐसा कहकर जुआ आरंभ हुआ। कन्याओंने रत्न लगाये और ब्राह्मणने तो ॥४४॥ अपनी कौपीन लगाई सो कन्याओंने उसे जीत लीनी। फिर ब्राह्मण बड़ा क्रोधित हुआ कि अब मुझे क्या करना चाहिये ॥४५॥ फिर यह निश्चय करके कि यज्ञोपवीतिको लगाकर फिर अपने शरीरको लगाऊंगा उसने उपवीत लगादिया ॥४६॥

उन्होंने उसे भी जीत लिया फिर ब्राह्मणने अपने शरीको भी लगादिया इतनेमें जब आधी रात होगई तब दोनों
लक्ष्मी और नारायण ॥ ४७ ॥ संसारका चरित्र देखनेको आये और उन्होंने ब्राह्मणको देखा कि न यज्ञोपवीत है और
न कौपीन है और चिंताने उसे सुखा रक्खा है ॥ ४८ ॥ फिर विष्णुभगवान्ने कहा हे लक्ष्मीजी ! सुनों इस ब्राह्मणने
तुह्मारा व्रत किया है फिर इसे चिंताने क्यों घेरा है ॥ ४९ ॥ इसलिये इसे शीघ्र लक्ष्मीवान् और सुखी करो । भगवा-

ताभिर्जितं च तदपि शरीरं लापितं स्वकम् ॥ ततोर्धरात्रे संजाते लक्ष्मीनारायणावुभौ ॥४७॥
आगतौ लोकचरितं द्रष्टुं विप्रं ददर्शतुः ॥ व्युपवीतं विकौपीनं चिंतयातिकृशीकृतम् ॥ ४८ ॥
उवाच वचनं विष्णुः शृणु त्वं पद्मलोचने ॥ तव व्रतकरो विप्रः कथं जातः स चिंतकः ॥४९॥
तस्मादेनं कुरु क्षिप्रं लक्ष्मीवंतं सुखोचितम् ॥ इति विष्णुवचः श्रुत्वा पद्मयासौ कटाक्षितः ॥५०॥
बालाचित्तहरोजातस्तत्क्षणं मदनोपमः॥ ततः कामेन संविद्धास्तास्तिस्रो नागकन्यकाः ॥५१॥
विप्राय वचनं प्रोचुः शृणु विप्र तपोधन ॥ यद्यस्माभिर्जितस्त्वं चेद्भर्तास्माकं वचोनुगः ॥५२॥

न्का यह वचन सुनके लक्ष्मीने इसके ऊपर दृष्टि गेरी ॥ ५० ॥ फिर तो यह उसी क्षण तरुण स्त्रियोंके चित्त हरने-
वाला कामदेवके समान होगया । फिर वे तीनों नागकन्या कामसे विधगई ॥ ५१ ॥ और ब्राह्मणसे बोलीं कि हे
ब्राह्मण ! हे तपोधन ! जो हम तुह्में जीतलें तो तुम हमारे भर्ता और हमारा कहा मानना ॥ ५२ ॥

और जो तुम हमें जीतलो तो जो तुह्में अच्छा लगै सो करना। उनका यह वचन सुनकर वह ब्राह्मण भी मान गया ॥ ५३ ॥ और खेलनेसे उसने उन कन्याओंको जीतलिया और उनसे गांधर्व विवाह करलिया और उनके रत्न और उनको लेकर अपने घर गया ॥ ५४ ॥ मैंने चंडीके तिरस्कारसे इस उत्तम भाग्यको पाया है इसलिये उसने चंडीका

वयं त्वया निर्जिताश्चेद्यथेच्छसि तथा कुरु ॥ इति तासां वचः श्रुत्वा तथा मन्ये स च द्विजः ॥५३॥
क्रीडनात्ता जिताः कन्या गांधर्वेण विवाहिताः॥तासां रत्नानि ताश्चापि गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ॥५४॥
प्राप्तं चंडीतिरस्कारान्मयेदं भाग्यमुत्तमम् ॥ तस्मात्संमानिता चंडी सापि प्रीता बभूव ह ॥ ५५ ॥
चकार स्वामिनश्चाज्ञामित्थं लक्ष्मीव्रतं त्विदम्॥वहुरात्रिव्यापिनी या सा च पूर्णा विशिष्यते ॥५६॥
एवं लक्ष्मीव्रतं कृत्वा न दरिद्रो न दुःखभाक् ॥ कथां श्रुत्वा विधानेन व्रतस्यापि फलं भवेत् ॥ ५७ ॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये इषपूर्णिमाव्रतकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

सन्मान किया और वह भी प्रसन्न हुई ॥ ५५ ॥ और स्वामीकी आज्ञा करने लगी। इस भांति इस लक्ष्मीके व्रतको जिसदिन रात्रिको विशेष पूर्णमाहो उसदिन करै ॥ ५६ ॥ इसप्रकार लक्ष्मीका व्रत करनेसे न दरिद्री होता है और न दुःख भोगता है। और विधिपूर्वक कथा सुननेसे भी व्रतका फल होता है ॥ ५७ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये इषपूर्णिमाव्रतकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ वालखिल्या बोले। कार्तिककृष्णपक्षकी प्रतिपदासे पूर्णिमातक हे ऋषि श्रेष्ठो! आकाश दीपदान करो ॥१॥ जब तुलाके सूर्य हों तब कार्तिकमें जब सायंसंध्या हो तब तिलके तेलसे बराबर एक महीनेतक आकाश दीपक का दान करता है ॥२॥ और सुन्दर देहवाले भगवान्के प्रीत्यर्थ जो बलाता है लक्ष्मी उसे नहीं छोड़ती। आकाश दीपकका बांस उत्तम बीस हाथका होता

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कृष्णादिमासक्रमतः कार्तिकस्यादिमासतः ॥ आकाशदीपदानं तु कुर्वंतु ऋषिसत्तमाः ॥ १ ॥ तुलायां तिलतैलेन सायंसंध्यासमागमे ॥ आकाशदीपं यो दद्या-न्मासमेकं निरंतरम् ॥ २ ॥ स श्रीकाय श्रीपतये श्रिया न स वियुज्यते ॥ आकाशदीपवंश-स्तु विंशद्धस्तोत्तमो भवेत् ॥ ३ ॥ मध्यमो नवहस्तः स्यात्कनिष्ठः पंचहस्तकः ॥ यथा दूरस्थिते-र्लोकैर्दृश्यते तत्तथाचरेत् ॥ ४ ॥ तथाभ्रादिकरंडेषु दीपदानं विशेष्यते ॥ वंशस्य नवमांशेन लंबा कार्या पताकिका ॥ ५ ॥ मयूरपिच्छमुष्टिं वा कलशं चोपरिन्यसेत् ॥ विष्णुप्रीतिकरो दीपः पित्रुद्धारस्य कारकः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

है ॥३॥ मध्यम नौ हाथका और कनिष्ठ पांच हाथका। पर ऐसा बलावै कि दूरके लोगोंको भी दीखै ॥४॥ भोडल आदिकी लाल टेनोंमें दीपदान अच्छा होता है वांसके नवें भागकी एक लंबी पताका बनावै ॥५॥ उसके ऊपर मयूरके पंखोंका मोर-छल लगावै वा कलशको उसके ऊपर लगावै यह दीपक विष्णुको प्रसन्न करनेवाला और पितृओंका उद्धारक है ॥ ६ ॥

एकादशीसे वा तुलाके सूर्यसे दीपक जलाना कहा है इसलिये कार्तिकमें जब तुलाके सूर्य हों तब दामोदरजीके लिये आकाशमे दीपक लटकावै ॥ ७ ॥ (और यह मंत्र पढ़ै) "हे अनंत भगवान् आपको नमस्कार है यह दीपक तुह्मारे अर्पण करताहूं" आकाशदियेके समान पितरोंको उद्धार करनेवाला कोई नही है ॥ ८ ॥ इस विषयमें एक पुरानी

एकादश्यास्तुलार्काद्वा दीपदानमतोपि वा ॥ दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह ॥ ७ ॥
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोनंताय वेधसे ॥ आकाशदीपसदृशं पितुरुद्धारकं नहि ॥ ८ ॥
अत्रार्थे कथयिष्यामि चेतिहासं पुरातनम् ॥ विप्रोभवच्च विंध्याद्रौ हेलीको नाम तापसः ॥ ९ ॥
वेदशास्त्रप्रवीणश्च ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ तस्य पुत्रद्वयं जातं चित्रभानुर्मनोजवः ॥ १० ॥ वेदपाठादिनिरतावुभौ धर्मपरायणौ ॥ द्यूतस्य व्यसनं जातं तयोर्दैवस्य योगतः ॥ ११ ॥ व्यसनेन तु तेनैव पितृद्रव्यं विनाशितम् ॥ जातं परस्त्रीव्यसनं युवावस्थावतोस्तयोः ॥ न जायंते निर्धनानां द्यूतं वेश्यास्त्रियोपि च ॥ १२ ॥ ॥ ॥

कथा कहूंगा कि विंध्याचलमें एक हेलीक नाम तपस्वी ब्राह्मण रहता था ॥ ९ ॥ वह वेद शास्त्र पढ़ा और ज्ञान विज्ञान युक्त था । उसके दो पुत्र हुये चित्रभानु और मनोजव ॥ १० ॥ वे दोनों वेद पाठ करते और धर्ममें तत्पर थे परंतु दैवयोगसे उन दोनोंको जुयेकी धत पड़ गई ॥ ११ ॥ उस धतसे उन्होंने पिताका धन नाश करदिया और

वे दोनों जवान थे इसलिये उन्हें परस्त्रीगमनका भी व्यसन लग गया। निर्धनियोंको द्यूत और वेश्या स्त्रियां कहां मिल सक्ती है॥ १२ ॥ इसलिये उन दोनोंने चोरी करनेकी ठहराई और वहां चोरी करनेलगे फिर जब लोगोंने इन दोनोंको जान लिया ॥ १३ ॥ फिर वे उस देशको छोड़कर गहन वनमें चलेगये और सब धर्मसे रहित हो शिकार करके अपना जीवन विताने लगे ॥ १४ ॥ प्रातःकाल स्नान करके वे दोनों एक धर्मपर स्थिर होगये। उस वनमें एक भिल्लोंका राजा

चौर्यं विधीयतां तस्मादेवं मंत्रयतुश्च तौ॥ चक्रतुस्तत्र चौर्याणि लोकैर्ज्ञाताविमाविति ॥ १३ ॥
ततः संत्यज्य तं देशं ययतुर्गहनं वनम्॥ मृगया जीविनौ जातौ सर्वधर्मवहिष्कृतौ ॥ १४ ॥
प्रातःस्नानं प्रकुर्वंतावेकं धर्मं समाश्रितौ ॥ तस्मिन्वने निवसति भिल्लींद्रो जिलझिल्लिकः॥१५॥
ननानी नाम तत्कन्या सौंदर्यस्यैकशेवधिः ॥ दृष्ट्वा तौ तरुणौ शूरावुभावपि तयावृतौ॥१६॥
तया सर्वं पितुर्द्रव्यं ताभ्यां सर्वं समर्पितम् ॥ एकं धर्मं सापि चक्रे पित्रर्थं दीपदानकम्॥१७॥
एकदा तु तया प्रोक्तौ ननान्या भ्रातरावुभौ ॥ अद्य मज्जनकश्राद्धं लुंठनीयो न कोपि हि ॥१८॥

जिल झिल्लक रहता था ॥ १५ ॥ उसकी कन्याका नाम निनानी था और वह सुन्दरताकी एक खान थी। उसने उन दोनोंको जवान और शूर देखकर अपने फंदेमें लेलिया ॥ १६ ॥ और उसने अपने पिताका सब धन उनको दे दिया। परंतु उसने एक धर्म किया कि पिताके अर्थ आकाश दीपक जलाया ॥ १७ ॥ एकवार उन निनानीने उस दोनों भाइ-

योंसे कहा कि आज मेरे पिताका श्राद्ध है सो आज किसीको लूटना मत ॥ १८ ॥ और तुम दोनों युवा ब्राह्मणहो और मैं तुह्मै इच्छाभोजन कराऊंगी और अन्य भी कोई ब्राह्मणहों उनको भी मैं सब भांति जिमाऊंगी ॥ १९ ॥ और मैं ब्रह्मचर्य व्रतसेहूं और तुम भी दोनों रहो और उसने उनसे कहा कि मेरे साथ आज गमन मतकरना ॥ २० ॥

उभावपि युवां विप्रौ मया भोज्यौ यथेप्सितम् ॥ अन्येपि केचिद्विप्राश्चेन्मया भोज्यास्तु सर्वथा ॥१९॥
ब्रह्मचर्यव्रतं चाहं युवामपि तथाविधौ ॥ मया सह न संयोगः क्रियतामिति साह तौ ॥ २० ॥
ततस्तयातिसंभारा मांसानि विविधानि च ॥ शाकपाकादिकं सर्वं तया निष्पादितं ततः ॥२१॥
ताभ्यां भुक्तं यथेच्छान्नं बहुतीव कनीयसः ॥ ततस्त्वजीर्णमभवदसाध्यमविलंबकम् ॥ ततः
कालवशं प्राप्तो वने तस्मिन्मनोजवः ॥ २२ ॥ बद्ध्वा यामभटैर्नीतः संयमिन्यां च कुट्टितः ॥
चित्रगुप्तस्तु तं दृष्ट्वा दूतान्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २३ ॥ नयत्वेनं तु पापिष्ठमंधतामिस्रसंज्ञके ॥
त्यजंतु कुंभीपाके च शीर्षं संस्फोटयंतु च ॥ २४ ॥ ॥ ॥

फिर उसने अनेक भांतिके बड़े २ मांसोंके भार, शाक, पाक आदि सब तयार किये ॥ २१ ॥ उन दोनोंने मनमाना खाया और छोटे भाईने बहुतही खाया । सो उसे शीघ्र अजीर्ण होगया फिर वह मनोजव उसी वनमें मरगया ॥ २२ ॥ यमके दूत उसे कुटीसे यमपुरीको लेगये और चित्रगुप्त उसे देख दूतोंसे यह बात कहने लगे कि ॥ २३ ॥ इस पापीको

अंधतामिस्र नाम नरकमे लेजाओ और फिर इसका शिर फोड़कर कुंभीपाकमें छोड़ दो ॥ २४ ॥ फिर उसे कुंभीपा-
कमें छोड़ा सो उसमें तो वह पापसे नहीं छूटा परंतु जब अंधतामिस्रमें फेंका तो वहां वह प्रसन्नके समान देखता रहा
॥२५॥ दूतोंनें आश्चर्ययुक्त होकर यह बात धर्मराजसे कही । दूत बोले ॥ हमने मनोजवको बड़े तत्ते कुंभीपाकमें भी फेंका
॥ २६ ॥ परंतु उसे पीडा नहीं होती । वह उसमें ऐसे न्हाता है जैसे मनुष्य जलमें न्हाताहो । यमने कहा ॥ उसमेंसे

कुंभीपाके ततः क्षिप्तो नायं तस्मिन्विमुच्यते ॥ अंधतामिस्रके क्षिप्तस्तत्र पश्यति हृष्टवत् ॥२५॥
कुंभीपाकेपि संतप्ते क्षिप्तोस्माभिर्म-
इत्याश्चर्ययुता दूता धर्मराजं व्यजिज्ञपुः ॥ दूता ऊचुः ॥ नोजवः ॥ २६ ॥ न तस्य जायते पीडा स्नाति मर्त्यो यथा जले ॥ यम उवाच ॥ आनी-
यतां ततस्तूर्णमीषत्पुण्यं मनोजवम् ॥ २७ ॥ धर्मराजाज्ञया तैस्तु समानीतोस्य संनिधौ ॥
दृष्ट्वा तं धर्मराजोपि दूतानाज्ञापयत्तदा ॥ २८ ॥ सदास्य ज्ञानशीलत्वात्कुंभीपाको न बाधते ॥
ननान्या कल्पितो दीपः पित्रर्थे गगने शुभः ॥ २९ ॥ ॥ ॥

शीघ्र मनोजवको लेआओ उसका थोड़ा पुण्य है ॥ २७ ॥ धर्मराजकी आज्ञासे वे दूत उसे बांधकर धर्मराजके पास
लेआये फिर धर्मराजने उसे देखकर दूतोंको आज्ञा दी कि ॥ २८ ॥ सदा ज्ञानी होनेसे इसे कुंभीपाकमें पीड़ा नहीं
होती और ननानीने जो पिताके अर्थ सुन्दर आकाशदीपक चढ़ाया था ॥ २९ ॥ ॥ ॥

वह उसके हाथसे नहीं गिरा उसका वीसवें अंशका फल इसे भी मिला वही पुण्य तामिस्रका नाशक है ॥ ३० ॥ इन दोनों पुण्यके भारसे इसका नरकमें वास नहीं होसक्ता। इसलिये इसे पिशाच योनिमे करदो वहां यह अपने कर्मका भोग भोगेगा ॥३१॥ फिर यह पिशाच होकर उसी पीपलपर ग्रहादिकोंको दिये हुये अन्नको खाकर वहां रहा करै ॥३२॥ एक समय कृष्णपक्षकी चौदसके दिन जव संध्याकाल आया और वह ननानी पिताके अर्थ दीपदान करनेको हुई

न क्षिप्त एव तद्धस्तात्तद्विंशांशफलं तु तत् ॥ अनेन लब्धं तस्यैव पुण्यं तामिस्रनाशनम् ॥ ३० ॥
पुण्यद्वयभरादस्य निरये वसतिर्नहि ॥ तस्मात्पिशाचदेहोयं क्रियतां कर्मभोगभाक् ॥ ३१ ॥
ततः पिशाचो भूत्वासौ तस्मिन्नेव तु पिप्पले ॥ ग्रहादिभ्यो दत्तमन्नं भुक्त्वा तत्रैव तिष्ठति ॥ ३२ ॥
एकदा तु चतुर्दश्यां संध्याकाले उपस्थिते ॥ कृष्णपक्षे दीपदानं कर्तुं पितृहिताय सा ॥ ३३ ॥
ननान्युपगतो भर्ता मृगयार्थं क्वचिद्गतः ॥ स्नात्वा स्वच्छांवरं धृत्वा नानालंकारभूषिता ॥ ३४ ॥
ययौ सा दीपदानार्थं आक्रांता तेन रक्षसा ॥ पूर्वजन्मनि संवंधो येषां येषां प्रजायते ॥ ३५ ॥

॥ ३३ ॥ उस समय ननानीका पति तो कहीं शिकार खेलने चला गया। और वह स्नानकर धुले सुन्दर वस्त्र पहिर भांति २ के आभूषण पहिर ॥ ३४ ॥ दीपदानके लिये गई सोही उसपर राक्षस चढ़ बैठा। जिन २ का पूर्वजन्मका नाता होता है ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

भूत उसेही पकड़ते हैं दूसरोंको कभी नहीं पकड़ते । ज्यौंही भूतने उस तरुण स्त्रीको पकड़ा सोही वह क्षणभरमें नंगी होगई ॥ ३६ ॥ और अपने भूषण आदि उतार कर फेंक दिये कभी हंसे कभी रोवै कभी गीत गावै कभी अपना शरीर कूटै ॥ ३७ ॥ कभी नाचै फिर क्षणभरमें दातोंको चवावै । सव भील और भिल्लनी और उसके दास दासी ॥ ३८ ॥ भाई बेटे सव आगये और हजारों मनुष्य जुड़ गये । कोई कहै इसे बात आगई कोई कहै इसपर पिशाच है

त एव भूतैर्धर्ष्यंते न कदाचित्परे जनाः ॥ तेन धृष्टा तु सा वाला क्षणान्नमा वभूव ह ॥ ३६ ॥
त्यक्त्वा भूषणकाद्यं च जहास च रुरोद च ॥ गीतं गायति चात्मानं कदाचित्ताडयत्यपि ॥ ३७ ॥
नृत्यं च कुरुते क्वापि क्षणाद्दन्तांश्च खादति ॥ सर्वे भिल्ला भिल्लपत्न्यस्तद्दासा दासिकास्तथा ॥३८॥
भ्रातृपुत्रादिकाः सर्वे आगतास्तु सहस्रशः ॥ कश्चिद्वदति वातोयं कश्चिद्वक्ति पिशाचकः ॥ ३९ ॥
डाकिनीं शाकिनीं केचिदाभिचारमथापरे ॥ यक्षदेवं दानवं च धत्तूरादिकभक्षणम् ॥ ४० ॥
तर्कयंति परे लोका दुष्टजीवस्य दंशनम् ॥ ध्रियतां वध्यतामेके धूप्यतां दीप्यतां परे ॥ ४१ ॥

॥ ३९ ॥ कोई कहै डाकिनी शाकिनी हैं कोई कहै किसीने इसपर मूठ फैंकी है कोई कहै इसपर यक्ष देव दानव है कोई कहै इसने धतूरा खा लिया है ॥ ४० ॥ और कितनेही लोग कहने लगे इसे किसी दुष्ट जीवने काट खाया है कोई कहै इसे पकड़कर वांधलो कोई कहै इसे धूप दो और दिया चढ़ाओ ॥ ४१ ॥ ॥ ॥

कोई उसे झाड़ा फूकी करते हैं और दवाई भी खिलाते हैं। इस अवसरमें उसका पति चित्रभानु आगया ॥ ४२ ॥ उसने मंत्र जाननेवालोंको बुलाया और वहुतसे उपाय किये। उसने किसीको मारा किसीसे कभी जानेके लिये कहा ॥ ४३ ॥ किसीको वहुतसा डराया कभी उलटा कहने लगती है कभी कहती है कि मैं नहीं जाऊंगी वलदान लेकर जाऊंगी ॥ ४४ ॥ कभी रस्सीके बांधनेसे अधिक मूर्छित होकर बैठ जाती है। कभी उलूखलको तोड़ती है कभी

कश्चिन्मंत्रयते तां च भेपजं चापि कुर्वते ॥ एतस्मिन्नंतरे भर्ता चित्रभानुः समाययौ ॥ ४२ ॥
आकारितास्तु मंत्रज्ञा उपाया वहवः कृताः ॥ कंचित्ताडयते सापि गन्तुं वदति कर्हिचित् ॥४३॥
कंचिद्भीषयतेत्यर्थं वलगत्यपि कदाचन ॥ वलिदानादि गृह्णामि गच्छामीति वदत्यपि ॥ ४४ ॥
वद्धा क्वचिद्दोरकेण तिष्ठत्यतिविमूर्छिता ॥ भिनत्त्युलूखलं क्वापि गृहं पातयति क्वचित् ॥४५॥
एवं जाता त्वसाध्या सा गृहमध्ये निवेशिता ॥ एकदा तेन मार्गेण वहुशः केरला जनाः ॥ ४६ ॥
पंचह्रदोदकं गृह्य केरलेश्वरशासनात् ॥ भाद्रे मासि प्रस्थितास्ते तद्गृहे वसतिः कृता ॥ ४७ ॥

घरको गिराती है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार जब वह असाध्य होगई तो लोगोंने उसे घरमें लाकर धरी ॥ एक समय उस मार्गसे वहुतसे केरल मनुष्य ॥ ४६ ॥ भादोंके महीनेमें पंचगंगाका जल लेकर केरलेश्वरपर चढ़ाने लिये जाते थे सो वे उस घरमें ठहरे ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उसमेंसे किसी पंडितने रात्रिको पंचगंगाका स्तोत्र । रामरक्षा और विष्णुपंजर आदिका पाठ किया ॥ ४८ ॥ उसे सुनकर वह पिशाच अपने मनमें बड़ा सुखी हुआ । और बंधन आदिको तोड़कर और उस चेष्टाको छोड़ दीनी कि जिससे वह स्त्री भी अच्छी होगई ॥ ४९ ॥ फिर उस भक्तने शयनके लिये विस्तरा विछाया और स्थान शुद्धिके लिये उस यात्रीने वहां पंचगंगाका जल छिड़का ॥ ५० ॥ हे गरुड ! छिड़कतेमें उस भूतके सिरपर भी इधर उधर बूंदे पड़ीं और

तेषां मध्ये सुधीः कश्चिद्रात्रौ पांचनदस्तवम् ॥ अपठद्रामरक्षादि विष्णुपंजरकादि च ॥ ४८॥
तच्छ्रुत्वा तु पिशाचोसौ जातः सुस्वस्थमानसः॥ संछिद्य बंधनाद्यं च त्यक्त्वा चेष्टां सुसंस्थिता॥४९॥
ततस्तेन तु भक्तेन शयनास्तरणः कृतः ॥ चिक्षेप स्थानशुद्ध्यर्थं पंचगंगोदकं च तैः ॥ ५० ॥
इतस्ततस्तच्छिरसि विंदवः पतिताः खग ॥ ज्ञानं तस्य समुत्पन्नं विंदुस्पर्शनमात्रतः ॥ ५१ ॥
उवाच वचनं चारु के भवंतः समागताः॥ तोयमेतत् स्थितं कुत्र किं वा ज्ञानोदकं त्विदम् ॥५२॥
मह्यं किंचित्प्राशनार्थं दीयतां स्वल्पमेव हि॥ कृपालुना तेन दत्तं जलं पांचजलं शुभम् ॥ ५३ ॥

बिंदुओंके स्पर्शमात्रसे उसे ज्ञान होगया ॥ ५१ ॥ और सुन्दर वचन बोला कि आप कहांसे आयेहो । यह जल कहांका धरा है अथवा यह ज्ञानका जल है ॥ ५२ ॥ मुझे थोड़ासा आचमनके लिये दो । फिर उस कृपालु ब्राह्मणने पंचगंगाका पवित्र जल दिया ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उसके पीतेही छिनभरमें उसकी निर्मल बुद्धि होगई । और पूर्वजन्मकी तथा यमलोकमें जानेकी याद आई ॥ ५४ ॥ और उसने जाकर भाईके दोनों चरण पकड़ लिये और रोने लगा । और अपनी दशा कही और कहा कि इसका उपाय करो ॥ ५५ ॥ उसके भाईने सब यात्रियोंसे पूछा और वे बड़े आदरसे बोले ॥ यात्री कहने लगे । काशीके

तत्पीत्वा विमला बुद्धिः क्षणादेवाभ्यजायत ॥ पूर्वजन्म च संस्मार यमलोकागमं तथा ॥५४॥ गत्वा भ्रातुः स चरणौ धृत्वा दीनं रुरोद ह ॥ आत्मनश्च गतिः प्रोक्ता उपायोस्य विधीयताम् ॥ ५५ ॥ भ्रात्रा सर्वे कार्पटिका पृष्टास्ते ऊचुरादरात् ॥ कार्पटिका ऊचुः ॥ जानाति काशी-तीर्थानां महिमानं स ईश्वरः ॥ ५६ ॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण पिशाचोभूत्स सात्विकः ॥ असम्भ्यं दीयते राज्ञा एको ग्रामश्च वार्पिकम् ॥ ५७ ॥ स्वर्णमुद्राशतं काशीजलाहरणहेतवे ॥ गम्यतां पंचदिवसैर्भवद्भिः काशिकापुरीम् ॥ ५८ ॥ तिष्ठंति पंडितास्तत्र विचार्या गतिरुत्तमा ॥ एवं तद्वचनं श्रुत्वा गृहीत्वा साधनं बहु ॥ ५९ ॥ ॥ ॥

तीर्थोंकी महिमाको तो वह ईश्वर जानता है ॥ ५६ ॥ कि जिसके जलके स्पर्शमात्रसे पिशाच सात्विकरूप होगया । राजा हमें एक गांव दे और हरवर्ष ॥ ५७ ॥ सौ अशर्फियां काशीसे गंगाजल लानेको दिया करै । और तुम पांच दिनमें काशीपुरीको जाओ ॥ ५८ ॥ वहां पंडित हैं और वे इसकी उत्तम गतिको विचारेंगे । इसप्रकार उनका वचन

सुनके और बहुतसी सामग्री लेकर ॥ ५९ ॥ उसने कुटुंबसहित शिवजीके रहनेकी काशीपुरीके दर्शन किये । काशीमें
घुसते समय शिवजीके गणोंने उसे बाहर करदिया ॥ ६० ॥ उसके शरीरसे वह पिशाच बड़ी करुणासे बोला । हे भाई!
ये गण मुझे रोकते हैं सो मेरा उद्धार करो ॥ ६१ ॥ उसका यह वचन सुनकर चित्रभानु आया और काशीमें पण्डि-
तोंसे यह सब वृत्तांत कह सुनाया ॥ ६२ ॥ उन्होंने उसकी मोक्षके लिये बताया कि आकाशदीपक जलाना चाहिये ।

सकुटुंबः काशिकां स ददर्श हरसेविताम् ॥ काशी प्रवेशकाले तु गणै रौद्रैर्निराकृतः ॥ ६० ॥
तच्छरीरात्पिशाचोसौ उवाच करुणं वचः ॥ भ्रातर्गणा मां रुंधंति ममोद्धारो विधीयतां ॥ ६१ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य चित्रभानुः समागतः ॥ काश्यां सकलवृत्तांतं पंडितेभ्यो न्यवेदयत् ॥ ६२ ॥
तन्मोक्षणाय चादिष्टो देय आकाशदीपकः ॥ आकाशदीपदानेन पिशाचोपि समागतः ॥ ६३ ॥
कृत्वा सर्वेपि ते काशीवासं मोक्षमवाप्नुवन् ॥ ६४ ॥
वाराणस्यां ननान्याः स पुत्रोभूद्गुणसंयुतः ॥ नमो यमाय रुद्राय कांतारपतये नमः ॥ ६५ ॥
नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे ॥

और काशीमें ननानीका वह पुत्र गुणयुक्त होगया और उन्ह
आकाशमें दीपक जलानेसे पिशाच भी आया ॥ ६३ ॥ सबने काशीवास करके मोक्ष पाई ॥ ६४ ॥ "मरे हुये पितरोंको, प्रेतोंको धर्म और विष्णुभगवान्को नमस्कार है, यम, और वनखंडेश्वर शिवजीको नमस्कार है" ॥ ६५ ॥

इसमंत्रसे जो मनुष्य पितरोंको आकाशदीपक देते हैं वे नरकमें जाकर भी निश्चय कर्के ॥ ६६ ॥ उत्तम गतिको पाते

मंत्रेणानेन ये मर्त्याः पितृभ्यः खे तु दीपकम् ॥ प्रयच्छंति गता ये स्युर्नरके यांति तेपि वै ॥ ६६ ॥ उत्तमां गतिं गच्छंति दीपदानं मयेरितम् ॥ लक्ष्मीसंततिसिद्ध्यर्थमारोग्याय प्रदीपयेत् ॥ ६७ ॥ आकाशे दीपदानं तु तथा श्रीविष्णुतुष्टये ॥ ६८ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये दीपमहिमाकथनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

हैं। लक्ष्मी संतति और आरोग्यता इनके पानेके लिये मेरे कहेहुये दीपदानको करै ॥६७॥ और विष्णुभगवान्के प्रसन्नार्थ आकाश दीपक जलावै ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये दीपमहिमाकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



॥ वालखिल्या बोले ॥ कार्तिकके कृष्णपक्षमें वत्सद्वादशी होती है सो वत्सपूजनमें गोधूलिकालव्यापिनी लेनी चाहिये ॥ १ ॥ पहिले दिन वटके नीचे वछड़ेकी पूजा करनी चाहिये और दूसरे दिन वछड़ेवाली एक रंगकी सीधी और दुधारी गौको चंदन आदिसे लेपन करके पुष्पमालाओंसे उसका पूजन करै ॥ २ ॥ हे युधिष्ठिर ! उसदिन तेलका

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्त्तिकस्यासिते पक्षे द्वादशी वत्ससंज्ञिता ॥ गोधूलिकालसंयुक्ता द्वादशी वत्सपूजने ॥ १ ॥ वत्सपूजा वटे चैव कर्त्तव्या प्रथमे हनि ॥ सवत्सां तुल्यवर्णां च शालिनीं गां पयःस्विनीम् ॥ चंदनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् ॥ २ ॥ तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं युधिष्ठिर ॥ गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि क्षीरं च वर्जयेत्॥ ३ ॥ दिनांते सूर्यबिंवार्धादुभयत्र घटीदलम् ॥ ततो नीराजनं कार्यं निरीक्षेच्च शुभाशुभम् ॥ नानादीपान्प्रकल्प्यादौ स्वर्णपात्रादिसंस्थितान् ॥ ४ ॥ नीराजयेद्दीपपूर्वं निरीक्षेत शुभाशुभम् ॥ लापयित्वा सर्वदीपानुत्तराभिमुखान्न्यसेत् ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

पका, और वटलेका पका, गायका दूध, गोघृत, दधि और क्षीर इनको त्याग दे ॥ ३ ॥ फिर दिनके अंतमें सूर्यास्तसे दोघड़ी एक आगेकी और एक पीछेकी उस वीचमें आरती करनी चाहिये और उससे शुभअशुभ देखै । पहिले स्वर्णके थालमें धरकर बहुतसे दीपक जलाकर ॥ ४ ॥ दीपकसे आरती करै और शुभअशुभ देखे । और सब दियोंको जला-

कर उत्तरकी ओर मुख करके धरै ॥ ५ ॥ मुख्य दीपक नौ कहे हैं और भी भलेही जलावै । जो तेज और शिखायुक्त ज्वाला दक्षिणकी ओर जाय ॥ ६ ॥ और स्थिर रहै तौ सौख्य करनेवाली है इससे विपरीत दुःखदायिनी है ॥ और कार्तिकके कृष्णपक्षमें द्वादशीसे लेकर पांच ॥ ७ ॥ दिन सायंकालमें मनुष्योंको आरतीकी विधि कही है। पहिली दिनकी आरती एक पक्षके शुभाशुभको जतानेवाली है दूसरे दिनकी एक मासके ॥ ८ ॥ तीसरे दिनकी एक ऋतुकी,

मुख्या दीपा नव प्रोक्ता अन्यानपि च कल्पयेत् ॥ ज्वाला चेद्दक्षिणासंस्था सतेजस्का शिखान्विता ॥ ६ ॥ स्थिरा चेत्सौख्यदा प्रोक्ता विपरीता तु दुःखदा ॥ कार्तिके कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पंचसु ॥७॥ तिथिषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः ॥ पक्षं संसूचयंत्यादौ द्वितीयो मासमेककम् ॥८॥ तृतीये ऋतवः प्रोक्ताश्चतुर्थे त्वयनं तथा ॥ वर्षं तु पंचमे दीपे शुभाशुभं विनिर्णयेत् ॥ ९ ॥ सूर्यांशसंभवा दीपा अंधकारविनाशकाः ॥ त्रिकाले मां दीपयंतु दिशंतु च शुभाशुभम् ॥१०॥ अभिमंत्र्य च मंत्रेण ततो नीराजयेत्क्रमात् ॥ आदौ देवांस्ततो विप्रान्हस्तिनश्च तुरंगमान् ॥११॥

चौथे दिनकी ६ महीनेकी, पांचवें दिनकी एक वर्षका शुभाऽशुभ निर्णय कराती है ॥ ९ ॥ और दीपक जलाकर यह प्रार्थना करै कि ॥ सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुये और अंधकारके नाशक ऐसे दीपक मुझे तीनों कालमें प्रकाशित करैं और जो शुभअशुभ फल हो मुझे बतावें ॥ १० ॥ इसमंत्रसे अभिमंत्रित करके क्रमपूर्वक नीराजन करै । पहिले देवताओंको फिर

ब्राह्मणोंको, हाथी और घोडोंको, अपनेसे बडोंको, श्रेष्ठोंको और छोटोंको माताको आदि लेकर स्त्रियोंको फिर नीराजन किये दीपकोंको अपने २ स्थानपर धरदे ॥११॥१२॥ जो रूखेसे जलें तो लक्ष्मीका नाशहो और श्वेत रंगहो तो शत्रु, नाशहो वहुत लालहों तो युद्ध हों और जो काली शिखा होतो मृत्यु होय ॥ १३ ॥ एक एकांगी नाम अही-रनी थी उसने इस व्रतको किया था सो वह तीन वर्षमें धनधान्य युक्त होगई ॥१४॥ ऋषि बोले ॥ एकांगी कौन थी और

ज्येष्ठान् श्रेष्ठान् जघन्यांश्च मातृमुख्यांश्च योषितः ॥ ततो नीराजितान्दीपान् स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत् ॥ १२ ॥ रूक्षेर्लक्ष्मीविनाशः स्यात् श्वेतैरन्यक्षयो भवेत् ॥ अतिरक्तेषु युद्धानि मृत्युः कृष्णशिखेषु च ॥ १३ ॥ एकांगी नाम गोपाला तयैतच्च व्रतं कृतं ॥ धनधान्यसमायुक्ता जाता वर्षत्रयेण सा ॥ १४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ का एकांगी कथं जाता धनधान्यसमन्विता ॥ एत-द्विस्तरतः श्रोतुमिच्छंत्येते तपोधनाः ॥ १५ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ आसीत्पुरा हृषीकेशः सचैलो धेनुपालकः ॥ गवामष्टसहस्राणि तद्गृहे निवसंतिच ॥ १६ ॥ ॥

वह कैसे धनधान्य युक्त होगई सो हे तपोधन ! उसे हम विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं ॥ १५ ॥ वालखिल्या बोले ॥ पूर्वकालमें हृषीकेश नाम एक अहीर धेनु पालनेवाला था और उसके घरमें आठ हजार गौयें रहती थीं और बछड़ोंकी तथा नगरकी गायोंकी कुछ गिनती नहीं थी ॥ उसके एक कन्या हुई कि जिसका नाम एकांगी विख्यात

हुआ ॥ १६ ॥ १७ ॥ और वह ऐसी वातोंमें आगया कि जिसके पुत्र नहीं होता उसे स्वर्गलोक नहीं मिलता सो उस गोपालकने पुत्रके लिये वड़ा यत्न किया ॥ १८ ॥ उस घोसीने यहां हजारों गौदान और सैंकड़ो नीलोत्सर्ग किये तव पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ उनका दुंदुभि नाम पुरोहित वड़ा कुटिल धूर्त और महालोभी था ॥ २० ॥ उसने लोभकी

वत्सादीनां न संख्यास्ति तथा लोकगवामपि॥तस्यैका कन्यका जाता एकांगी नाम विश्रुता॥१७॥
नापुत्रस्य तु लोकोस्तीत्यादिवाक्यैः प्रपंचितः ॥ पुत्रार्थं तु महायत्नं सचैलोसावथाकरोत् ॥ १८ ॥
गोदानानां सहस्रं तु नीलोत्सर्गशतं तथा ॥ कृतं सचैलकेनात्र ततः पुत्रोभ्यजायत ॥ १९ ॥
दुंदुभिर्नामविख्यातस्तेषामासीत्पुरोहितः ॥ अतीव कुटिलो धूर्तो लोभिनां स शिरोमणिः ॥ २० ॥
लोभेच्छया तु तेनोक्तं मूलजातो हि वालकः ॥ अन्यन्न पृष्टं किमपि किंचिद्दत्त्वा विदायितः ॥२१॥
आकारिता पितृभ्यां तु एकांगी चंचलेक्षणा ॥ नयेमं वालकं शीघ्रं मुखे दत्त्वा घृतं मधु ॥ २२ ॥
क्षिपस्व तूर्णं गंगायामस्माकं सुखवृद्धये ॥ एकांगी तं समादाय दययाविष्टमानसा ॥ २३ ॥

इच्छासे कह दिया कि यह वालक मूल नक्षत्रमें हुआ है सो घोसीने कुछ नही पूछा और उसे कुछ देकर विदाकर दिया ॥ २१ ॥ फिर माता पिताने चंचल नेत्रवाली एकागीको वुलाया और कहा कि इस वालकके मुखमें घी और शहद धरकर इसे लेजा ॥२२॥ और हमारे सुख वृद्धिके लिये इसे गंगाजीमे फैकआ और एकांगी उसे लेकर मनमें दया

विचारती हुई ॥ २३ ॥ वनमें गई और एक बड़े वृक्षके कोटरमें उसे धर आई और दिन रातमें वार २ आकर उसे दूध पियाकर फिर अपने घर चली जाती यों यह बालक एक वर्षमें सुन्दर बोलने लगा ॥२४॥२५॥ और नाना प्रकारके पक्षी और चौपायोंकी भाषा सुन २ कर बोलै। और एकांगी भी देह यौवनमें भरगई ॥ २६ ॥ दुदुभिने एकांतमें

आस्थापयद्गह्वरे तं महावृक्षस्य कोटरे ॥ वारंवारं समागत्य दिवसेषु निशासु च ॥ २४ ॥
तस्मै पयः पाययित्वा पुनर्याति स्वकं गृहं ॥ जातोसौ वर्षमात्रेण कलभाषी स बालकः ॥२५॥
श्रुत्वा श्रुत्वा वदद्भाषां नानापक्षिचतुष्पदाम् ॥ एकांग्यपि च संजाता यौवनाक्रांतदेहिका ॥ २६ ॥ एकांगीं दुंदुभिः प्राह एकांते वचनं लघु ॥ मां त्वं वरय भद्रं ते कुलपूज्योस्मि तेऽनघे ॥ २७ ॥ स्वर्णाढ्यां ते करिष्यामि नानावस्त्रोपशोभिताम् ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा एकांगी वाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥ धिङ्मूर्ख काणदुष्टात्मन्नहं त्वाभीरकन्यका ॥ ब्रह्मबीजसमुत्पन्नः कथं मा वरयिष्यसि ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥

धीरेसे एकांगीसे यह बात कही कि हे निष्पाप ! मैं तेरा कुल पूज्यहूं तू मेरे साथ व्याह करले तेरा भला होय ॥ २७ ॥ तुझे सुवर्णसे लाद दूंगा और अनेक प्रकारके सुन्दर २ वस्त्र पहिराऊंगा। यह बात सुनकर एकांगीने कहा ॥ २८ ॥ हे मूर्ख ! हे काण ! हे दुष्टात्मा ! मैं तो अहीरकी कन्याहूं ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न हुआ मुझे कैसे वरेगा ॥ २९ ॥

दुंदुभि वोला ॥ अच्छे ब्राह्मणोंको चारो वर्णकी कन्या ब्याहनी चाहियें ये ब्रह्माजीने कहा है इसलिये तू हमारी भार्या होजा ॥ ३० ॥ एकांगी वोली ॥ मैं भिखारी काणे और कुरूपको नही वरूंगी । मै तो सुशील और स्वरूपवान् भर्ताको वरूगी ॥ ३१ ॥ दुंदुभिने अनेक भांतिसे उस वालाको लोभ दिया । और जव वह उसके वशमे नहीं हुई तव

दुंदुभिरुवाच ॥ चतुर्वर्णा कन्यकापि विवाह्या ब्राह्मणैः शुभैः ॥ पितामहेनेदमुक्तं तस्माद्भार्या भवस्व नः ॥ ३० ॥ एकांग्युवाच ॥ याचकं न वरिष्यामि न च काणं कुरूपकम् ॥ सुशीलं च सुरूपं च भर्त्तारं वरयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ नानाप्रकारैः सा बाला दुंदुभेनाथ लोभिता ॥ नाभूद्यदा तस्य वश्या तदा क्रोधं चकार सः ॥ ३२ ॥ अन्याय्ये भ्रियतां चेयं ताडनीया मया तथा ॥ एकांते वा घातनीया छिद्रमन्वेषयाम्यहम् ॥ ३३ ॥ इत्थं विचार्य विप्रोसौ तस्याः पश्यति कौतुकम् ॥ निलीय दिवसे विप्रो तया सार्द्धं गतो वने ॥ ३४ ॥ अपश्यद्दूरतश्चेष्टां तस्या दुष्टो द्विजाधमः ॥ तया निष्काशितो वालो दुग्धं दत्त्वा यथेप्सितम् ॥ ३५ ॥

उसने क्रोध किया ॥ ३२ ॥ अन्यायमें इसे पकडूं और इसे ताड़नादूं वा एकांतमें मार डालूं वा मैं इसका पहिले छिद्र टटोलूं ॥ ३३ ॥ ऐसा विचारकर यह ब्राह्मण उसके कौतुक देखने लगा । और दिनमे छुपकर ब्राह्मण उसके पीछे २ वनको गया ॥ ३४ ॥ और उस दुष्ट नीच ब्राह्मणने दूरसे उसका काम देखा कि उसने पहिले वालकको निकाला

और उसे पेट भरके दूध पिलाकर ॥ ३५ ॥ और थोडी देर खिलाकर और फिर वहां उसे रखकर गायोंकी रक्षा करने लगी । ब्राह्मणने यह देखलिया ॥ ३६ ॥ फिर वह शीघ्र घर लौट आया । और अहीरसे यह कहा कि मैं गंगाके किनारे समिधा और कुशा लेने गया था ॥ ३७ ॥ सो मैने वहा एकांगीको यवनोंके साथ क्रीड़ा करती देखी है और उसके यवनसे बालक उत्पन्न हुआ है और उसने उसे कोटरमे धर रक्खा है ॥ ३८ ॥ अरे ! तेरा कुल नाश होगया

क्रीडयित्वा क्षणं तत्र पश्चात्संस्थापितः पुनः ॥ अकरोच्च गवां रक्षां विप्रेणेत्थं विलोकितं ॥ ३६ ॥
आगत्यासौ गृहे शीघ्रं सचैलं वाक्यमब्रवीत् ॥ अहं समित्कुशाद्यर्थं गतो भागीरथीतटे ॥ ३७॥
एकांगीं तत्र संदृष्टा क्रीडंती यवनैः सह ॥ यवनाद्बालको जातः स्थापितः कोटरे स च ॥ ३८ ॥
अहो नष्टं तव कुलं नरकेषु पतिष्यति ॥ जात्यग्रे कथयिष्यामि नो चेत्तां त्यज दुर्मते ॥ ३९ ॥
तस्याः पुत्रं च तां चापि बद्धा पृष्ठे वृषस्यच ॥ वनमध्ये त्यज क्षिप्रं बहिष्कारोन्यथा भवेत् ॥ ४०॥
राज्ञा च दंडनीयस्त्वं जातिभिश्च बहिष्कृतः ॥ कन्यकारक्षणादेव नरकेपि पतिष्यसि ॥ ४१ ॥

तू नरकोंमें गिरैगा सो हे दुष्ट ! या तो उसे त्याग दे नहीं तो तेरी जातिके आगे कहूंगा ॥ ३९ ॥ उसे और उसके पुत्रको बैलकी पीठपर बांधकर शीघ्र वनमें छोड़ दे और किसी भांति तेरा छुटकारा नहोगा ॥ ४० ॥ तू जातिसे भी निकाला गया और राजासे भी दंड पाने योग्य है । और कन्याको रखनेसे नरकमें भी गिरैगा ॥ ४१ ॥ ॥

जब दुंदुभिने उसे यों भय दिखाया तो सचैल उन दोनोंको वैलकी पीठपर बाधकर और वनमे छोड़ आप गहरे वनमें चलागया ॥ ४२ ॥ वैल भी उस एकांगीको लेकर दैव योगसे हरिद्वार पहुंचा और वहां उस एकांगीका बंधन ढीला होगया ॥ ४३ ॥ सो ही बंधनसे एकांगी निकल पड़ी और वह बालक भी छूट पड़ा और उस लड़कीने उसी बंधनसे उस वैलको बाध लिया ॥ ४४ ॥ वह वनके मार्गोंको जानगई थी सो वैलपर लादकर हरी २ घास और कंद आदि

सचैलस्त्रासितस्तेन जगाम गहनं वनम् ॥ तावुभौ वृषपृष्ठे तु बद्ध्वा त्यक्त्वा वने तदा ॥ ४२ ॥
वृषोपि तां समादाय गतो दैवस्य योगतः ॥ हरिद्वारं तया सार्द्धं बंधः शिथिलतां ययौ ॥४३॥
बंधाद्विनिर्गता सा तु बालकोपि विमोचितः ॥ वृषभस्तेन पाशेन बद्धो बालिकया तथा॥४४॥
जानाति वनमार्गान्सा वृषेणादाय शाद्वलं ॥ कंदादिकं भक्षयित्वा कुटिं तत्र चकार सा ॥४५॥
तृणान्यानीय विक्रीते तेनैव वृषभेण सा ॥ पुष्णाति तेन द्रव्येण भ्रातरं वृषभं तथा ॥ ४६ ॥
आगते कार्तिके मासि लोकाः स्नानार्थमाययुः ॥ दानार्थं तु समानीतास्तैर्गावो देशदेशतः॥४७॥

लावै और उसे खाय तथा उसने वहां वनमें एक कुटी वनाली ॥ ४५ ॥ वह उसी वैलपर धरकर घास लावै और वेचै । और उसी धनसे भाई और वैलको पालै ॥ ४६ ॥ जब कार्तिकका महीना आया तो लोग स्नानके लिये आये और वे देश देशसे दानके लियें गायें लाये ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥

और उन्होंने इसे ग्वालिनी जानकर रक्षा करनेके लिये अपनी गायोंको देदिया और हे गरुड़ ! इसने भी गौओंकी वड़ी भारी सेवा करनी आरंभ करदीनी ॥ ४८ ॥ और लोगोंने अपनी गायोंको देखकर इसकी वहुत प्रशंसा करी। और कार्तिक वदी एकादशीके दिन वैष्णवोंने गोपूजा करी ॥ ४९ ॥ उस पूजाको देखकर उस वालिकाने भी विधिसे गोपूजा करी। और इसी प्रकार वालिका वडी भक्तिसे तीन वर्षतक करती रही ॥ ५० ॥ और हे मुनीश्वरो !

इमां गोपालिकां ज्ञात्वा रक्षणाय ददुश्च ते ॥ अनया भूयसी सेवा आरब्धा तु गवां खग ॥४८॥
संदृश्य लोकाः स्वीया गा बव्हेनामभ्यनंदयत् ॥ ऊर्जे सिते हरेस्तिथ्यां गोपूजा वैष्णवैः कृता॥४९॥
तां दृष्ट्वा वालिका सापि पूजां चक्रे यथाविधि ॥ अतिभक्त्या वालिकया चेत्थं वर्षत्रयं कृतम्॥५०॥
तस्यां दैववशात्तत्र सचैलेशः समाययौ ॥ स्नानाय कार्तिके मासे गंगाद्वारे मुनीश्वराः ॥ ५१ ॥
दृष्टा वने वालिका सा वनकौतुकदर्शिना ॥ पृष्टोदंतं ततस्तस्याः पाणिग्रहमचीकरत् ॥ ५२ ॥
धिकृतो दुंदुभिस्तेन तया शप्तोप्यसौ पुनः॥ अद्यारभ्य नरा लोके काणे विश्वासकारकाः ॥५३॥

वहां उसी कुटीमें दैववशसे वह अहीर कार्तिकमासमें गंगाके किनारे स्नान करने आया ॥ ५१ ॥ और वनके कौतुकोंको देखते २ उसने इस लड़कीको भी देखा और उसका हाल पूछकर उसका विवाह करदिया ॥ ५२ ॥ उसने दुंदुभिको धिक्कारा और उस एकागीने भी फिर उसे शापदिया कि आजसे लेकर जो मनुष्य संसारमें काणे मनुष्यपर विश्वास

करैंगे ॥ ५३ ॥ वे अवश्य नाश होंगे मैं कार्तिककी सौगन्द खातीहूं । यह कहकर उस सचैलको वह बालक सौंप दिया ॥ ५४ ॥ और हे खग ! उस एकांगीने हृषीकेशको गोव्रतका उपदेश किया और माता पिताको धन आदि देकर वह पतिके साथ गई ॥ ५५ ॥ इसलिये कार्तिककी द्वादशीके दिन गौका पूजन करना चाहिये । जो मनुष्य इस गोव्रतके

अवश्यं विलयं यांति कार्तिकेन शपाम्यहम् ॥ इत्युक्त्वा चार्पितस्तस्मै सचैलाय सबालकः ॥५४॥ गोव्रतं तु हृषीकेशस्योपदिष्टं तया खग ॥ पित्रोर्धनादिकं दत्त्वा भर्त्रा सार्द्धं जगाम सा ॥ ५५ ॥ तस्माद्गोपूजनं कार्यं द्वादश्यां कार्तिकस्य तु ॥ एतद्गोव्रतमाहात्म्यं श्रुत्वा कुर्वंति ये नराः ॥ ५६ ॥ ते गोव्रतप्रभावेण न गोभिर्विच्युता भुवि ॥ गोपराधः कृतो यः स्यात्सा व्रताद्विलयं व्रजेत् ॥५७॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये गोपूजाकथनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

माहात्म्यको सुनकर करैंगे ॥ ५६ ॥ वे गोव्रतके प्रभावसे पृथ्वीपर गौओंसे रहित नही रहैंगे और जिसने गायोंका अपराध किया होगा वह व्रतके प्रभावसे जाता रहेगा ॥ ५७ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये गोपूजाकथनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥



॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां शुभे मासिच कार्तिके ॥ दीपोत्सवसमीपे तु व्रत-मेतत्समाचरेत् ॥ १ ॥ प्रातः स्नात्वा त्रयोदश्यां कृत्वा वै दंतधावनम् ॥ त्रिरात्रनियमं कृत्वा गोविंदे भक्तितत्परः ॥ २ ॥ कार्य एतद्व्रतस्यांते तथा गोवर्द्धनोत्सवः ॥ त्रिमुहूर्ताधिका ग्राह्या परवेधो न दोषभाक् ॥ ३ ॥ कार्तिकस्याऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे ॥ यमदीपं वहिर्द-द्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥ ४ ॥ एकदा धर्मराजेन दूताः सर्वेपि चैकतः ॥ कृत्वा प्रोवाच वचनं सत्यं ब्रूत ममाग्रतः ॥ ५ ॥ उच्चावचान्मारयतां भवतां जायते दया ॥ कच्चिज्जाताथवा नैव सत्यं ब्रूतममाग्रतः ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वालखिल्या वोले । सुंदर कार्तिकमासमें कृष्णपक्षकी चौदसको दीपोत्सव होता है उसके पासका यह व्रत करै ॥ १ ॥ त्रयोदशीके दिन प्रातःकाल दंतधावन करके स्नान करै फिर भगवान्‌की भक्तिमें तत्पर होकै और तीन दिनका नियम करै ॥ २ ॥ फिर इस व्रतके अंतमें गोवर्द्धनका उत्सव करै । प्रतिपदा तीनमुहूर्तसे अधिक लेनी चाहिये इसमें द्विती-याके वेधका दोष नही होता है । कार्तिक कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको सायंकालके समय घरके वाहर यमका दीपक वलावै यह अपमृत्युको नाश करता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ एक समय धर्मराजने सव दूतोंको इकठ्ठा करके कहा कि मेरे सामने सत्य २ वचन कहना ॥ ५ ॥ छोटे वड़ोंको मारतेमें कभी दया आती है अथवा कभी आई भी थी या नहीं सो मेरे

सामने सच २ कहो ॥ ६ ॥ दूतबोले ॥ इंद्रप्रस्थमें हंसनाम एक महाराज था । एकसमय वह सेनाको साथले शिकारके लिये गया ॥ ७ ॥ वहां उसने एक मृग देखा और शिकार खेलता २ दूर निकल गया । स्त्रीरूपहोनेसे मृगीको तो उसने छोड़ दिया और हरिणके लिये यत्न करने लगा ॥ ८ ॥ और मृग भी राजाको देख कुलांचे मारके भागा फिर

॥ दूता ऊचुः ॥ इंद्रप्रस्थे महाराजो हंसोनाम वभूव ह ॥ एकदा मृगयार्थं स गतः सैन्यसमावृतः ॥ ७ ॥ तत्रापश्यन्मृगं चैकं मृग्या सह विनिर्गतम् ॥ स्त्रीत्वात्त्यक्ता मृगी तेन हरिणार्थं कृतोद्यमः ॥ ८ ॥ मृगोपि भूपतिं दृष्ट्वा पलायनपरो भवत् ॥ तत्पृष्ठेतु हयस्त्यक्तः स्वकीयस्तेन भूभुजा ॥ ९ ॥ अदृश्यतां क्वचिद्याति दृश्योसौ जायते क्वचित् ॥ देशाद्देशांतरं यातः शराग्रेण प्रपीडितः ॥ १० ॥ आमध्यान्हं गतस्तस्य पृष्ठे राजा हयस्थितः ॥ मृगः पलाय्य गतवान् राजापि श्रममूर्छितः ॥ ११ ॥ घर्माक्रांतः पिपासार्त्तो न ददर्श जलं क्वचित् ॥ वटच्छायां क्षणं सेव्य पिपासार्तो जगाम सः ॥ १२ ॥ ॥ ॥

तो उस राजाने अपने घोड़ेको उसके पीछे छोड़ा ॥ ९ ॥ वह मृग कभी तो लोप होजाय और कभी दीखने लगै और तीर लगनेसे दुखी होकर एक स्थानसे दूसरे स्थानमे फिरने लगा ॥ १० ॥ उसके पीछे मध्यान्हतक तो राजा घोड़ेपर चढाहुआ फिरा किया परंतु फिर मृग भागकर चलागया और राजा भी श्रमसे अचेत होगया ॥ ११ ॥ गर्मीके मारे

प्याससे दुखी होनेलगा परंतु कहीं जल नहीं देखा । फिर थोडी देर वटकी छायामें बैठकर वह प्यासाही चलदिया । ॥ १२ ॥ जब उसने नतो सेना देखी और न जलका मार्ग देखा और भूखसे भी दुखी हुआ और घोड़ा भी श्रमसे थक गया ॥ १३ ॥ तब राजाने टीडियोंका शब्द सुना कि जो भूखी चली जांय थी उन्हें देखकर और आप उस वटकी छायामें विश्राम कर उसी मार्गसे चलदिया ॥ १४ ॥ फिर एक कोसपर जाकर उसने एक सरोवर देखा कि जिसमें कमल

सैन्यं न दृष्टवान्मार्गं जलस्यापि न दृष्टवान् ॥ क्षुधया पीडितोप्यासीदश्वोपि श्रमपीडितः ॥१३॥
आडीशब्दं स सुश्राव क्षुधितास्ताः प्रयांति हि ॥ प्रदृश्याश्वास्य तच्छायां चलितस्तेन वर्त्मना ॥१४॥
क्रोशोपरि ददर्शाग्रे कासारं पंकजान्वितं ॥ हंसकारंडवाकीर्णं रथांगैश्च मनोहरम् ॥ १५ ॥
नानापद्मैः परिवृतमुच्चलत्तिमिचंचलं ॥ नृपो दृष्ट्वा तत्तडागं कृतकृत्य इवाभवत् ॥ १६ ॥
स्वयं पीत्वा जलं पश्चादश्वस्यापि निवेदितम् ॥ ददर्श धीवरांस्तत्र नानामत्स्योपहिंसकान् ॥ १७ ॥

खिल रहेथे और हंस कारंडव, और चक्रवाक उसमें तैर रहेथे और वह बड़ा मनोहर था ॥ १५ ॥ उसमें अनेक प्रकारके कमल खिल रहे थे और उसका जल बड़े मत्स्योंके उछलनेसे चंचल था । राजा उस तालावको देखकर कृतकृत्यके समान होगया ॥ १६ ॥ पहिले आप जल पीकर फिर उसने घोडेको पिलाया और वहा उसने अनेक भातिकी मछलियोंको मारनेवाले धीवरोंको देखा ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

महाराजने उनसे पूछा कि क्या कोई गांव पास है । धीमर बोले ॥ एक कोस आगे नगरके समान एक नगवान् ग्राम है ॥ १८ ॥ वहांका मुखिया संवर्त नाम राजा है उसने अपने द्वारपर पथिकोंके ठहरनेके लिये धर्मशाला ॥ १९ ॥ बनवा रक्खी है तुमको सुखकी इच्छासे वहां जाना चाहिये वहां स्नान, पान आदि और ईंधन सहजमें मिल सक्ता है

तानपृच्छन्महाराजो ग्रामोस्ति निकटे कचित् ॥ मत्स्यघातका ऊचुः ॥ क्रोशादूर्ध्व तु नगवान् ग्रामोस्ति नगरोपमः ॥ १८ ॥ संवर्त्तो नाम तत्रत्यः सामंतकमहीपतिः ॥ स्वगृहद्वारि वासार्थं पांथिकानां तु मंडपः ॥ १९ ॥ रचितोस्ति च गंतव्यं त्वया तत्र सुखेप्सया ॥ स्नानपानादिकाष्ठानां सौकर्यं तत्र वर्तते ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ इंद्रप्रस्थं स्थलादस्मात् कियद्दूरे व्यवस्थितम् ॥ केन मार्गेण गंतव्यं प्रब्रूध्वं मत्स्यघातकाः ॥ २१ ॥ धीवरा ऊचुः ॥ अस्मान्नैर्ऋत्यकोणे तु नवयोजनदूरतः ॥ इंद्रप्रस्थपुरं रम्यं वर्तते राजसेवक ॥ २२ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा अद्य गंतुं न पार्यते ॥ गृहं प्रतीति निश्चित्य ग्राममध्ये ययौ नृपः ॥ २३ ॥ ॥ ॥

॥ २० ॥ राजा बोला ॥ हे धीवरो ! और इन्द्रप्रस्थ यहांसे कितनी दूर है और वहां किस मार्गसे जाना चाहिये सो कहो ॥ २१ ॥ धीवर बोले ॥ हे राजसेवक ! यहांसे सुन्दर इन्द्रप्रस्थपुर नैर्ऋत्य कोणमे नौयोजन है ॥ २२ ॥ उनका यह वचन सुनकर आज घर नहीं पहुंच सक्ते ऐसा निश्चय करके राजा गांवमें गया ॥ २३ ॥ ॥

वहां राजकुमारने इसे अनुमानसे युवा पुरुष और बड़ा तेजस्वी जानकर उसे एक खाट सौनेके लिये देदी ॥ २४ ॥ और उसके खानेके लिये कमलके चिड़वे दही और शीतल जल भिजवा दिया फिर राजाने थोड़ा खाया पिया ॥२५॥ राजा रातको वहांही सोया और बार २ जागा अर्थात् उसे भली भांति नींद नहीं आई । और गांवके राजकुमरके यहां उसे उसदिन छटा दिन होगया ॥ २६ ॥ राजाने उस घरमें एक स्त्रीको आती हुई देखी वह लंबी बड़ी रूपवान् और

तेजो विशेषानुमितः कश्चित्प्रौढः पुमानयम् ॥ इति ज्ञात्वातु खट्वैका दत्तास्मैवेशनायच ॥ २४ ॥
भक्षणार्थं समानीता अब्जजाश्चिपिटादधि ॥ शीततोयं समानीतं किंचिद्भुक्तं नृपेण तत् ॥२५॥
रात्रौ तत्रैव संसुप्तो जागर्तिच पुनःपुनः ॥ ग्रामेशजातपुत्रस्य षष्ठाहस्तद्दिने भवत् ॥ २६ ॥
ददर्श नृपती रात्रौ नारीं यांतींच तद्गृहम् ॥ दीर्घात्यंतं रूपवतीं लेखनी हस्तशालिनीम् ॥२७॥
तदंचलं गृहीत्वा सः पर्यपृच्छत कासि च ॥ नोवाच वचनं सातु नृपेणाक्षेपिता पुनः ॥ २८ ॥
बलात्कारेणांचलं सा गृहीत्वाभ्यंतरे विशत् ॥ साहंकारो नृपो भूत्वा स्थितवांस्तां प्रतीक्षयन् ॥२९॥

हाथमें लेखनी लियें थी ॥ २७ ॥ राजाने उसका पल्ला पकड़कर पूछा कि तू कौन है पर उसने कुछ उत्तर नहीं दिया तो राजाने फिर उसको धमकाया ॥ २८ ॥ फिर वह बलसे अपना अंचल छुड़ाकर भीतर घुसगई । फिर तो राजा बड़े अहंकारसे बैठ उसकी बाट देखने लगा ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥

वह सुंदरमुखी फिर जलदीसे लौट आई फिर राजाने वलपूर्वक उसका हाथ पकड़कर कहा ॥३०॥ हे कमलपत्रके समान नेत्रवाली ! तू कौन है मेरे सामने सत्य २ कह और नहीं तो तुझे मार डालूंगा जो तुझे अच्छा लगै सो कर ॥३१॥ जीवंतिका वोली ॥ मैंही तुझे मार डालती पर तुझे धर्मवान् जानकर छोड़दिया इसलिये शीघ्र छोड़दे नहीं तो तुझे मार डालूंगी

पुनः सापि समायाता तूर्णमेव वरानना ॥ वलात्कारैर्नृपतिना करे धृत्वा वचोब्रवीत् ॥ ३० ॥ का त्वं कंजपलाशाक्षि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥ अन्यथा त्वां हनिष्यामि रोचते यत्तथा कुरु ॥ ३१ ॥ जीवंतिकोवाच ॥ मारितश्च मया त्वं स्याद्धर्मवत्त्वात्सुरक्षितः ॥ मुंच तूर्णं नचेत्त्वां वै हनिष्यामि न संशयः ॥ ३२ ॥ राजोवाच ॥ अज्ञात्वा तव वृत्तंतु न त्यक्ष्यामि कदाचन ॥ क्षत्रियः सन् यदा भीतस्तदा स नरकं व्रजेत् ॥ ३३ ॥ अवश्यमेव मर्तव्यं जीवितं नास्तिच स्थिरम् ॥ सर्वथा क्षत्रियेणैव न त्याज्याहंकृतिः क्वचित् ॥ ३४ ॥ समर्थस्त्वां हंतुमहं स्त्रीत्वाद्दादौ न हन्यते ॥ जिघांसंतं जिघांसीयादवध्यं प्राणसंशये ॥ ३५ ॥ ॥

इसमें संदेह नहीं है ॥ ३२ ॥ राजा वोला ॥ तेरा वृत्तांत विनाजाने मैं कभी नहीं छोडूंगा जो क्षत्री होकर डरा तो वह नरकको जाता है ॥ ३३ ॥ मरना तौ अवश्यही है और जीवन स्थिर नहीं है । क्षत्री कभी अहंकार नहीं त्यागता है ॥ ३४ ॥ तुझे मारनेको तो मैं समर्थ हूं परंतु स्त्री होनेके कारण पहिले तुझे नहीं मारताहूं और जव प्राणोंका संदेह

हो तो मारनेवाले अवध्यकोभी मारडालतेहैं ॥३५॥ उसका यह वचन सुनके षष्ठीने कहा । तू अपने धर्मपर आरूढ है
इसलिये हे राजा ! मैं तुझपर प्रसन्नहूं ॥ ३६ ॥ मैं जीवंतिका देवीहूं इस राजकुमारके जो बालक हुआ है उसके लला-
टमें अक्षरमालिका लिखकर शीघ्र स्वर्गको जाऊंगी ॥ ३७ ॥ राजा बोला ॥ हे माता ! तैने क्या लिखा सो अब कह

इति तद्वचनं श्रुत्वा षष्ठी वचनमब्रवीत् ॥ त्वं स्वधर्मरतो यस्मात्तस्मात्तुष्टास्म्यहं नृप ॥ ३६ ॥
अहं जीवंतिका देवी ललाटेक्षरमालिकाम् ॥ जातकस्य लिखित्वाथ स्वर्गं यास्यामि सत्वरम्
॥ ३७ ॥ राजोवाच ॥ मातस्त्वया किं लिखितं तदिदानीं निगद्यताम् ॥ न मिथ्यालेखनं
तेस्ति तस्मात्संश्रृणुयामहम् ॥ ३८ ॥ जीवंतिकोवाच ॥ विवाहस्य चतुर्थेह्नि सर्पसंसर्ग
दोषतः ॥ प्राक् कर्मतोस्य निर्वाणं लिखितंतु मया नृप ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी
तत्रैवांतरधीयत ॥ अत्याश्चर्यं नृपो मत्वा विघ्नमत्र करोम्यहम् ॥ ४० ॥ निश्चित्येत्थमुषःकाले
प्रस्थितो नृपतिः स्वयम् ॥ ततो मंत्रिणमाहूय वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ४१ ॥ ॥

तेरा लिखना झूठ नहीं होता इसलिये मैं सुना चाहताहूं ॥ ३८ ॥ जीवंतिका बोली । हे राजा विवाहके चौथे दिन
सांपके संगके दोषसे और पहिले कर्मसे मैंने इसकी मृत्यु लिखी है ॥ ३९ ॥ यह कहकर वह देवी वहांहीं अंतर्धान
होगई । राजा इसे आश्चर्य जानकर और इसमें मैं विघ्न करूं ॥ ४० ॥ ऐसा विचारकर राजा बड़े तडके अपने घरको

गया और मंत्रीको बुलाकर उससे यह बात कही ॥ ४१ ॥ भंडारमेंसे धन लेकर मेरी आज्ञासे शीघ्र यमुनाके बीचमें एक ऐसा पक्का घर बनाओ कि जिसमे कोई संधि और छेद न रहै ॥४२॥ और सर्पविद्याके जाननेवाले और जो मृत्युंजयके जापक हों उनका महीना करके उन्हे मनुष्योंको भीतर रक्खो ॥ ४३ ॥ और यहांसे ईशानदिशाकी ओर नगवा नामका एक गांव है उसके बाई ओर वहां हेमनक नाम एक बड़ा सामन्तक रहता है ॥ ४४ ॥ उसको कुटुंब-

भांडारिकं धनं गृह्य तूर्णं कुरु ममाज्ञया ॥ यमुनायां दृढं गेहं संधिच्छिद्रविवर्जितम् ॥ ४२ ॥
सर्पवैद्यास्तु ये केचिद्ये मृत्युंजयजापकाः ॥ सर्वेषां मासिकं कृत्वा स्थाप्यास्तेभ्यंतरे जनाः ॥४३॥
इत ईशानदिग्भागे ग्रामोस्ति नगवाभिधः ॥ सामंतकोस्ति तद्ग्रामे नाम्ना हेमनको महान् ॥ ४४॥
सकुटुंबः समानेयः स्थाप्यतां सच मंदिरे ॥ जातो यो बालकस्तस्य सतु पाल्यः प्रयत्नतः ॥ ४५ ॥
इति राजवचः श्रुत्वा प्रेषिता महती चमूः ॥ हेमनानयनार्थंतु मंत्रिणस्तां समाविशन् ॥ ४६ ॥
ग्रामं संवेष्ट्य सेनेशो हेमनं वाक्यमब्रवीत् ॥ हेमनः कंपसंयुक्तो वातेन कदली यथा ॥ ४७ ॥

सहित आदरसे लाकर उसे उस मंदिरमें बसाओ और उसके जो बालक हुआ है उसे भी बड़े यत्नसे पालो ॥ ४५ ॥ राजाका यह वचन सुनकर मंत्रीने हेमनकके लानेके लिये बड़ी सेना भेजी और मंत्री उस पुरीमें घुसे ॥ ४६ ॥ सेनापतिने गांवको घेरकर हेमनकसे वह बात कही । उसे सुन हेमनक ऐसा कांपने लगा कि जैसे वायुसे केलेका वृक्ष कांपता

हो ॥ ४७ ॥ और सोचने लगा कि कल जो राजाका एक सेवक आया था उसीने जाकर चुगली खाई है कि जिससे सेना आई है ॥ ४८ ॥ मै राजाके अपराधको नहीं जानता न जाने अब क्या होगा गांव लुटेगा वा राजाकी आज्ञासे मैं बांधा जाऊंगा ॥ ४९ ॥ वह तो यह चिंताकर रहाथा इतनेमें सेनापतिने यह कहा कि भयको छोड़कर शोकको छोड़ो और शीघ्र राजाकी आज्ञा करो ॥ ५० ॥ और कुटुंब और बालकको लेकर आदरपूर्वक इन्द्रप्रस्थको चलो ।

आगतः पूर्वदिवसे कश्चिद्भूपस्य सेवकः ॥ पैशून्यं वा कृतं तेन यतः सेना समागता ॥ ४८ ॥
नापराधं महीपस्य न जाने किं भविष्यति ॥ ग्रामो वा लुंठनीयो वा वध्यो वास्मि नृपाज्ञया ॥४९ ॥
इति चिंतयमानं तं सेनेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ भयं त्यक्त्वा शुचं मुंच नृपाज्ञां कुरु वेगतः ॥ ५० ॥
कुटुंबं बालकं गृह्य याहींद्रप्रस्थमादरात् ॥ तथैव नगवेशेन गृहीत्वोपायनं बहु ॥ ५१ ॥
दर्शनं कृतवान् राज्ञस्तेनासौ स्थापितो गृहे ॥ अपमृत्युविनाशाय यानि दानानि भूतले ॥५२॥
कृतानि जपहोमाश्च सर्वे राज्ञातु कारिताः ॥ दर्शनार्थं समायातो बालकस्य तु भूपतिः ॥५३॥

तब तो नगवेशने बहुतसी भेटके योग्य वस्तु लेकर ॥ ५१ ॥ राजाके दर्शन किये और उसने उसे घरमें ठहराया । और अपमृत्युके विनाशके लिये पृथ्वीपर जितने दान हैं वे कियेगये ॥ ५२ ॥ और सब जप और होम कराये और राजा आप बालकको देखने आया ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

वड़े २ उपायोंसे वह वालक वड़ा हुआ और सोलह वर्षका होगया। और सुसंजयकी एक कन्या सर्वलक्षणसंपन्न थी ॥ ५४ ॥ उसके ग्रह चिन्ह, कुल शील सुंदरता देखकर राजाने आप उस वालकके लिये मांगी ॥ ५५ ॥ राजाने इससे सव लोगोंको प्रसन्न किया और आप उसका व्याह किया फिर जव चौथा दिन आया तव राजा आप ॥ ५६ ॥ अपने

नानोपायैर्वर्धितोसौ जातः षोडशवार्षिकः ॥ सुसंजयस्य कन्यैका सर्वलक्षणसंयुता ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा ग्रहांश्च चिह्नानि कुलं शीलं सुरूपताम् ॥ दृष्ट्वा स्वयं भूपतिना वालकार्थं तु याचिता ॥५५॥
हर्षी कृताः सर्वजना विवाहश्च स्वयं कृतः ॥ ततश्चतुर्थे दिवसे प्राप्ते तु नृपतिः स्वयम् ॥ ५६ ॥
आत्मीयानेव संगृह्य तस्य रक्षामचीकरत् ॥ जायते सर्वतश्चेष्टिरायुर्वर्धनकारिका ॥ ५७ ॥
विना निमेषं नृपतिस्तं पश्यति च वालकम् ॥ वयं तत्र गताः स्वामिन्कालाज्ञावशतो यम ॥ ५८ ॥
तदा दया समुत्पन्ना कथमेषोहि वध्यताम् ॥ अतिदुःखेन संतप्तः प्रेतपह्यंतरोरगः ॥ ५९ ॥
नृपस्य नासिकामध्ये नृपः शिंकामथाकरोत् ॥ तदा निर्गत्य सहसा दंशितस्तेन वालकः ॥६०॥

मनुष्योंको लेकर उसकी रक्षा करने लगा। और सव भांतिसे आयु वढानेवाली इष्टि (हवन) होनेलगी ॥ ५७ ॥ राजा उस वालकको एक दृष्टिसे देखता रहा और हे स्वामी ! यमराज ! कालकी आज्ञाके वशसे हम भी वहां गये ॥ ५८ ॥ तव हमें दया आई कि इसे कैसे मारें। सो हे यमराज ! राजाकी एक नाकमेंका कीड़ा वड़े दुखसे दुखी हुआ। फिर

राजाने जो छीक लीनी उस समय सापने सहसा निकलकर उस बालकको काट खाया ॥५९॥६०॥ बड़ाभारी हाहाकार मचा और उस बालकके प्राण निकल गये। उसकी मृत्युके दिनसे लेकर हमने हिंसा न करनेका व्रत करलिया है ॥ ६१ ॥ वहा राजाकी आज्ञासे सब लोग उस पुत्रकी दीर्घायु करनेवाले थे उस समय हे यमराज ! वहां हमें भी दया आगई ॥ ६२ ॥ हे यमराज ! ऐसे महोत्सवमें जिसभाति जीव न जाय कृपाकर वह उपाय हमारे सामने कहिये

हाहाकारो महानासीज्जीविताद्भ्रंशितः स तु ॥ तन्मृत्युदिनमारभ्य त्वहिंसाव्रतकारिणः ॥६१॥
जाता नृपाज्ञया लोकास्तदायुर्वृद्धिकारकाः ॥ दया तत्र समुत्पन्ना त्वस्माकं सूर्यसंभव ॥ ६२ ॥
यथा न जीविताद्भ्रश्येदीदृशे तु महोत्सवे ॥ तथोपायं ब्रूहि यम कृपा कृत्वास्मदग्रतः ॥ ६३ ॥
॥ यम उवाच ॥ कार्तिकस्यासितेपक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे ॥ प्रतिवर्षंतु यो दद्याद्गृहद्वारे सुदीपकम् ॥ ६४ ॥ मंत्रेणानेन भो दूताः समानेयः स नोत्सवे ॥ प्राप्तेपमृत्यावपि च शासनं क्रियतां मम ॥ ६५ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ ६३ ॥ यम बोले ॥ कार्तिक कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको संध्याके समय प्रति वर्ष घरके द्वारपर सुन्दर दीपक चलावे ॥ ६४ ॥ और हे दूतो ! इस मंत्रसे हमारे उत्सवमें दीपक जलाकर धरना चाहिये फिर अपमृत्यु आनेपरभी जो मेरी आज्ञा है सो करना ॥ ६५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

“मृत्यु, पाश, दंड, काल और मुझसहित त्रयोदशीके दिन दीपदानसे यम प्रसन्न हों” ॥ ६६ ॥ जो मनुष्य इस दीपो-

मृत्युना पाशदंडाभ्यां कालेन च मयासह ॥ त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति ॥ ६६॥
मंत्रेणानेन यो दीपं द्वारदेशे प्रयच्छति ॥ उत्सवे चापमृत्योश्च भयं तस्य न जायते ॥ ६७ ॥
तस्मान्मुनिवराः सर्वे दीपं दद्युर्निशामुखे ॥ ६८ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्सवमें इस मंत्रसे द्वारपर दीपक धरैगा उस पुरुषको अपमृत्युका भय नहीं होगा ॥ ६७ ॥ इसलिये सब मुनिश्रेष्ठोंने संध्याको दीपक धरा ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥



|| वालखिल्या बोले । कार्तिककृष्णपक्षकी पूर्वविद्धा चतुर्दशीके दिन बडे तडके यत्नपूर्वक स्नान करै ॥ १ ॥ जो मनुष्यचतुर्दशीके दिन अरुणोदयके पीछे स्नान करता है उसका वर्षभरका धर्म नाश होजाता है इसमें संदेह नहीं है ॥२॥ और हे देवताओ ! कार्तिककृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन सूर्योदयमें अथवा रात्रिके पिछले प्रहरमें तैल लगाकर स्नान

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ पूर्वविद्धचतुर्दश्यां कार्तिकस्य सितेतरे ॥ पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥१॥ अरुणोदयतोन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः ॥ तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः ॥ २ ॥ तथा कृष्ण चतुर्दश्यां कार्तिकेर्कोदये सुराः ॥ यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यंगो विशिष्यते ॥ ३ ॥ यदा चतुर्दशी न स्याद्विदिने चेद्विधूदये ॥ दिनद्वये भवेच्चापि तदा पूर्वैव गृह्यते ॥ ४ ॥ बलात्काराद्धठाद्वाप्यशिष्टत्वान्न करोति चेत् ॥ तैलाभ्यंगं चतुर्दश्यां रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ ५ ॥ तैले लक्ष्मीर्जले गंगा दीपावल्याश्चतुर्दशी ॥ अपामार्गमथो तुंबीं प्रपुंनाटमथापरम् ॥ ६ ॥ ॥ ॥

करै ॥ ३ ॥ जो दोनो दिन चंद्रोदयमें चतुर्दशी न हो अथवा दोनों दिन हो तो पहिलीही ग्रहण करनी ॥ ४ ॥ जो बलकर्के, वा हठसे वा मूर्खतासे चतुर्दशीके दिन तैल नहीं लगाता है वह रौरव नरकमें जाता है ॥ ५ ॥ दिवालीकी चतुर्दशीके दिन तेलमें लक्ष्मी और जलमें गंगाजीका वास है सो ओंघा, तुंबी, और चकुंदा इनकी

पत्तियां ॥ ६ ॥ फिर केवल आंधेको स्नानके मध्यमें नरकके नाशके लिये तीनवार अपने ऊपर घुमावै । इस आगेके मंत्रको पढ़कर अपने ऊपर तीनवार घुमावै ॥ ७ ॥ "हलकी मट्टीके डेलेसहित तथा कांटे पत्तोंसे युक्त वार २ फिराया गया हे अपामार्ग तू मेरे पापको हरले ॥ ८ ॥ मित्र और वन्धुओंके साथ यह स्नान करै और स्नानांग तर्पण करके फिर यमका तर्पण करै ॥ ९ ॥ यमाय नमः । धर्मराजायनमः । मृत्यवे नमः । अंतकाय नमः । वैवस्वताय नमः ।

भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ॥ वारत्रयं त्रिवारं च पठित्वा मंत्रमुत्तमम् ॥ ७ ॥
सीतालोष्ठसमायुक्तं सकंटकदलान्वितम् ॥ हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनःपुनः ॥ ८ ॥
इष्टबंधुजनैः सार्धमेतत्स्नानं समाचरेत् ॥ स्नानांगतर्पणं कृत्वा यमं संतर्पयेत्ततः ॥ ९ ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चांतकाय च ॥ वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ १० ॥ औदुंबराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ॥ वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः ॥ ११ ॥ चतुर्दशैते मंत्रास्युः प्रत्येकं च नमोन्विताः ॥ एकैकेन तिलैर्मिश्रान् दद्यात्रीनुदकांजलीन् ॥ १२ ॥

कालाय नमः । सर्वभूतक्षयाय नमः । औदुंबराय नमः । दध्नाय नमः । नीलाय नमः । परमेष्ठिने नमः । वृकोदराय नमः । चित्राय नमः । चित्रगुप्ताय नमः ॥१०॥११॥ यह चौदह नाम हैं और सबमें नमः युक्त है एक एकसे तिल मिला-कर तीन २ अंजली जलकी दे ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

यज्ञोपवीतिको अपसव्य करै वा न करै क्यौंकि यमका रूप देवता और पितर दोनोंके समान है ॥ १३ ॥ जिसका पिता जीताहो वह भी यम और भीष्मका तर्पण करै और देवताओंको पूजकर नरकके लिये दीपक बलावे ॥ १४ ॥ इसीमें हमने लक्ष्मी चाहनेवालेके स्नानकी विधि कही है। कार्तिक वदी चौदस अमावस, और कार्तिक सुदी पड़वाके दिन ॥ १५ ॥ चन्द्रोदयमें जब न्हाय तो तैल लगाकर स्नान करै। और कार्तिकशुक्ला द्वितीयाके दिन स्वाति वा

यज्ञोपवीतिनाकार्यं प्राचीनावीतिनाथवा ॥ देवत्वं च पितृत्वं च यमस्यास्ति द्विरूपता ॥ १३ ॥
जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः ॥ नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य देवताः ॥ १४ ॥
अत्रैव लक्ष्मीकामस्य विधिः स्नाने मयोच्यते ॥ ऊर्जेभूते च दर्शे च कार्तिके प्रथमे दिने ॥ १५ ॥
यदा स्वाति तदाभ्यंगस्नानं कुर्याद्विधूदये ॥ ऊर्जशुक्लद्वितीयायां तिथौ च स्वातियुग्मगे ॥ १६ ॥
मानवो मंगलस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते ॥ दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावलिः स्मृता ॥ १७ ॥
इंदुक्षयेपि संक्रांतौ रवौ पाते दिनक्षये ॥ अत्राभ्यंगो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये ॥ १८ ॥

विशाखा नक्षत्रमें ॥ १६ ॥ मनुष्य इस मंगलस्नानको करै तो वह लक्ष्मीरहित कभी नहीं होता और दीपकोंसे जो इसमें नीराजन करता है उसेही दीपावली कहते है ॥ १७ ॥ अमावास्या, सूर्यकी संक्रांति, व्यतीपात, दिनक्षय इनके दिन पाप दूर करनेके लिये तेल लगाकर न्हानेमें दोष नहीं है ॥ १८ ॥ ॥ ॥

उस प्रेता चौदसके दिन जो मनुष्य उड़दके पत्रोंके शाकसे भोजन करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १९ ॥
कार्तिक कृष्ण चौदसको अमावास्या भी हो और अमावास्याके पहिले स्वाति नक्षत्र हो तो दीपावलि होती है ॥ २० ॥
सो यह दीपोत्सव लगातार तीन दिनतक करना चाहिये। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर इसे महाराज बलिसे कहा है कि
॥ २१ ॥ तेरे मनमें जो जो होय सो वर मांग तेरा कल्याण हो। विष्णुका यह वचन सुनके राजा बलिने कहा ॥ २२ ॥

माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तस्मिन्दिने नरः ॥ प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१९॥
ऊर्जाऽसितचतुर्दश्यामिंदुक्षयतिथावपि ॥ दर्शादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावलिर्भवेत् ॥ २० ॥
कुर्यात्संलग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयं ॥ महाराजो बलिः प्रोक्तस्तुष्टेन हरिणा तथा ॥ २१ ॥
वरं याचस्व भद्रं ते यद्यन्मनसि वर्तते ॥ इति विष्णुवचः श्रुत्वा बलिर्वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥
आत्मार्थं किं याचनीयं सर्वं दत्तं मया तव॥ लोकार्थं याचयिष्यामि शक्तश्चेद्देहि तच्च मे ॥२३॥
मयाद्य ते धरा दत्ता वामनच्छद्मरूपिणे ॥ त्रिभिः पदैस्त्रिदिवसैः सा चाक्रांता यतस्त्वया ॥२४॥

मैं अपने लिये क्या मांगूँ मैंनेही आपको सब दे दिया मैं तो संसारके लिये मांगूंगा यदि आप दे सक्ते हैं तो मुझे
वह दीजिये ॥ २३ ॥ आज मैंने छलसे वामनरूप धरनेवाले आपको पृथ्वी दान करदी। और तीन पदोंमें तीन दिनमें
आपने उसे नापली ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इस लिये हे भगवन् इस दिन बलिका राज्यहो और जो मनुष्य पृथ्वीपर मेरे राज्यमें दीपदान करैं ॥ २५ ॥ उनके घर आपकी प्यारी लक्ष्मी सदा स्थिर रहैं और मेरे राज्यमें जिनके घरमें अंधकार रहै ॥ २६ ॥ उनके घर सदा लक्ष्मी और संतानका अंधेरा रहै । जो मनुष्य चौदसके दिन नरकके लिये दीपदान करते है ॥ २७ ॥ उन्होंके सब पितर

तस्मादेतद्बले राज्यमस्तु घस्त्रत्रये हरे ॥ मद्राज्ये ये दीपदानं भुवि कुर्वंति मानवाः ॥ २५ ॥
तेषां गृहे तव स्त्रीयं सदा तिष्ठतु सुस्थिरा ॥ मम राज्ये गृहे येपामंधकारः पतिष्यति ॥ २६ ॥
लक्ष्मीसंतानांधकारः सदा पततु तद्गृहे ॥ चतुर्दश्यां च ये दीपान्नरकाय ददंति च ॥ २७ ॥
तेषां पितृगणाः सर्वे नरके न वसंति च ॥ बलिराज्यं समासाद्य यैर्न दीपावलिः कृता ॥२८॥
तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यंति केशव ॥ बलिराज्ये तु ये लोकाः शोकानुत्साहकारिणः ॥२९॥
तेषां गृहे सदा शोकः पतेदिति न संशयः ॥ चतुर्दशीत्रये राज्यं बलेरस्त्विति याचयेत् ॥ ३० ॥
पुरा वामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमाम् ॥ ददावतिथयेंद्राय बलिं पातालवासिनम् ॥ ३१ ॥

नरकमें वास नहीं करते हैं । बलिके राज्यमें जिन लोगोंने दीपावली नहीं करी ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! उनके घरमें कैसे दीपक जलेंगे । बलिके राज्यमें जो लोग शोक और अनुत्साह करैंगे ॥ २९ ॥ उनके घरमें सदा शोक होगा इसमें संदेह नहीं है । चौदससे लेकर तीन दिनतक "बलिका राज्यहो" यह याचना भगवान्से करै ॥ ३० ॥ पहिले कालमें भग-

॥ वालखिल्या बोले ॥ हे मुनीश्वरो ! इसप्रकार प्रातःकालके समय चौदसके दिन स्नान करके भक्तिपूर्वक देवता और पितृओंकी पूजा और उनको प्रणाम करके ॥ १ ॥ और दही दूध और घृतसे पार्वण श्राद्ध करके, बालक और रोगीको छोड़ दिनमें भोजन नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥ फिर प्रदोषके समय सुन्दर लक्ष्मीजीका पूजन करे और

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ एवं प्रभातसमये त्वमायां तु मुनीश्वराः ॥ स्नात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या संपूज्याथ प्रणम्य च ॥१॥ कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ॥ दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात् ॥ २ ॥ ततः प्रदोषसमये पूजयेदिंदिरां शुभाम् ॥ कुर्यान्नानाविधैर्वस्त्रैः स्वच्छं लक्ष्म्याश्च मंडपम् ॥ ३ ॥ नानापुष्पैः पल्लवैश्च चित्रैश्चापि विचित्रितम् ॥ तत्र संपूजयेल्लक्ष्मीं देवांश्चापि प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ संपूज्या देवनार्योपि बहुभिश्चोपचारकैः ॥ पादसंवाहनं कुर्याल्लक्ष्म्यादीनां तु भक्तितः ॥ ५ ॥ अस्मिन्नहनि सर्वेपि विष्णुनामोचिताः पुरा ॥ बलिकारागृहाद्देवा लक्ष्मीश्चापि विमोचिता ॥६॥ ॥ ॥

अनेक प्रकारके सुन्दर वस्त्रोंसे लक्ष्मीजीका मंडप बनावे ॥ ३ ॥ अनेक प्रकारके विचित्र पत्रपुष्पोंसे उसे सुन्दर सजावे, और उसमें लक्ष्मी तथा देवताओंका पूजन करे ॥ ४ ॥ और देवताओंकी स्त्रियोंका भी पूजन बहुत भांतिसे करे और भक्तिपूर्वक लक्ष्मी आदिके चरण दाबे ॥ ५ ॥ पूर्वकालमें इसदिन विष्णुभगवान्ने बलिके कारागृहसे सब देवताओंको

और लक्ष्मीजीको छुड़ाया था ॥ ६ ॥ फिर सब देवता लक्ष्मीके साथ क्षीरसमुद्रमें गये और हे मुनीश्वरो ! वे बहुत
कालतक सुखपूर्वक अच्छे प्रकारसे सोये ॥७॥ डोरी और तूलिकाओंसे पलंग बुनकर उनपर दूधके झागोंके समान वस्त्र
बिछाकर यथायोग्य दिशाओंमें रक्खै ॥८॥ और फिर उनपर देवताओंको और लक्ष्मीको वेद मंत्र पढ़कर स्थापन करै ॥
लक्ष्मी दैत्यके भयसे मुक्त हुई और कमलके भीतर सुखसे सोई ॥ ९ ॥ इसलिये यहां विधिपूर्वक लक्ष्मीके प्रसन्नार्थ

लक्ष्म्या सार्द्धं ततो देवा जग्मुः क्षीरोदधौ पुनः॥ प्रसुप्ता बहुकालं ते सुखं तस्मान्मुनीश्वराः॥७॥
रचनीयाः सूत्रगर्भाः पर्यंकाश्च सुतूलिकाः ॥ दुग्धफेनोपमैर्वस्त्रैरास्तृताश्च यथादिशम् ॥ ८ ॥
स्थापयेत्तान् सुरांल्लक्ष्मी वेदघोषसमन्वितः ॥ लक्ष्मीर्दैत्यभयान्मुक्ता सुखं सुप्तांबुजोदरे ॥ ९ ॥
अतोत्र विधिवत्कार्या तुष्ट्यै तु सुखसुप्तिका ॥ तदह्नि पद्मशय्यां यः पद्मासौख्यविवृद्धये ॥ १० ॥
कुर्यात्तस्य गृहं मुक्त्वा तत्पद्मा क्वापि न व्रजेत् ॥ न कुर्वंति नरा इत्थं लक्ष्म्या ये सुखसुप्तिकाम्॥११॥
धनचिंताविहीनास्ते कथं रात्रौ स्वपंति हि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लक्ष्मीं संपूजयेन्नरः ॥ १२ ॥

सुखकी सेज बनावै । उसदिन जो कोई सौख्यकी विशेष वृद्धिके लिये ॥ १० ॥ लक्ष्मीजीको पद्मकी शय्यापर स्थापन
करैगा लक्ष्मी उसका घर छोड़कर कहीं नहीं जायगी जो मनुष्य इसप्रकार लक्ष्मीकी सुख शय्या नहीं बनाते हैं ॥ ११ ॥
वे धनकी चिंतासे रहित कैसे रातको सोते है इसलिये मनुष्यको चाहिये कि सब प्रकारसे लक्ष्मीका पूजन करै ॥ १२ ॥

वह दारिद्र्यसे मुक्त होकर अपनी जातिमें प्रतिष्ठित होजाता है । जावित्री, लौंग, इलायची, दालचीनी, कपूर, इनको ॥ १३ ॥ गौके दूधमें गेरकर और पकाकर खोवा करै फिर उसके योग्य बूरा मिलाकर लड्डू बनावे और उन्हें लक्ष्मीका भोगधरै ॥ १४ ॥ और चार प्रकारके भक्ष्य पदार्थ जो देश और कालके अनुसार मिलसकै सब लक्ष्मीको भोग लगावे और कहै कि लक्ष्मी मुझपर प्रसन्न होंय ॥ १५ ॥ फिर प्रदोषमें दीपदान करै और अपने शिरपर जलती हुई लकड़ी

स तु दारिद्र्यनिर्मुक्तः स्वजातौ स्यात्प्रतिष्ठितः ॥ जातीपत्रलवंगैलात्वक्कर्पूरसमन्वितम् ॥ १३ ॥
पाचयित्वा गव्यदुग्धं सितां दत्त्वा यथोचिताम् ॥ लड्डुकांस्तस्य कुर्वीत तांश्च लक्ष्मीं समर्पयेत् ॥१४॥
अन्यच्चतुर्विधं भक्ष्यं देशकालादिसंभवम् ॥ सर्वं निवेदयेल्लक्ष्म्यै मम श्रीः प्रीयतामिति ॥१५॥
दीपदानं ततः कुर्यात्प्रदोषे च तथोल्मुकम् ॥ भ्रामयेत्स्वस्य शिरसि सर्वारिष्टनिवारणम् ॥ १६ ॥
दीपवृक्षास्तथा कार्याः शक्त्या देवगृहादिषु ॥ चतुष्पथे श्मशाने च नदीपर्वतवेश्मसु ॥ १७ ॥
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु चत्वरेषु गृहेषु च ॥ वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्या राजमार्गस्य भूमयः ॥ १८ ॥

घुमावै यह सब अरिष्टका दूर करनेवाला है ॥ १६ ॥ फिर शक्तिके अनुसार देवमंदिरोंमें, चौरायोंमें, श्मशानमें नदीके किनारे, पर्वतोंपर, और घरोंमें दीपकोंके वृक्ष बनावे ॥ १७ ॥ और वृक्षोंकी जड़ोंमें गोशालाओंमें आगनोंमे और गृहोंमें भी दीप वृक्ष बनावै । और वस्त्रों तथा पुष्पोंसे राजमार्गकी भूमियोंको सजावै ॥ १८ ॥

और गृहोंमें अनेक प्रकारके पकान्न और फल स्थापन करै और तांबूल लगाकर वहां रक्खे ॥ १९ ॥ और राज मार्गको विशेषकर कमलोंसे शोभित करै। जो कमल न हों तो वस्त्रोंसेही शोभायमान करै ॥ २० ॥ इसप्रकार प्रदोषमें पुरको सजाकर उसके पीछे पहिले ब्राह्मणोंको भोजन कराके और फिर भूखोंको भोजन करावै ॥ २१ ॥ फिर आप भी नवीन वस्त्रालंकार पहिरकर लड्डू पुये, मंडे, आदि तथा गुंजियां और पूरी और कचौडी आदि भोजन करै

गृहेषु स्थापयेन्नानापक्वान्नानि फलानि च ॥ नागवल्लीदलादीनि रचयित्वा च निक्षिपेत् ॥१९॥
शोभां कुर्याद्राजमार्गे कमलैश्च विशेषतः ॥ तदभावेंवरादीनां कृत्वा तानि च शोभयेत् ॥ २० ॥
एवं पुरमलंकृत्य प्रदोषे तदनंतरम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वादौ संभोज्य च बुभुक्षितान् ॥ २१ ॥
लड्डुकापूपमंडाद्याः शष्कुलीपूरिकादिकाः ॥ अलंकृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना ॥ २२ ॥

ततोपराह्णसमये घोषयेन्नगरं नृपः ॥ अद्य राज्यं बलेर्लोका यथेच्छं क्रीड्यतामिति ॥ २३ ॥
यथेच्छं क्रीड्यतां बाला इत्याज्ञाप्य नृपेण तु ॥ विलोक्य बालक्रीडां तां नानासामग्रिसंयुताम् ॥२४॥

॥ २२ ॥ फिर दो पहर पीछे राजा नगरमें ढंढोरा पिटवावै कि आज बलिका राज्य है लोग इच्छा पूर्वक खेलैं ॥ २३ ॥ और राजा यह आज्ञा देकर कि बालक इच्छापूर्वक खेलैं। और अनेक प्रकारकी सामग्रीसे युक्त उस क्रीड़ाको देखकर ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

उन्हे वालकोंको खिलौनें दे फिर शुभअशुभ देखै । उनकी जलाई अग्निमेंसे जो ज्वाला न निकले ॥ २५ ॥ तो महामारी, भय घोर दुर्भिक्ष होय और जो वालक रुष्ट होंय तो राजशोक हो और जो प्रसन्न हों तो सुख हो ॥ २६ ॥ जो वालक युद्ध करे तो राजयुद्धहो और जो वालक रोवें तो वर्षासे राज्यका अवश्य नाश होय ॥ २७ ॥ जो वालक

तेभ्यो दद्यात् क्रीडनकं ततः पश्येच्छुभाशुभम् ॥ तैश्चेत्प्रदीपितो वह्निर्न ज्वालां मुंचते यदा ॥२५॥
महामारी भयं घोरं दुर्भिक्षं चाथ जायते ॥ वालरुष्टौ राजशोकस्तेषां तुष्टौ नृपे सुखम् ॥ २६ ॥
वालयुद्धे राजयुद्धं रोदने वालकैः कृते ॥ अवश्यमेव भवति वर्षाद्राज्यविनाशनम् ॥ २७ ॥
यष्टिकादिकृतानश्वान्यदा रोहंति वालकाः ॥ तदा राज्ञो जयो वाच्यः परराष्ट्रविमर्दनम् ॥२८॥
यदा क्रीडंति वालाश्चेल्लिंगं धृत्वा करादिषु ॥ तदा प्रसिद्धं नारीणां व्यभिचारः प्रजायते ॥ २९ ॥
अन्नं यदा गोपयंति क्रीडने वालका जलम् ॥ दुर्भिक्षं वृष्ट्यभावश्च शीघ्रमेव प्रजायते ॥ ३० ॥
एवं वालकृतां चेष्टां बुद्ध्वा चास्य फलं वदेत् ॥ लोकाश्चापि पुरे रम्ये सुधाधवलिताजिरे ॥ ३१ ॥

लकड़ी आदि लेकर कुत्तोंपर चढे तो राजाकी जय और शत्रुके राज्यका नाश कहना चाहिये ॥ २८ ॥ जो वालक मूत्र चिन्हको हाथमें लेकर खेलै तो स्त्रियोंमें वड़ा व्यभिचार हो ॥ २९ ॥ जो वालक अन्न और जलको छुपावे तो दुर्भिक्ष तथा जलका अभाव शीघ्र होय ॥ ३० ॥ इसप्रकार वालकोंसे कियेहुये कामको जानकर इसका फल कहै।

और लोग भी सुन्दर पुरमें सुधाके समान स्वच्छ आगनमें ॥ ३१ ॥ सुन्दर दीपक वलाके गीत गावें और वाजे वजावे ॥ आपसमें प्रीतिसे मिलकर प्यार करें ॥ ३२ ॥ तांवूल खाकर चित्तमें प्रसन्नहों गुलाल आदि लगावें जैमें मिल-सकें धोती दुपट्टा आदि वस्त्र और सुवर्णके आभूषण धारण करें ॥३३॥ मित्र,अपने जन, संवन्धी, गोत्र और ज्ञातिवाले आपसमें पूजन करें और जो जो मनमें हो वह बलिके राज्यमें करना चाहिये ॥३४॥ जीवहिंसा, सुरापान, चोरी, मातृ-

गीतवादित्रसंजुष्टे प्रज्वालितसुदीपके ॥ अन्योन्यप्रीतिसंयुक्ते दत्तलालनके जने ॥ ३२ ॥
तांबूलहृष्टहृदये कुंकुमक्षोदचर्चिते ॥ दुकूलपट्टवसने पथ्यस्वर्णविभूषणे ॥ ३३ ॥ मित्रस्वजन-
संबंधीस्वगोत्रज्ञातिपूजिते ॥ वलिराज्ये प्रकर्त्तव्यं यद्यन्मनसि वर्तते ॥ ३४ ॥ जीवहिंसा
सुरापानं स्तेयं मातृसमागमः ॥ हित्वा तदन्यत्कर्त्तव्यं वलिराज्ये न दोपभाक् ॥ ३५ ॥
आत्मनो यच्च सौख्यार्थे परदुःखकरं कृतम् ॥ वारांगनादिगमनं स्पृष्टास्पृष्टादिभक्षणम् ॥ ३६ ॥
अन्यांवरधृतिश्चापि द्यूताद्यं च न दुष्यति ॥ एवं तु सर्वदा कार्यो वलिराज्ये महोत्सवः॥३७॥

समागम इनको छोड़कर बलिके राज्यमें और जो चाहे करै दोपका भागी नहीं होता ॥ ३५ ॥ इसदिन अपने सुखके लिये और शत्रुके दुख देनेके लिये, वेश्यागमन आदिमें छूती अछूती आदि वस्तुके भक्षणमें ॥ ३६ ॥ और दूसरेका वस्त्र पहिननेमें और जुआ आदि खेलनेमें भी दोष नहीं है इस प्रकार बलिके राज्यमें सदा महोत्सव करना चाहिये ॥३७॥

हे मुनीश्वरो ! जीवहिंसा सुरापान, जो स्त्री भोगके योग्य न हो उसके साथ संभोग, चोरी, विश्वासघात ये पांच बातें ॥ ३८ ॥ बलिके राज्यमें नरकके द्वार हैं इनको त्याग दे । फिर अर्द्धरात्रिके समय राजा आप नगरकी ॥ ३९ ॥ सुन्दरता देखनेके लिये धीरै २ पैरो २ जाय । तुरईका बड़ा शब्द होता जाय और लालटैने साथमें होंय ॥ ४० ॥ और घरकी शोभा करके और घुड़सवारोंकी और मनुष्योंकी क्रीड़ा आदिको और बलिके राज्यका आनन्द देखकर

जीवहिंसा सुरापानमगम्यागमनं तथा ॥ चौर्यं विश्वासघातश्च पंचैतानि मुनीश्वराः ॥ ३८ ॥
बलिराज्ये तु नरकद्वाराण्युक्तानि संत्यजेत् ॥ ततोर्द्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरम् ॥ ३९ ॥
अवलोकयितुं रम्यं पद्भ्यामेव शनैः शनैः ॥ महता तूर्यघोषेण ज्वलद्भिर्हस्तदीपकैः ॥ ४० ॥
हर्म्यं शोभाकृतं यावत् कृतकैरश्वकैर्नरैः ॥ बलिराज्यप्रमोदं च दृष्ट्वा स्वगृहमाव्रजेत् ॥ ४१ ॥
एवंगते निशीथे च जने निद्रार्द्धलोचने ॥ तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिंडिमवादनैः ॥ ४२ ॥
निष्काश्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहांगणात् ॥ दंडैकरजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेहनि ॥ ४३ ॥

अपने घर लौट आवैं ॥ ४१ ॥ जब ऐसे रात्रि वीतजाय और निद्राके कारण आधे नेत्र मनुष्योंके वंदसे हुये जाय तब नगरके नरनारी सूपको नेगाड़ेकी भांति बजाते हुये ॥ ४२ ॥ और प्रसन्न होतेहुये अपने घरके आंगनसे अलक्ष्मी (दरिद्र) निकाले ॥ जो दूसरे दिन दो घड़ी भी रात्रिको अमावास्याहो ॥ ४३ ॥ ॥ ॥

तो पहिले दिनकी छोड़कर दूसरे दिनकी रात्रिही सुखदाई होती है। जो मनुष्य वैष्णव हों बलिराज्यके उत्सवको

तदा विहाय पूर्वेद्युः परेह्नि सुखरात्रिका ॥ ये वैष्णवावैष्णवाश्च बलिराज्योत्सवं नराः ॥४४॥
न कुर्वंति वृथा तेषां धर्माः स्युर्नात्र संशयः ॥ ४५ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ ४४ ॥ नहीं करते हैं उनके धर्म वृथा है इसमे संदेह नही है ॥ ४५ ॥ ॥ ॥

॥ इति सनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥



॥ वालखिल्या बोले । दूसरे दिन पड़वाको तैल लगाकर स्नान करै और फिर नीराजन करके सुन्दर वस्त्र धारण करै और कथा गीत तथा दान इनसे दिवस वितावै ॥ १ ॥ पहिले शिवजीने इस बड़े मनको हरनेवाले जुयेको उत्पन्न किया और कार्तिकशुक्लपक्षकी पड़वाके दिन सदाशिवने पार्वतीसे यह सत्य वचन कहा कि किसीको कालक्षेपके लिये, कि-

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ प्रतिपद्यभयेभ्यंगं कृत्वा नीराजनं ततः ॥ सुवेषः सत्कथागीतैर्दानैश्च दिवसं नयेत् ॥ १ ॥ शंकरस्तु पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम् ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेहनि सत्यवत् ॥ २ ॥ प्रत्युवाच वचश्चेदं देवीं प्रति सदाशिवः ॥ कालक्षेपाय केषांचित् केषांचिद्व्रतहेतवे ॥ ३ ॥ केषांचिद्व्रतनाशाय पश्य द्यूतं कृतं मया ॥ तस्य त्वं कौतुकं पश्य भुवनं लापयाम्यहम् ॥ ४ ॥ उक्त्वेत्थं क्रीडितं ताभ्यां भवान्या च जितं तदा ॥ पुनर्द्वितीयं भुवनं लापितं निर्जितं तया ॥ ५ ॥ पुनस्तृतीयं भुवनं लापितं निर्जितं तया ॥ पुनर्वृषश्चर्म पुनः पुनः पन्नगबंधनम् ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

सीको व्रतके कारण ॥२॥३॥ किसीका व्रत नाश करनेके लिये मैंने जुयेको रचा है । तुम उसका खेल देखो मै एक भुवनको लगाताहूं ॥ ४ ॥ इसप्रकार कहकर वे दोनों खेले और पार्वतीने उस भुवनको जीत लिया । फिर शिवजीने दूसरे भुवनको लगाया वह भी पार्वतीने जीता ॥ ५ ॥ फिर तीसरे लगाये भुवनको भी जब पार्वतीने जीत लिया तो

शिवजीने वैल लगाया, फिर वांघंवर, वांधनेका सर्प ॥ ६ ॥ फिर चंद्ररेखा, फिर डमरू, फिर अपने अर्द्धांगको लगाया और जब इसे भी पार्वतीजीने जीत लिया तो शिवजी छालकी कोपीन लगाकर घरसे निकल गये ॥ ७ ॥ और गंगाके किनारे आकर चिंतामें वैठ गये । उस समय स्वामिकार्तिक कहीं खेलके लिये चले गये थे ॥ ८ ॥ और जब गंगाके तीरसे घरको लौट रहे थे तो मार्गमें शिवजीको कुछ क्रोधित और विरक्त देखा और पिताके दोनों चरणोंमें

शशिलेखाडमरुकमर्द्धांगं चाप्यजीजयत् ॥ निर्गतस्तु हरो गेहाच्चीरवल्कलधारकः ॥ ७ ॥ गंगातीरे समागत्य तस्थौ चिंतासमन्वितः ॥ तस्मिन्क्षणे कार्तिकेयः खेलितं च गतः क्वचित् ॥ ८ ॥ गंगातीराद्ययौ गेहमपश्यत्पथि शंकरम् ॥ ईषत्क्रोधं विरक्तं च ननाम चरणौ पितुः ॥ ९ ॥ तेनापि मूर्ध्नि चाघ्रातः पुत्र याहि गृहे सुखम् ॥ तव मात्रा जितश्चाहं गच्छामि गहनं वनम् ॥ १० ॥ स्कंद उवाच ॥ कथं मात्रा जितो देवो वनं कस्माच्च गच्छसि ॥ अहमप्यागमिष्यामि त्वत्पादौ सेवयाम्यहम् ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

प्रणाम किया ॥ ९ ॥ शिवजीने भी उनका माथा सूंघा और कहा हे पुत्र ! सुखसे घर जाओ ॥ और मुझे तो तेरी माताने जीत लिया है सो मैं गहरे वनको जाताहूं ॥ १० ॥ स्कंद बोले ॥ आप देवताको माताने कैसे जीत लिया और वनको क्यों जाते हो । मैं भी साथ जाऊंगा और चरणोंकी सेवा करूंगा ॥ ११ ॥ ॥ ॥

॥ शिवजी बोले । तुह्मारी माताने मुझे जीतकर कहा कि अव तुम मेरे लोकमें क्षणभर भी मत ठहरो सो मैं अच्छा कहकर वहांसे कहींको जाताहूं ॥ १२ ॥ स्कंद बोले ॥ हे शिवजी ! तुम जाओ मत मुझे जुयेकी रीति वताओ तो मैं तुह्मारा सव धन आदि जीतकर लादूंगा ॥ १३ ॥ शिवजीने अच्छा "ऐसा कहकर जुयेकी रीति वताई । फिर तो

॥ शिव उवाच ॥ विजित्य तव मात्रा तु क्षणं न स्थेयमत्र तु ॥ मम लोके तथेत्युक्त्वा क्वचिद्गच्छाम्यहं ततः ॥ १२ ॥ स्कंद उवाच ॥ नागच्छ त्वं महादेव द्यूतमार्गः प्रदृश्यताम् ॥ आनीयते मया जित्वा तव सर्वं धनादिकम् ॥ १३ ॥ शिवेनाथ तथेत्युक्त्वा द्यूतमार्गः प्रदर्शितः ॥ स्कंदोपि गृहमागत्य पार्वतीं वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥ स्कंद उवाच ॥ देवि देवो गतः कासौ वृषभोत्रैव संस्थितः ॥ तव के च विधुः कस्मान्मातः सत्यं वदस्व नः ॥ १५ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ स्वयमेव कृतं द्यूतं स्वयमेव पराजितः ॥ स्वयमेव गतः क्रोधात्प्रार्थ्यते स मया कथम् ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥

स्कंदने घर आकर पार्वतीजीसे कहा ॥ १४ ॥ स्कंद बोले ॥ हे माता ! शिवजी कहां गये और नादिया यहांहीं बैठा है और तुह्मारे पास चंद्रमा कहांसे आया सो हे माता ! मुझसे सत्य २ कहो ॥ १५ ॥ पार्वती बोलीं ॥ शिवजीने आपही तो जुयेको रचा और आपही हारे और आपही क्रोधसे निकल गये मैं क्यों उनकी प्रार्थना करती ॥ १६ ॥ ॥

॥ स्कंद बोले ॥ तुम मेरे साथ खेलो देखूं तो वह कैसा खेल है पार्वती उसके साथ खेलीं फिर तो स्कंद जीते ॥ १७ ॥ मोर लगाकर उससे नादिया जीत लिया शक्तिसे बंधनका सर्प जीता फिर नादियेसे अर्द्धांग जीता यों उमने अपनी वस्तु लगा २ कर सब धन जीत लिया ॥ १८ ॥ कोपीनसे बाघंबर जीता और सबको ले शिवजीके पास गये । और

॥ स्कंद उवाच ॥ मया सह क्रीडितव्यं कथं तत्क्रीडनं त्विति ॥ देव्यक्रीडत्तेन सार्द्धं ततः स्कंदेन निर्जितम् ॥ १७ ॥ मयूरेण वृपस्तस्याः शक्त्या पन्नगबंधनम् ॥ वृषेणेंदुस्ततोर्धांगं स्वं सर्वं स्वेन निर्जितम् ॥ १८ ॥ कौपीनेनार्जितं चर्म गृहीत्वा तदुपाययौ ॥ गंगातीरे यत्र शिवस्तत्रागत्य न्यवेदयत् ॥ १९ ॥ ततो देवीसमीपे तु विघ्नराजः समाययौ ॥ किमर्थं म्लानवदना देवि जातासि तद्वद ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ मया जितो महादेवः स तु गेहाद्विनिर्गतः ॥ आयास्यति वृपाद्यर्थमिति निश्चित्य संस्थितम् ॥ २१ ॥ तव भ्राता तु तज्जित्वा सर्वमस्मै निवेदितम् ॥ नायास्यत्यधुना देव इति चिंतापरास्म्यहम् ॥ २२ ॥ ॥

गंगाके किनारे जहां शिवजी थे वहां आकर उनको भेट करदिया ॥ १९ ॥ इतनेमें पार्वतीजीके पास गणेशजी आये और पूछा कि हे माता ! आज तुह्मारा मुख मलीन क्यों हो रहा है सो कहो ॥ २० ॥ देवी बोली ॥ मैंने शिवजीको जीत लिया था और वे घरसे निकल गयेथे और बैल लैनेको आवेंगे ऐसा निश्चय किये मैं बैठीथी ॥२१॥ परंतु तुह्मारे भाईने

सब जीतकर उन्हें देदिया कहीं अब भी न आवै इस चिन्तामें बैठीहूं ॥ २२ ॥ गणेशजी बोले ॥ हे माता ! जो मैं तुह्मारा पुत्र होऊं तो तुम मुझे जुआ सिखादो कि मैं भाई और शिवजीको जीतकर सब सामग्री लेआऊं ॥ २३ ॥ पुत्रका यह वचन सुनकर पार्वतीने उन्हें जुआ सिखाया और वह दो पासे और चौसरको शीघ्र लेआये ॥ २४ ॥ और

॥ गणेश उवाच ॥ देवि शिक्षय मे द्यूतं जेष्यामि भ्रातरं हरम् ॥ आनयिष्यामि सामग्रीं यद्यहं स्यां सुतस्तव ॥२३॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा तस्मै द्यूतमशिक्षयत् ॥ स गृहीत्वा पाशयुग्मं सारिकाः शीघ्रमाययौ ॥ २४ ॥ पृष्ट्वा पृष्ट्वा यत्र देवः स्कंदो यत्र व्यवस्थितः ॥ गणेश उवाच ॥ मयानीताविमौ पाशौ सारिकानाव्यमेव च ॥ २५ ॥ संक्रीडतु मया सार्द्धं देवस्याग्रे ममाग्रज ॥ इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा उभाभ्यां क्रीडितं तदा ॥ २६ ॥ मूषकेण बलीवर्दौ मयूरं चाप्यजीजयत् ॥ शिवस्य सर्वविषयं स्कंदस्य च तथैव च ॥ २७ ॥ गृहीत्वा स तु विघ्नेशस्तत्कालं पार्वतीं ययौ ॥ पार्वत्यपि च संतुष्टा गणेशं वाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥ ॥ ॥

पूछते २ वहां आये कि जहां शिवजी और स्कंद बैठेथे । गणेशजी बोले ॥ मैं ये दो पाशे और चौपड़ लायाहूं ॥ २५ ॥ आपके सामने मेरे बड़े भाई मेरे साथ खेलें । भाईका यह वचन सुनकर दोनो साथ २ खेले ॥२६॥ और गणेशजीने चूहेसे तो नादियेको और मोरको जीत लिया और अंतमें शिवजीका और स्कंदका जो कुछ था सब जीतलिया ॥ २७॥ और वे गणेशजी

सबको लेकर पार्वतीके पास आये और पार्वतीने प्रसन्न होकर गणेशजीसे कहा ॥ २८ ॥ पार्वती बोलीं ॥ हे पुत्र ! तुमने अच्छा किया पर महादेवजीको नहीं लाये सो साम दान आदि उपाय करके शिवजीको यहां लाओ ॥ २९ ॥ अच्छा लाताहूं ऐसा कहकर वह गणेशजी मूसेपर चढ़कर बहुत शीघ्र घर लौटानेके लिये शिवजीके पास आये ॥ ३० ॥ इतनेमें शिवजी वहांसे उठकर हरिद्वार आगये । और इधर नारदजीने यह समाचार भगवान्‌से कहा सो वे भी वहां

॥ पार्वत्युवाच ॥ सम्यक्कृतं त्वया भद्र नानीतोसौ महेश्वरः ॥ सामदानादिकं कृत्वा अनयात्र-महेश्वरम् ॥ २९ ॥ तथेत्युक्त्वा गणेशोसौ समारुह्य च मूषकम् ॥ अतित्वरित आयातो गृहं नेतुं महेश्वरम् ॥ ३० ॥ ईश्वरस्तत उत्थाय हरिद्वारं समागतः ॥ नारदेरितवृत्तांतो विष्णुस्तत्र समागतः ॥ ३१ ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्र्यक्षां विद्यां कुरु शिव एकाक्षोहं भवाम्यहम् ॥ रावणेन तथेत्युक्तं काणो भव जनार्दन ॥ ३२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ओतुवत्पश्यसे मां त्वं तस्मादोतुर्भविष्यसि ॥ नारद उवाच ॥ देवसिद्धं महाकार्यमायाति स गणेश्वरः ॥ ३३ ॥ ॥

आये ॥ ३१ ॥ विष्णु बोले ॥ हे शिवजी ! तीन पासोंकी विद्या रचो एक पासा तो मैं होताहूं । रावणने छूटतेही कहा कि तुम पासा होजाओ ॥ ३२ ॥ विष्णु बोले । तू मुझे विलावकी भांति देख रहा है सो तू विलाव होजायगा । नारद बोले । हे शिवजी ! काम तो बड़ा सिद्ध होगया परंतु वे गणेशजी ॥ ३३ ॥ ॥ ॥

आपका वृत्तान्त जाननेके लिये आरहेहैं सो उनका चूहा छीनलो । नारदजीका यह वचन सुनकर रावण विलावका शब्द करता हुआ गया सो वह चूहा भाग गया । मूषकको छोड़कर गणेशजी धीरे २ पास आये॥३४॥३५॥और उन्होंने दूसरे देखा कि विष्णु पासे वने वैठ है ॥ गणेशजीने महादेवजीको नमस्कार किया और नीचा शिरकरके खड़े होगये

भवद्वृत्तांतं ज्ञातुं च मूषकस्तस्य घर्ष्यताम् ॥ इति श्रुत्वा नारदस्य वचनं रावणो गतः ॥३४॥ कुर्वन्मार्जारवच्छन्दं मूषकोसौ पलायितः ॥ मूषकं त्यज्य गणपः शनैः शनैरुपाययौ ॥ ३५ ॥ जातो विष्णुः पाश इति दूरतस्तेन लोकितम् ॥ प्रणिपत्य महादेवं विनम्रनतकंधरः ॥ ३६ ॥ ॥ गणेशउवाच ॥ आगम्यतां देव गेहं देवीमानपुरःसरम् ॥ यदि नायासि गेहे त्वं प्राणांस्त्यजति चांबिका ॥ ३७ ॥ त्वय्यागते मया सर्वं कार्यमेतदुपायनम् ॥ शिवउवाच ॥ एषा त्र्यक्षा मया विद्याधुना गणप निर्मिता ॥ ३८ ॥ अनया क्रीडते देवी आगमिष्ये गृहे तदा ॥ गणेश उवाच ॥ सर्वथैव क्रीडितव्यं देव्या नास्त्यत्र संशयः ॥ ३९ ॥

॥ ३६ ॥ गणेशजी वोले ॥ हे पिताजी ! अव घर चलो पार्वतीने वड़े आदरसे वुलाया है और जो तुम घर नहीं चलोगे तो पार्वती प्राणोंको छोड़ देगी ॥ ३७ ॥ और कहा है कि आपके आनेपर आपकी सव वस्तु भेटकर दूंगी । शिवजी वोले । हे गणेश ! मैंने यह तीन पासोंकी विद्या अभी रची है ॥ ३८ ॥ जो देवी इससे खेले तो मैं घर आऊंगा ॥ ॥

गणेशजी बोले । देवी सब प्रकारसे खेलैगी इसमें संदेह नहीं है ॥३९॥ हे महाराज ! घर तो चलो और हे भाई स्कंद तुम चलो वा मत चलो । उनका यह वचन सुनकर महादेवजी अपने गणसमेत गये ॥ ४० ॥ नारद भी वहां गये और बड़ा बिलाव रावण भी वहां आया । सब कैलासमें पहुंचे और पार्वतीजीभी वहां आई ॥ ४१ ॥ देवीको देखकर और नमस्कारकर महादेवजी बोले । हे देवि ! गंगाके किनारे मैंने तीन पासेकी विद्या बनाई है ॥ ४२ ॥ जो तुम मुझे

आगम्यतां गृहे देव भ्रातरायाहि मा व्रज ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा ईश्वरः सगणो ययौ ॥ ४० ॥ नारदोपि गतस्तत्र महौतुरपि चागतः ॥ उपरिष्टास्तु कैलासे देवी तत्र समागता ॥ ४१ ॥ दृष्ट्वा देवीं प्रणम्यादौ महेशो वाक्यमब्रवीत् ॥ त्र्यक्षा विद्या मया देवी गंगाद्वारे विनिर्मिता ॥ ४२ ॥ अनया जयसे त्वं चेत्तदा त्वं सत्यभाषिणी ॥ देव्युवाच ॥ वृषाद्या तव सामग्री मयेयं पालिता शिव ॥ ४३ ॥ त्वया किं लाप्यते देव दर्शयस्व ममाग्रतः ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः प्रैक्षताधोमुखं हरः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

इससे जीत लोगी तो तुम सत्यभाषिणी हो । पार्वती बोलीं ॥ हे शिवजी ! नादियेको आदि लेकर मैंने आपकी यह सब सामग्रीकी तो जीतली है ॥ ४३ ॥ अब तुम क्या लगाओगे सो मेरे सामने दिखाओ । उनका यह वचन सुनकर जब महादेव नीचा मुखकर देखने लगे ॥ ४४ ॥ ॥ ॥ ॥

तो उसी क्षण नारदजीने अपनी कोपीन देदी, और वीणा दंड तथा यज्ञोपवीति देदिया और कहा इनसे खेलिये ॥ ४५ ॥ सदाशिव प्रसन्न होगये और शिव पार्वती आपसमें खेलने लगे । शिवजी जो जो दांव चाहैं विष्णु वही २ होते जांय ॥ ४६ ॥ और देवी जो जो दांव चाहै उससे उलटा पासा पड़ै । उनके आभरण आदिको महादेवजीने जीत लिया ॥ ४७ ॥ फिर पार्वतीने स्कंदके आभूपणोंको लगाया उन सबकोभी महादेवजीने जीत लिया । फिर गणेशजीने

तस्मिन्क्षणे नारदेन स्वकौपीनं समर्पितम् ॥ वीणादंडश्चोपवीतमनेन क्रीड्यतामिति ॥ ४५ ॥
सदाशिवः प्रसन्नोभूत् क्रीडनं सहचक्रतुः ॥ यद्यद्याचयते रुद्रस्तथा विष्णुः प्रजायते ॥ ४६ ॥
यद्यद्याचयते देवी विपरीतस्तदापतत् ॥ स्वकीयाभरणाद्यं च महादेवेन निर्जितम् ॥ ४७ ॥
स्कंदालंकारिकं सर्वं पुनरात्तं हरेण च ॥ ततो गणेशः प्रोवाच वाक्यं सदसि चागतः ॥ ४८ ॥
न क्रीडितव्यं हे मातः पाशो लक्ष्मीपतिः स्वयम् ॥ कृतो हरेण सर्वस्वं ते हरिष्यति मत्पिता ॥ ४९ ॥
इति पुत्रवचः श्रुत्वा पार्वती क्रोधसंयुता ॥ तथाविधां तामालोक्य रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५० ॥

सभामें आकर यह वचन कहा कि ॥ ४८ ॥ हे माता ! तुम मत खेलो शिवजीने साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान्को पासा बना लिया है सो मेरे पिता तुह्मारा सर्वस्व जीत लेंगे ॥ ४९ ॥ पुत्रका यह वचन सुनकर पार्वती बड़ी क्रोधित हुई । उनको क्रोधित देख रावणने कहा ॥ ५० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ रावण बोला ॥ पापी और नास्तिक विष्णुने मुझे भी आज शाप दिया है उन्हें यह अधर्म नहीं करना चाहिये था यह मैंने तबही कहा था ॥ ५१ ॥ पार्वती बोलीं ॥ हे पुत्र ! मैं इन सब महाबली धूर्तोंको शाप दूंगी मेरी सामर्थ्य और इनके धर्मके त्यागका फल देखना ॥ ५२ ॥ हे महादेव ! तुमने स्त्रीके साथ कपट किया है इसलिये तुह्मारा शिर सदा स्त्रीके

॥ रावण उवाच ॥ पापिष्ठेनाद्य शप्तोस्मि दुर्दुरूढेन विष्णुना ॥ अधर्मोयं न कर्तव्य इत्युक्तं च मया ततः ॥ ५१ ॥ देव्युवाच ॥ सर्वाञ्छपिष्ये वत्साहं धूर्तानेतान्महाबलान् ॥ सामर्थ्यं पश्य मे पुत्र धर्मत्यागफलं तथा ॥ ५२ ॥ देव यस्मादबलया कपटं च कृतं त्वया ॥ तस्मात्सदास्तु ते मूर्द्धाबलाभारप्रपीडितः ॥ ५३ ॥ यतस्ततः कुचेष्टा त्वं यतः शिक्षयसे मुने ॥ स्वप्ने चापि सुखं स्त्रीणां न कदाचिद्भविष्यति ॥ ५४ ॥ यतः कृता चाबलया सह माया त्वया हरे ॥ एषो वैरी रावणोयं तव भार्यां नयिष्यति ॥ ५५ ॥ हित्वा मां मातरं पुत्र बालकत्वं त्वया कृतम् ॥ अतस्त्वं न युवा वृद्धो बाल एव भविष्यसि ॥ ५६ ॥ ॥

भारसे दुखी रहै ॥ ५३ ॥ और हे नारदमुनि ! तुम जो इधर उधर बुरे कामकी शिक्षा देतेहो सो तुमको सुपनेमें भी कभी स्त्रियोंका सुख नहीं होगा ॥ ५४ ॥ और हे भगवन् ! तुमने जो स्त्रीके साथ माया रची है सो यह रावण तुमारा वैरी बनकर तुह्मारी स्त्रीको हर लेजायगा ॥ ५५ ॥ और हे पुत्रस्कंद ! तेने जो मुझ माताकी अवज्ञाकर लड़कपन

किया है इसलिये तू युवा और वृद्ध न होकर वालकही रहैगा ॥ ५६ ॥ गणेशजी वोले ॥ इस विलावरूपने इस चुहेको भगा दिया था और मार्गमें वड़ा विघ्न किया था सो इस नीचे राक्षसको भी शाप दो ॥ ५७ ॥ देवी वोली ॥ हे दुष्ट रावण ! तेने मेरे वालकका जो विघ्न किया है इसलिये ये तेरे वैरी विष्णु तुझे मारैगे ॥ ५८ ॥ पार्वतीका यह वचन

॥ गणेश उवाच ॥ अनेन चोतुरूपेण मूपकोयं पलायितः ॥ मध्ये मार्गं कृतो विघ्नः शपैनं राक्षसाधमम् ॥ ५७ ॥ देव्युवाच ॥ यस्माद्विघ्नः कृतो दुष्ट त्वया मे वालकस्य तु ॥ तस्मादयं तव रिपुर्विष्णुस्त्वां घातयिष्यति ॥ ५८ ॥ इति देव्या वचः श्रुत्वा सर्वे संक्रुद्धमानसाः ॥ देवीशापे मनश्चक्रुर्नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ कोपं कुर्वंतु मा देवा नेयं शप्या कदाचन ॥ सर्वेपामादिमायेयं यथायोग्यफलप्रदा ॥६०॥ नायं शाप असावाशीः स्मर्त्तव्या सुविचक्षणैः ॥६१॥ गंगा सदा तिष्ठतु रुद्रमस्तके वलाद्रमां वै नयतु क्षपाचरः ॥ जाया हरस्यापि यथोचिता मृतिश्चानंगतृष्णारहितः कुमारः ॥ ६२ ॥ ॥ ॥ ॥

सुनकर मनमें सव क्रोधित हुये और मनमें देवीको शाप देना चाहा तो नारदजीने कहा ॥ ५९ ॥ हे देवताओ ! कोप मत करो उन्हैं शाप नहीं लगैगा ये सवकी आदि माया हैं और यथायोग्य फलकी देनेवाली हैं ॥ ६० ॥ यह शाप नहीं है तुम तो वड़े वुद्धिमान् हो तुम्हैं इसे आशीर्वाद समझना चाहिये ॥ ६१ ॥ गंगा सदा शिवजीके मस्तकपर

रहै, रावण बलपूर्वक लक्ष्मीको हर लेजाय, महादेवकी स्त्री भी यथोचित मृत्यु होय और स्वामिकार्तिक भी कामकी इच्छासे रहित हों ॥ ६२ ॥ और मैं भी धरतीपर फिरूं और कभी न ठहरूं हे पार्वती ! तुमने अच्छा कहा अब मेरी बात सुनों ॥ ६३ ॥ यह कहकर पार्वतीजीका सब क्रोध दूर करानेके लिये मुनिश्रेष्ठ नारद नाचने लगे। और क्षमाके लिये अंचल पसारकर हाहाहीही उच्चारण करने लगे ॥ ६४ ॥ उनकी चेष्टाको देखकर सब प्रसन्न होगये । और पार्वती

अहं भ्रमामि धरणीं न स्थातव्यं कदाचन ॥ सम्यक्प्रोक्तं त्वया देवि शृणिवदानीं वचो मम ॥ ६३ ॥ सर्वक्रोधापनुत्यर्थं ननर्त मुनिपंगवः ॥ कक्षादानं चकारोच्चैर्हाहाहीहीति चाब्रवीत् ॥ ६४ ॥ तस्य चेष्टां विलोक्याथ सर्वे हर्षमवाप्नुयुः ॥ देव्युवाच ॥ भो भो विदूषकश्रेष्ठ कृतकृत्योसि नारद ॥ ६५ ॥ वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥ नारद उवाच ॥ याचयंतु वरं सर्वे किं वा किं याचयिष्यथ ॥ ६६ ॥ सर्वं ते याचयिष्यामि यथाश्रेष्ठं ब्रुवंतु तान् ॥ शिव उवाच ॥ सर्वं संक्षम्यतां देवि जितं यद्वृषभादिकम् ॥ ६७ ॥ ॥ ॥

बोलीं ॥ हे नारद ! तू अच्छा भांड बना मैं तुझपर प्रसन्न हूं ॥ ६५ ॥ तेरा कल्याण होय जो तेरे मनमें होय सो वर माग ॥ नारद बोले ॥ या तो सब अपना वर मागें अथवा जो ये सब चाहते हैं उस सबको मैंही मागताहूं सो तुम वरोंके लिये तथास्तु कहिये–शिवजी बोले। हे देवि ! क्षमा करके जो तुमने मेरा वृषभ आदि जीत लिया है उसे देदो ॥६६॥६७॥

हे जगदंबा ! औ यह वर दो कि जो मेरा है उसे कोई सौ वारके जुयेसेभी न लेसकै । देवी बोली । हे नाथ ! तुह्मारे साथ मेरा भेद स्वप्नमें भी न हो ॥ ६८ ॥ और इसीको मै वहुत मानतीहूं कि आपका क्रोध मेरे ऊपर न हो । और कार्तिकके शुक्लपक्षकी पड़वाके दिन ॥ ६९ ॥ जो मैंने तुमसे सची जय पाई है सो हे महेश्वर ! इसदिन मनुष्योंको

तन्ममास्तु द्यूतशतैर्न ग्राह्यं जगदंबिके ॥ देव्युवाच ॥ मास्तु त्वया समं नाथ स्वप्नेपि मम चांतरम् ॥ ६८ ॥ एतदेव परं मन्ये माभूत्क्रोधो ममोपरि ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेहनि सत्यवत् ॥ ६९ ॥ जयो लब्धो मया त्वत्तः सत्येनैव महेश्वर ॥ तस्माद् द्यूतं प्रकर्त्तव्यं प्रभातेत्रैव मानवैः ॥ ७० ॥ तस्माद् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ॥ विष्णुरुवाच ॥ अद्य यद्यत्करिष्यामि श्रेष्ठं वा लघुमेव च ॥ ७१ ॥ तथातथा स भवतु वरमेनं वदाम्यहम् ॥ ७२ ॥ स्कंद उवाच ॥ मातर्मनस्तपस्यायां मम तिष्ठतु सर्वदा ॥ कदापि विषये मास्तु देय एषो वरो मम ॥ ७३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सवेरे जुआ खेलना चाहिये ॥ ७० ॥ और उस जुयेमें जिसकी जीत हो उसकी वर्षभर जय होगी ॥ विष्णु बोले ॥ आज जो जो मैं बुरा भला करताहूं ॥७१॥ वह वैसाही वैसा हो यह वर मै मांगता हूं ॥ ७२ ॥ स्कंद बोले । हे माता! मेरा मन सदा तपस्यामे लगै और कभी विषयमें न लगै यह वर मुझे दो ॥ ७३ ॥ ॥ ॥

॥ गणेशजी बोले । संसारमें जितने कार्य हैं उनके आदिमें मेरा पूजन होनेके कारण मेरी कृपासे सब सिद्धहों और विन पूजनके कभी सिद्ध नहीं ॥ ७४ ॥ रावण बोला । मुझे वेदकी व्याख्या करनेकी सामर्थ्य शीघ्र होजाय और सदाशिवमें सदा मेरी निश्चल भक्ति हो ॥ ७५ ॥ नारद बोले । जो कोई मनुष्य क्रोधित हों वा प्रसन्न हों मूर्ख हों वा पंडि-

॥ गणेश उवाच ॥ संसारे यानि कार्याणि तदादौ मम पूजनात् ॥ यांतु सिद्धिं मम कृपां विना सिध्यंतु मा क्वचित् ॥ ७४ ॥ रावण उवाच ॥ वेदव्याख्यानसामर्थ्यं मम शीघ्रं भवत्विति ॥ सदाशिवे सदा चास्तु भक्तिर्मेव्यभिचारिणी ॥ ७५ ॥ नारद उवाच ॥ क्रुद्धाक्रुद्धाश्च ये केचिन्मूर्खामूर्खाश्च ये जनाः ॥ मद्वाक्यं सत्यमित्येव मा नयंतु सदासुराः ॥ ७६ ॥ इत्युक्त्वांतर्हिताः सर्वे देवा रुद्रपुरोगमाः ॥ तस्मात्प्रतिपदि द्यूतं कुर्यात्सर्वोपि वै जनः ॥ ७७ ॥ द्यूतं निषिद्धं सर्वत्र हित्वा प्रतिपदं बुधाः ॥ स्वस्योद्यमादिज्ञानाय कुर्यात् द्यूतमतंद्रितः ॥७८॥ विशेषवच्च भोक्तव्यं प्रशस्तैर्ब्राह्मणैः सह ॥ दयिताभिश्च सहितैर्नेया सा च निशा भवेत् ॥ ७९ ॥

त हों मेरी बातको देवता सदा सत्य माना करें ॥ ७६ ॥ यह कहकर रुद्र आदि सब देवता अंतर्धान होगये । इसलिये पड़वाके दिन सबको जुआ खेलना चाहिये ॥ ७७ ॥ हे पण्डितो ! पड़वाको छोड़कर जुआ सदा निषिद्ध है । अपने उद्यम आदिके ज्ञानके लिये सावधान होकर जुआ खेलें ॥ ७८ ॥ और अच्छे २ ब्राह्मणोंके साथ अच्छे २ भोजन करना

चाहिये और स्त्रियोंके साथ उस रातको वितावै ॥ ७९ ॥ फिर वड़े मानसे हार और कड़े आदि देकर अंतःपुरकी स्त्रियोंका और फौजके मनुष्योंका सत्कार करै ॥ ८० ॥ और राजा आप अपने आदमियोंको अलग २ धनसे संतुष्ट करै। फिर वृषभ और भैंसे जो औरोंके साथ लड़े हैं उनको ॥ ८१ ॥ और हाथी घोड़े योधा और फौजवाले इनका सत्कार धन वस्त्रादिसे करै। और सिंहासनपर वैठकर नट नर्तक और चरणोंका खेल देखै ॥ ८२ ॥ और वैल भैंसे आदिको

ततः संपूजयेन्मानैरंतःपुरनिवासिनीः ॥ पदातिजनसंघातान् ग्रैवेयैः कटकैः शुभैः ॥ ८० ॥
स्वनामकैः स्वयं राजा तोषयेत्स्वजनान् पृथक् ॥ वृषभान्महिषांश्चैव युध्यमानान्परैः सह ॥८१॥
गजानश्वांश्च योधांश्च पदातीन्समलंकृतान् ॥ मंचारूढः स्वयं पश्येन्नटनर्तकचारणान् ॥ ८२ ॥
योधयेत्रासयेच्चैव गोमहिष्यादिकं तथा ॥ ततोपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि काश्यप ॥ ८३ ॥
मार्गपालीं प्रवध्नीयात्तुंगे स्तंभेथ पादपे ॥ कुशकाशमयीं दिव्यां लंवकैर्वहुभिर्नृपः ॥ ८४ ॥
दर्शयित्वा गजानश्वान्सायमस्ताचलं नयेत् ॥कृतहोमैर्द्विजैः सम्यग् वध्नीयान्मार्गपालिकाम्॥८५॥

लड़ावै और भय दिखावै फिर हे काश्यप ! अपराह्ण समयमे पूर्व दिशाकी ओर॥ ८३ ॥ हे राजन् ! वहुतसी लंवी कुश और कासकी मार्गपाली कहिये वुहारीके समान झोंरी वनाकर उंचे खंभ अथवा वृक्षपर वांधै ॥ ८४ ॥ और सायं-कालको उसे हाथी और घोड़ोंको दिखलवाकर ग्रंथ मोचन करदे । और इस मार्गपाली झोंरीको अग्निहोत्री ब्राह्म-

णोंके द्वारा अच्छे प्रकारसे बंधावै ॥ ८५ ॥ और यह स्तुति पढ़े कि हे मार्गपाली ! तुमको नमस्कार है तुम सब

मार्गपालि नमस्तेस्तु सर्वलोकसुखप्रदे ॥ मार्गपालीं समुलंघ्य नीरुजः स्युः सुखान्विताः ॥ ८६ ॥ तस्मादेतत्प्रकर्त्तव्यं द्यूताद्यं विधिपूर्वकम् ॥ ८७ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्यूतविधिर्नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

लोकोंको सुख देनेवाली हो और जो मनुष्य मार्गपालीको उलांघते हैं वे नीरोग और सुखी होते हैं ॥ ८६ ॥ इसलिये यह द्यूत आदि विधिपूर्वक अच्छी भांति करना चाहिये ॥ ८७ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्यूतविधिर्नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥



वलिके पूजनमें पूर्वविद्धा प्रतिपदा कही है सो जब साढ़े तीन प्रहर प्रतिपदा वर्द्धमान तिथि हो तब पूजा करनी चाहिये ॥ १ ॥ और जो द्वितीया वृद्धगामी हो तो उसे उत्तरा कहना चाहिये वह पूर्वविद्धा नहीं हुई । पूजाके दिन दैत्योंके राजा वलिको पांच रंगके वर्णसे लिखै ॥ २ ॥ घरके चौकमें विंध्यावली उसकी स्त्रीको भी बनावै । जीभ, ताल़ु, आखे इनके प्रांतते और हाथ पैरोंके तलोंमे ॥ ३ ॥ और मुखमें लाल रंग भरै और केशोंको काले रंगसे लिखे ।

पूर्वविद्धा प्रकर्त्तव्या प्रतिपद्वलिपूजने ॥ वर्धमानतिथिर्नंदा यदा सार्द्धत्रियामिका ॥ १ ॥
द्वितीया वृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते ॥ वलिमालिख्य दैत्येंद्रं वर्णकैः पंचरंगकैः ॥ २ ॥
गृहस्य मध्यशालायां विंध्यावल्या सहान्वितम् ॥ जिह्वाताल्वक्षिणीप्रांते करयोः पादयोस्तले ॥३॥
रक्तवर्णेनास्य केशाः कृष्णेनैव समं लिखेत् ॥ सर्वांगं पीतवर्णेन शस्त्राद्यं नीलवर्णतः ॥ ४ ॥
वस्त्राद्यं श्वेतवर्णेन यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥ सर्वाभरणशोभाढ्यं द्विभुजं नृपचिह्नितम् ॥ ५ ॥
लोको लिखेद्गृहस्यांतःशय्यायां शुक्लतंदुलैः ॥ मंत्रेणानेन संपूज्य षोडशैरुपचारकैः ॥ ६ ॥

और सब अंगको पीले वर्णसे और शस्त्र आदिको नीले वर्णसे लिखै ॥ ४ ॥ और वस्त्र आदिको श्वेत वर्णसे लिखै । जिस प्रकार वह शोभायमान हो वैसा बनावे । संपूर्ण अंलकारोंसे युक्त करै दो भुजा बनावै फिर उसमें राजचिन्ह दे ॥ ५ ॥ और लोगोंको घरमें शय्याके ऊपर स्वेत चांवलोंसे भी मूर्ति लिखनी चाहिये और इस मंत्रद्वारा षोडशोपचा-

रसे पूजन करै ॥ ६ ॥ हे राजावलि ! तुमको नमस्कार है तुम दैत्य और दानवसे पूजित हो । इन्द्रके और देवताओंके शत्रु मुझे विष्णुके पास निवास दो ॥ ७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! वलिके लिये जो दान दिये जाते हैं वे अक्षय होते हैं और मैंने यह तुम्है सब दिखा दिया है ॥ ८ ॥ और हे युधिष्ठिर ! पृथ्वीपर यह दिवाली आनन्दको देनेवाली है इसलिये बड़े २ राजा लोगोंने और श्रेष्ठमुनियोंने इसका नाम कौमुदी कहा है ॥ ९ ॥ और हे युधिष्ठिर ! इस दिवालीपर जो जिम

वलिराजनमस्तुभ्यं दैत्यदानवपूजित ॥ इंद्रशत्रोमराराते विष्णुसांनिध्यदो भव ॥ ७ ॥ वलि-
मुद्दिश्य दीयंते दानानि मुनिपुंगवाः ॥ यानि तान्यक्षयाणि स्युर्मयैतत्संप्रदर्शितम् ॥ ८ ॥
कौ मुत्प्रीतिकरं यस्माद्दीयतेस्यां युधिष्ठिर ॥ पार्थिवेंद्रैर्मुनिवरैस्तेनेयं कौमुदी स्मृता ॥ ९ ॥
यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर ॥ हर्षदैन्यादिरूपेण वर्षं तस्य प्रयाति हि ॥ १० ॥
वलिपूजां विधायैवं पश्चाद्गोक्रीडनं चरेत् ॥ गवां क्रीडा दिने यत्र रात्रौ दृश्येत चंद्रमाः ॥ ११ ॥
सोमो राजा पशून्हंति सुरभीपूजकांस्तथा ॥ प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम् ॥ १२ ॥

भावसे रहता है उसका हर्ष शोक आदिसें वैसाही वर्ष व्यतीत होता है ॥ १० ॥ इसप्रकार वलिकी पूजाकर पीछे गौओंकी क्रीड़ा करनी चाहिये । और जिस दिन रात्रिमें चन्द्रमा दीखे उस दिन गौओंकी क्रीड़ा न करै ॥ ११ ॥ क्योंकि चन्द्रराज प्रभुओंको और गौओंकी पूजा करनेवालोंको हानि कारक है इसलिये अमावस्या और प्रतिपदाके संयोगमें

गायोंका क्रीड़न करै यही संमत श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥ और जो परविद्धामें करता है तो पुत्र स्त्री और धनका क्षय होता है। पूजनके दिन गौओंको अलंकार आदिसे सजाकर गौग्रास दे और उनकी पूजा करै ॥ १३ ॥ गीत गाता हुआ और वाजे वजाता हुआ उन्हें नगरके वाहर लेजाय। फिर वहांसे लाकर उनकी आरती करै ॥१४॥ और जो पूजनके दिन प्रतिपदा थोड़ी हो तो स्त्री आरती उतारे। और द्वितीयाके सायंकालको मंगल मालिका अर्थात् आरती करै ॥१५॥ इसप्रकार नी-

परविद्धासु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः ॥ अलंकार्यास्तदा गावो गोग्रासादिभिरर्चिताः ॥ १३ ॥
गीतवादित्रनिर्घोषैर्नयेन्नगरवाह्यतः ॥ आनीय च ततः पश्चात्कुर्यान्नीराजने विधिम् ॥ १४ ॥
अथ चेत्प्रतिपत्स्वल्पा नारी नीराजनं चरेत् ॥ द्वितीयाया ततः कुर्यात्सायं मंगलमालिका ॥१५॥
एवं नीराजनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ प्रतित्पूर्वविद्धैव यष्टिकाकर्षणे भवेत् ॥ १६ ॥
कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् ॥ देवद्वारे नृपद्वारेथवा नेया चतुष्पथे ॥ १७ ॥
तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथैकतः ॥ गृहीत्वा कर्षयेयुस्ते यथासारं मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥

राजन करै तो सब पापोंसे छूट जाता है । और पूर्वविद्धा प्रतिपदाके दिनही यष्टिकाकर्षण कहिये लंबी लकड़ीको खैंचातानी करै ॥ १६ ॥ और उस लकड़ीके ऊपर कुशकाशलपेटे और उसे वड़ी पक्की और नई वनावै । और मंदिरके द्वारपर अथवा राजाके द्वारपर अथवा चौराहेपर लेजाय ॥ १७ ॥ उसे एक तरफ राजाके पुत्र और एक ओर

हीन वर्णोंके बालक पकड़कर अपने बलके अनुसार वारं २ खैचे ॥ १८ ॥ दोनों ओर बालकोंकी संख्या बराबर होय और सब अधिक बली होंय । जो खेलमें हीन जातिवालोंकी जीत हो तो वर्षभरतक राजाकी जय होय ॥ १९ ॥

समसंख्या द्वयोः कार्या सर्वोपि बलवत्तरः ॥ जयोत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम् ॥ १९ ॥
उभयोः पृष्ठतः कार्या रेखा सा कर्षकोपरि ॥ रेखांते यो नयेत्तस्य जयो भवति नान्यथा ॥२० ॥
जयचिह्नमिदं राजा निदधीत प्रयत्नतः ॥ २१ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दोनों खैंचनेवालोंकी पीठके बीचमें एक रेखा करनी चाहिये । रेखाके बाहरतक जो खीचकर लेजाय उसीकी जीत समझनी चाहिये अन्यथा नहीं ॥ २० ॥ और इसीको राजा यत्नपूर्वक अपना जय चिन्ह समझे ॥ २१ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥



॥ वालखिल्या वोले । कार्तिकके शुक्लपक्षमें अन्नकूट करै और उसदिन गोवर्द्धन उत्सव करै और कहै कि इससे विष्णु प्रसन्न हौंय ॥ १ ॥ ऋषि वोले ॥ गौवर्द्धन कौनसे देवता है उन्हें क्यौं पूजते हैं उनका उत्सव क्यौं करते हैं और करनेसे क्या फल होता है ॥ २ ॥ वालखिल्या वोले ॥ एक समय श्रीकृष्ण भगवान् कार्तिककी पडवाके दिन ग्वाल

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिकस्य सिते पक्षे अन्नकूटं समाचरेत् ॥ गोवर्द्धनोत्सवस्तत्र श्रीविष्णुः प्रीयतामिति ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कोसौ गोवर्द्धनो देवः कस्मात्तं परिपूजयेत् ॥ कस्मात्तदुत्सवः कार्यः कृते किं च फलं भवेत् ॥ २ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ एकदा भगवान् कृष्णो गतो गोपालकैः सह ॥ गृहीत्वा गाः प्रतिपदि कार्तिकस्य गतो वने ॥ ३ ॥ तत्र नानाविधा लोका गोप्यश्चापि सहस्रशः ॥ गोवर्द्धनसमीपे तु कुर्वंत्युत्सवमादरात् ॥ ४ ॥ खाद्यं लेह्यं च चोष्यं च पेयं नानाविधं कृतम् ॥ कृत्वा नगं तथान्नानां नृत्यंति च परे जनाः॥५॥ नानापताकाः संगृह्य केचिद्धावंति चाग्रतः ॥ केचिद्गोपाः प्रनृत्यंति स्तुवंति च तथापरे ॥ ६ ॥

वालोंके साथ गायोंको लेकर वनमें गये ॥ ३ ॥ वहां अनेक भांतिके लोग और हजारो ग्वाल भी थे । और गोवर्द्धन पर्वतके पास वड़े आदरसे उत्सव करने लगे ॥ ४ ॥ और वहुतसे लोग खाने पीनेकी तथा चाटने चूसनेकी अनेक प्रकारकी वस्तु वनाकर और अन्नोंके पर्वत वनाकर उसके सामने नृत्य करैं ॥५॥ कितनेही गोप रंग २ की झंडिया लेकर

उसके आगे दौडें कोई उछल कूटकर नाचै है कोई स्तुति करै ॥ ६ ॥ इधर उधर हजारों तोरण और वितान लग रहे है । श्रीकृष्ण इस कौतुकको देख यह कहने लगे ॥७॥ श्रीकृष्ण वोले ॥ यह काहेका उत्सव है और किस देवताकी पूजा करते हो अथवा पक्वान्न खानेके लिये उत्सव मनाया है ॥८॥ जो देवता नहीं खाते हैं उन्हे अन्न देते हो और जो देवता

इतस्ततो वितानानि तोरणानि सहस्रशः ॥ दृष्ट्वैवं कौतुकं कृष्णो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७ ॥
॥ कृष्ण उवाच ॥ उत्सवः क्रियते कस्य देवता का च पूज्यते ॥ पक्वान्नं खादनार्थाय कल्पितो
चोत्सवोथवा ॥ ८ ॥ न भक्षयंति ये देवास्तेभ्योन्नं तु प्रदीयते ॥ प्रत्यक्षभोजिनो देवास्ते-
भ्योन्नं तु न दीयते ॥ ९ ॥ दृष्ट्वेदृशीं भावबुद्धिं गोपाला वेधसा कृताः ॥ गोपाला ऊचुः ॥
एवं मा वद कृष्ण त्वं वृत्रहंतुर्महोत्सवः ॥ १० ॥ वार्षिकः क्रियतेस्माभिर्देवेंद्रस्य तु तुष्टये ॥ इंद्रं
पूजय भद्रं ते भविष्यति न संशयः ॥ ११ ॥ यः करोति च देवेंद्र महोत्सवमिमं वरम् ॥
दुर्भिक्षं च तथा वृष्टिर्देशे तस्य न जायते ॥ १२ ॥ ॥ ॥

प्रत्यक्ष खाते हैं उनको अन्न नही देते ॥ ९ ॥ ब्रह्म रचित ग्वाल ऐसी भावबुद्धिको देखकर ॥ ग्वाल वोले ॥ हे श्रीकृष्ण ! तुम ऐसा मत कहो यह इन्द्रका उत्सव है ॥१०॥ और इसे हम वर्षमें दिन इन्द्रके प्रसन्नार्थ किया करते है । इंद्रको पूजो तुह्मारा कल्याण होगा इसमे संदेह नहीं है ॥ ११ ॥ जो इस इन्द्रके सुंदर महोत्सवको करता है तो उसके देशमें

दुर्भिक्ष और अवृष्टि नहीं होती है ॥ १२ ॥ इसलिये हे कृष्ण ! तुम भी आज सब प्रकारसे उत्सव करो। श्रीकृष्ण बोले ॥ यह गोवर्द्धन ही साक्षात् वृष्टि और सौभाग्यका करनेवाला है॥ १३ ॥ मथुरावासी और व्रजवासियोंको सब प्रकारसे यत्नपूर्वक इसको पूजना चाहिये। इस पूज्यको छोड़ लोग इन्द्रको वृथा क्यों पूजते हैं ॥ १४ ॥ इसका उत्सव मनाओ यह प्रत्यक्ष भोजन करैगा। और यह खेती उत्पन्न करैगा और सब उपद्रवोंको नाश करैगा ॥ १५ ॥

तस्मात्त्वमपि कृष्णात्र कुरूत्सवमनेकधा ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ अयं गोवर्धनः साक्षाद्वृष्टिसौभाग्यकारकः ॥ १३ ॥ मथुरास्थैर्व्रजस्थैश्च सर्वथायं प्रयत्नतः ॥ हित्वैनं पूजितं लोका वृथेंद्रः पूज्यते कथम् ॥ १४ ॥ उत्सवः क्रियतामस्य प्रत्यक्षोयं भुनक्ति च ॥ करिष्यति कृषिं सम्यक् उपसर्गान्हनिष्यति ॥ १५ ॥ यदायदा संकटं मे महदागत्य जायते ॥ तदातदा पूजयामि दृश्यं गोवर्द्धनं गिरिम् ॥१६॥ श्रवणे श्रवणे गोपा वार्त्ताः कुर्वंति किंत्विदम् ॥ तेषां मध्ये कैश्चिदुक्तं कृष्णोक्तं क्रियतामिति ॥१७॥ यदा खादति चान्नं च नगो गोवर्द्धनस्तदा॥तदा कृष्णोक्तमखिलं सत्यमेव भविष्यति॥१८॥

जब जब मुझे बड़ाभारी संकट आजाता है तबही तब मैं साक्षात् गोवर्द्धन पर्वतकी पूजा करताहूं ॥ १६ ॥ ग्वाल बाल एक दूसरेके कानमें बातें करते हैं कि यह क्या बात है। फिर उनमेंसे कितनों हीने कहा कि कृष्णजीका कहा करो ॥ १७ ॥ जब गोवर्द्धन पर्वत अन्न खा लेगा तो श्रीकृष्णजीका सब कहना सत्य होजायगा ॥ १८ ॥ ॥

फिर सब ग्वालोंने निश्चय करके नन्दजीसे कहा कि जो यह बात है तो जो निश्चय ठहरै सो करो ॥ १९ ॥ फिर कृष्णजीने अच्छा यह कहकर और सबके अधिष्ठाता बनकर सुन्दर गोवर्द्धन महोत्सव करनेका निश्चय किया ॥ २० ॥ ग्वालोंने जो जो कृष्णजीने कही नाना भांतिकी सामग्री तयार की और पर्वतके आगे रंग २ के वस्त्र बिछाये और

सर्वं एव तदा गोपा विनिश्चित्य च नंदनम् ॥ वचनं प्राहुरित्थं चेन्निश्चयोस्ति तथा कुरु ॥ १९ ॥
सर्वेषामग्रणीर्भूत्वा गोवर्द्धनमहोत्सवम् ॥ ततः कृष्णस्तथेत्युक्त्वा सूत्सवे कृतनिश्चयः ॥ २० ॥
नानासामग्रिकं चक्रुर्यथोक्तं नंदसूनुना ॥ नानावस्त्राणि पात्राणि चास्तृतानि नगाग्रतः ॥ २१ ॥
तत्र दत्तान्नपुंजस्तु यथा गोवर्द्धनो महान् ॥ भक्ताः सूपानि शाकाश्च कांजिकं वटकास्तथा ॥ २२ ॥
पूरिकाद्यं च लड्डूकाः शष्कुल्यो मंडकादिकम् ॥ दुग्धं दधि घृतं क्षौद्रं लेह्यं चोष्यं तथामिषम् ॥ २३ ॥
कथिकाद्यं सर्वमपि तत्र दत्त्वा वचोब्रवीत् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ मंत्रं पठित्वा गोपा-
ला नेत्रे संमीलयंतु च ॥ २४ ॥

भांति २ के पात्र धरे ॥ २१ ॥ जिससे गोवर्द्धन बडा दीखे वैसे वहां अन्नके ढेर लगादिये। उसमें दाल भात शाक और कांजीके बड़े ॥२२॥ पूरियां लड्डू गुझियां और गुलगुले आदि। दूध दही घृत शहद और अनेक प्रकारके भोजन तथा चाटने चूसनेसे पदार्थ ॥ २३ ॥ और कढ़ी आदि सब पदार्थोंको स्थापित कर यह वचन बोले। श्रीकृष्ण बोले। हे

ग्वालो ! मंत्र पढ़कर नेत्र मूंदलो ॥ २४ ॥ गोवर्द्धन भोजन कर लेगा इसमें संदेह नहीं है ॥ श्रीकृष्ण बोले ॥ " हे गोवर्द्धन ! हे पृथ्वीधर ! हे गोकुलरक्षक ! ॥ २५ ॥ बहुतसी बाहुओंसे छाया करनेवाले ! करोड़ों गायें देनेवाले होउ। जो लक्ष्मी लोकपालोंके यहां धेनुरूपमें स्थित है ॥ २६ ॥ और यज्ञके लिये घृत धारण करती है वह मेरे पापको

गोवर्द्धनेन भोक्तव्यं सर्वमन्नं न संशयः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक ॥ २५ ॥ बहुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव ॥ लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ॥ २६ ॥ घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ॥ पठित्वैवं मंत्रयुगं सर्वे मुद्रितलोचनाः ॥ २७ ॥ कृष्णो गोवर्द्धनं विश्य सर्वमन्नमभक्षयत् ॥ भक्षणावसरे कैश्चिद्धूर्तैर्दृष्टो गिरिस्तथा ॥ २८ ॥ अतीवाभूत्तदाश्चर्यं तच्चेतसि मुनीश्वराः ॥ ततो नाडीद्वयात् कृष्णो गोपान्वाक्यमुवाच सः ॥ २९ ॥ अहो गोवर्द्धनेनात्र क्षणात् भुक्तमिदं स्फुटम् ॥ पश्यंतु सर्वे गोपालाः प्रत्यक्षोयं न संशयः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ॥

दूर करै। इसप्रकार ये दो मंत्र पढ़कर सबने नेत्र बंदकर लिये ॥ २७ ॥ और श्रीकृष्णजीने गोवर्द्धनमे प्रवेश करके सब अन्न भोजनकर लिया। और भक्षणके समय कितनेही धूर्तोंने उसे देख लिया ॥ २८ ॥ और हे मुनीश्वरो ! उनके चित्तमें बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर दो घड़ीमें उन कृष्णचन्द्रने उन गोपोंसे कहा ॥ २९ ॥ अरे देखो ! इस गोवर्द्धनने

क्षणभरमें सबके सामने भोजनकर लिया सब गोप देखलें यह प्रत्यक्ष है इसमें संदेह नहीं है ॥ ३० ॥ जो तुम्हें सुखकी इच्छा हो तो इस महोत्सवको करो । यह बात सुनकर सबको मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ३१ ॥ और फिर तो उन्होंने इन्द्रके उत्सवसे सौगुना बढ़कर गोवर्द्धनका उत्सव किया । और उस समय इन्द्रके उत्सवको देखनेकी इच्छासे नारदजी आये । और गोवर्द्धनका उत्सव देखकर इन्द्रकी सभामें गये ॥ ३२ ॥ इन्द्रने उनका आदरकर उनसे बार २

यद्यस्ति सुखवांछा वः कुर्वत्वेतन्महोत्सवम् ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सर्वे विस्मितमानसाः ॥३१॥ गोवर्द्धनोत्सवं चक्रुरैंद्राच्छतगुणं तदा ॥ इंद्रोत्सवं द्रष्टुकामः समागच्छत्स नारदः ॥ गोवर्द्धनोत्सवं दृष्ट्वा देवेंद्रस्य सभां ययौ ॥ ३२ ॥ देवेंद्रेण कृतातिथ्यो वारंवारं प्रणोदितः ॥ नोवाच वचनं किंचिद्देवेंद्रः प्रत्यभाषत ॥ ३३ ॥ इंद्र उवाच ॥ युष्माकं कुशलं विप्र वर्तते वा नवेति वा ॥ मदग्रे कथ्यतां दुःखं मुनीश्वर हराम्यहम् ॥ ३४ ॥ नारद उवाच ॥ अस्माकं किंमुनींद्राणामिंद्र दुःखस्य कारणम् ॥ परं गोवर्द्धनः शैल इंद्रो जातो विलोकितः ॥ ३५ ॥ ॥

पूंछा परंतु जब उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया तो फिर इन्द्रने कहा ॥३३॥ इन्द्र बोले । हे मुनिराज ! आपकी कुशल तो है अथवा नहीं ! हे मुनीश्वर मेरे सामने दुःख कहो तो मैं उसे दूर करदूं ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले ॥ हम मुनीश्वरोंको दुःखका क्या कारण है परंतु हमने गोवर्द्धन पर्वतको इन्द्र होता हुआ देखा ॥ ३५ ॥ ॥ ॥

हे इन्द्र ! गोकुलमें सब गोप तुह्मारे उत्सवके दिन इसकी पूजा करते हैं अब इसके पीछे वही सब यज्ञ भागोंको लेगा ॥ ३६ ॥ और क्रम २ से इन्द्रासन और इन्द्राणी और सबको वही हथया-लेगा क्यों कि जिसका पराक्रम होता है उसीका सर्वत्र राज्य होजाता है ॥ ३७ ॥ और हम मुनीश्वरोंको क्या है कोई इन्द्रासनपर बैठे। और तुम वर्षभरमें वा छ महीनेमें उसे आयाही देखना ॥ ३८ ॥ इन्द्रसे ऐसा कहकर नारदजी पृथ्वीपर गये। नारदजीका यह वचन

त्वदुत्सवे पूज्यतेसौ गोपालैर्गोकुले हरे ॥ अतः परं यज्ञभागान्ग्रहीष्यति स एव हि ॥ ३६ ॥
इंद्रासनं तथेंद्राणीं क्रमात्सर्वं ग्रहीष्यति ॥ यस्य वीर्यं च सर्वत्र तस्य राज्यं प्रजायते ॥ ३७ ॥
किमस्माकं मुनींद्राणां य एवेंद्रासनं वसेत् ॥ वर्षाद्वा मासषट्काद्वा द्रष्टव्योसौ समागतः ॥ ३८ ॥
इत्थमुक्त्वैव देवेंद्रं प्रययौ नारदो भुवि ॥ इत्थं नारदवाक्यं स श्रुत्वा शक्रोभ्यभाषत ॥ ३९ ॥
अहो आवर्तसंवर्तद्रोणनीलकपुष्कराः ॥ सर्वमेघा जलं गृह्य करकाभिः समन्विताः ॥ ४० ॥
प्रयांतु गोकुलं शीघ्रं मारयंतु च वल्लवान् ॥ गोवर्द्धनं स्फोटयंतु वज्रपातैरनेकशः ॥ ४१ ॥

सुनकर इन्द्रने कहा ॥ ३९ ॥ हे आवर्त ! हे संवर्त ! हे द्रोण ! हे नीलक ! हे पुष्कर ! सब मेघ ओलोंसहित जलको लेकर ॥ ४० ॥ शीघ्र गोकुलको जाओ और गोपोंको मारो और वज्रपातोंसे गोवर्द्धनके बहुतसे टुकड़े कर डालो ॥ ४१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

गायोंको मार डालो और घरोंको ढादो। हे मुनीश्वरो! फिर तो गोकुलमें वादलोंकी घटाओंका गर्जन होने लगा ॥ ४२ ॥ और मध्याह्नके समय रात्रिकासा अंधकार फैल गया। सब गोप कांपने लगे कि यह क्या कुसमय आया ॥ ४३ ॥ और फिर वादलोंने ओलोंसँहित बड़ा पानी वरसाया। गोपाल बोले ॥ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हाय कृष्ण! अब

घातयंतु च गाश्चापि गृहाण्युच्चाटयंतु च ॥ ततो घनघटाघोषो गोकुलेभून्मुनीश्वराः ॥ ४२ ॥
जातो रात्र्यंधकारोथ मध्याह्नसमये तदा ॥ कंपिता वल्लवाः सर्वे किमकांडे ह्युपस्थितम् ॥ ४३ ॥
ववर्षुर्बहु पानीयं करकाभिस्तदा घनाः ॥ गोपाला ऊचुः ॥ हा कृष्ण कृष्ण हे कृष्ण किमिदानीं विधीयताम् ॥ ४४ ॥ मृतास्म वल्लवाः सर्वे कुपितोयं हि वासवः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥
॥ निमील्याक्षीणि भो गोपा ध्येयो गोवर्द्धनो नगः ॥ ४५ ॥ रक्षा कर्त्ता स एवास्ति नान्योस्ति जगतीतले ॥ इत्युक्त्वोत्पाट्य तं शैलं तत्तले स्थापितास्तु ते ॥ ४६ ॥ ततः प्रोवाच वचनं गोपान्प्रति बलानुजः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ अहो गोवर्द्धनेनैतत्स्थलं दत्तं व्रजे व्रजाः ॥ ४७ ॥

क्या करैं ॥ ४४ ॥ इस इन्द्रके कुपित होनेसे हम सब गोप मरे ॥ श्रीकृष्ण बोले ॥ हे गोपो! नेत्र बंद करके गोवर्द्धन पर्वतका ध्यान करो ॥ ४५ ॥ वही पृथ्वीतलपर रक्षा करनेवाला है दूसरा कोई नहीं है। यह कहकर भगवान्ने उस पर्वतको उठाकर सबको उसके नीचे खड़ाकर लिया ॥ ४६ ॥ फिर श्रीकृष्णजीने गोपोंसे यह बात कही ॥ श्रीकृष्ण

बोले ॥ हे गोपो ! गोवर्द्धनने व्रजमें यह स्थान दिया है ॥ ४७ ॥ इस साक्षात् उत्तम पर्वतको छोड़ और कौन ऐसा स्थान देनेको समर्थ है इसप्रकार इन्द्रने सात दिनतक मूसलधार मेह वरसाया ॥ ४८ ॥ अनेक देशोंका नाश होगया परंतु गोप उसकी शरणसे नहीं गये । गोवर्द्धनके नामसे श्रीकृष्ण नित्य ॥ ४९ ॥ पक्वान्न गोपोंको देने लगे और वे वहां सुख-

अन्यः कोस्ति स्थलं दातुं प्रत्यक्षोयं नगोत्तमः ॥ एवं सप्तदिनं तेन वृष्टं मुसलधारया ॥ ४८ ॥ नानादेशा ययुर्नाशं न गोपाः शरणं ययुः ॥ गोवर्द्धनस्य नाम्नैव कृष्णो नित्यं प्रयच्छति ॥४९॥ पक्वान्नानि च गोपेभ्यस्तत्र ते सुखमावसन् ॥ इत्येवं कुतुकं दृष्ट्वा सत्यलोकं ययौ मुनिः ॥५०॥ ब्रह्मन्किं त्वं प्रसुप्तोसि जायते सृष्टिनाशनम् ॥ तस्माच्छीघ्रं गोकुले त्वं गत्वा वृष्टिं निवारय ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ किमर्थं जायते वृष्टिः कथं वृष्टिविनाशनम् ॥ कश्चिद्दैत्यः समुत्पन्नः सर्वमाख्याहि मे मुने ॥ ५२ ॥ नारद उवाच ॥ नोत्पन्नो दैत्यराट् कश्चित्त्यक्तः शक्रोत्सवो भुवि ॥ यादवैरिति संक्रुद्ध इंद्र एवं प्रवर्षति ॥ ५३ ॥ ॥ ॥

पूर्वक रहने लगे । यह कौतुक देखकर नारदमुनि सत्य लोकको गये ॥ ५० ॥ और कहा हे ब्रह्माजी ! क्या तुम सो रहे हो सृष्टिका नाश हुआ जाता है इसलिये तुम शीघ्र गोकुलमें जाकर वर्षा वंद करो ॥५१॥ ब्रह्माजी वोले ॥ वर्षा क्यों हो रही है और वर्षा कैसे वंद हो । क्या कोई दैत्य उत्पन्न होगया हे मुनीश्वर ! मुझसे सव वात कहो ॥५२॥ नारदजी वोले ॥ दैत्य-

राज तो कोही उत्पन्न नहीं हुआ पृथ्वीपर यादवोंने इन्द्रका उत्सव छोड़ दिया है इस कारण इन्द्र क्रोध करके बड़ा पानी वरसा रहा है ॥ ५३ ॥ उनका वचन सुनकर ब्रह्माजी हंसपर चढ़कर वहां आये कि जहां इन्द्र क्रोधसे इसप्रकार वर्षाकर रहा था ॥ ५४ ॥ ब्रह्माजी वोले । हे इन्द्र ! तुह्मारी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट क्यौं होगई, भगवान् त्रिलोकीके नाथ हैं उन्है तुम कैसे जीतोगे ॥ ५५ ॥ देखो उन्होंने हाथकी एक अंगुलीपर गोवर्द्धनको धर लिया सो हे इन्द्र ! उनके साथ

इति तस्य वचः श्रुत्वा हंसमारुह्य विश्वसृट् ॥ आगतो यत्र शक्रोस्ति क्रोधादेवं प्रवर्षति॥५४॥ ब्रह्मोवाच ॥ कथं व्यवसिता बुद्धिरीदृशी ते सुरेश्वर ॥ त्रैलोक्यनाथो भगवान्निर्जितव्यः कथं त्वया ॥ ५५ ॥ एकयैव करांगुल्या पश्य गोवर्द्धनो धृतः ॥ ईर्ष्या तेन कथं साकं त्वया शक्र विधीयते ॥ ५६ ॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा मेघान्संस्तभ्य वासवः ॥ प्रणिपत्य च तं कृष्णं शक्रो वचनमब्रवीत् ॥ ५७ ॥ क्षंतव्या मत्कृतिर्विष्णो दासोहं शरणं गतः ॥ यद्रोचते तत्प्रदेयमपराधापनुत्तये ॥ ५८ ॥

तुम ईर्ष्या कैसे कर सक्ते हो ॥ ५६ ॥ ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर इन्द्रने वादलोको रोक लिया । और इन्द्र उन कृष्ण भगवान्को प्रणामकर यह वोले ॥ ५७ ॥ हे विष्णु भगवन् ! जो मैंने किया उसे क्षमा करो मैं तुह्मारा दास और तुह्मारी शरणहूं । जो तुह्मै अच्छा लगे वह मैं इस अपराध दूर करनेके लिये भेट करूं ॥ ५८ ॥

॥ श्रीकृष्ण बोले ॥ गोपोंने तुह्मारी सामर्थ्य न जानकर यह काम किया और उन्हका यही दंड अच्छा था जो तुमने किया ॥ ५९ ॥ मैं तो तुह्मारा छोटा भाई और तुह्मारा आज्ञाकारीहूं मैंने तो जो मेरी शरण आये उनकी रक्षा करी है ॥ ६० ॥ हे इन्द्र ! जो तुम प्रसन्न हो तो इस उत्सवको गोवर्द्धन पर्वतको दे दो क्यौ कि उसने गोकुलकी रक्षा करी

॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ अज्ञात्वा तव सामर्थ्यं गोपालै रचितं त्विदम् ॥ एषां दंडस्तु योग्योयं सम्यगेवत्वया कृतः ॥ ५९ ॥ अहं कनीयांस्ते भ्राता तवाज्ञापरिपालकः ॥ शरणागतजातीनां रक्षणं तु मया कृतम् ॥ ६० ॥ यदि प्रसन्नो देवेश उत्सवोयं प्रदीयताम् ॥ गोवर्द्धनाय गिरये गोकुलं रक्षितं यतः ॥ ६१ ॥ शक्रोपि च तथेत्युक्त्वा तत्रैवांतरधीयत ॥ गते शक्रे गिरींद्रं तं संस्थाप्य हरिरब्रवीत् ॥ ६२ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ गोपा दृष्टं तु माहात्म्यमद्भुतं शैलजं तु यत् ॥ अद्यारभ्य प्रकर्त्तव्यो महान्गोवर्द्धनोत्सवः ॥ ६३ ॥ गोवर्द्धनेन शैलेन निखिला तु धरा धृता ॥ एतत्सारमजानद्भिः कथं संक्रीडितं पुरा ॥ ६४ ॥ ॥ ॥

है ॥ ६१ ॥ इन्द्र "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर वहीं अंतर्धान होगये । और इन्द्रके चले जानेपर भगवान् उस गोवर्द्धनको वहीं धरकर बोले ॥ ६२ ॥ श्रीकृष्णबोले॥ हे गोपो ! पर्वतके अद्भुत माहात्म्यको देखो और आजसे लेकर गोवर्द्धनका बड़ा उत्सव करना चाहिये ॥ ६३ ॥ गोवर्द्धन पर्वतने सब पृथ्वीको धारणकर लिया इस भेदको तुम पहिले नहीं

जानकर इन्द्रकी पूजा क्यों करते थे ॥६४॥ आज पर्वतराजने मेरे सामने सबसे यह कहा है। कि इस सेवाके प्रभावसे मैंने बड़ा भारी बल पाया ॥ ६५ ॥ इसलिये हरवर्ष अन्नकूट करना चाहिये इससे गायोंका भला होगा और पुत्र पौत्र आदि संतान होगी ॥ ६६ ॥ और गोवर्द्धनके उत्सवसे सदा ऐश्वर्य और सुख होगा । और जो कार्तिकस्नान और जप

अद्य पर्वतराजस्तु सर्वं ब्रूते ममाग्रतः ॥ एतत्सेवाप्रभावेन बलं लब्धं मया महत् ॥ ६५ ॥
प्रतिसंवत्सरं तस्मादन्नकूटं विधीयताम् ॥ गवां भवति कल्याणं पुत्रपौत्रादिसंततिः ॥ ६६ ॥
ऐश्वर्यं च सदा सौख्यं भवेद्गोवर्द्धनोत्सवात् ॥ कृतं यत्कार्तिकस्नानं जपहोमार्चनादिकम् ॥६७॥
सर्वं निष्फलतामेति न कृते पर्वतोत्सवे ॥ एवमुक्तास्तु ते गोपाः सर्वे सत्यममन्यत ॥ ६८ ॥
ययुः कृष्णादयः सर्वे नवमे हनि गोकुलम् ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातमस्मा-
भिस्तु मुनीश्वराः ॥ ६९ ॥ श्रीकृष्णस्य तु संतुष्ट्यै ह्यन्नकूटं विधीयताम् ॥ नानाप्रकारशाकानि
देशकालोद्भवानि च ॥ ७० ॥ ॥ ॥ ॥

होम अर्चन आदि किया है ॥ ६७ ॥ वह सब गोवर्द्धनका उत्सव न करनेसे निष्फल जाता है। जब उन गोपोंसे यह कहा गया तो उसे सबने सत्य माना ॥ ६८ ॥ और श्रीकृष्ण आदि सब गोप नवमें दिन गोकुलको गये ॥ वालखिल्या बोले ॥ हे मुनीश्वरो ! यह सब हमने तुमसे कहा ॥ ६९ ॥ श्रीकृष्णजीके प्रसन्नार्थ अन्नकूट करै। अनेक प्रकारके

शाक जो देशमें समयपर मिलैं ॥ ७० ॥ और भाति २ के पक्वान्न अपनी शक्तिके अनुसार करै। और सब अन्नका

पक्वान्नानि विचित्राणि कुर्याच्छक्त्यनुसारतः ॥ सर्वान्नपर्वतं कुर्याच्छ्रीकृष्णाय निवेदयेत् ॥७१॥
गोवर्द्धनस्वरूपाय मंत्रौ कृष्णोदितौ पठन् ॥ एवं यः कुरुते लोके विष्णुलोके महीयते ॥७२॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

पर्वत बनाकर श्रीकृष्णके अर्पण करै ॥ ७१ ॥ और भगवान्ने जो दो मंत्र पहिले कहे है उन्हैं पर्वतके सामने पढ़ै। जो कोई ऐसा करता है वह विष्णुलोकमें सुख भोगता है ॥ ७२ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिकस्य सिते पक्षे द्वितीया यमसंज्ञिता ॥ तत्रापराह्णे कर्त्तव्यं सर्वथैव यमार्चनम् ॥ १ ॥ प्रत्यहं यमुनागत्य यमं संप्रार्थयत्पुरा ॥ भ्रातर्मम गृहे याहि भोजनार्थं गणावृतः ॥ २ ॥ अद्य श्वो वा परश्वो वा प्रत्यहं वदते यमः ॥ कार्यव्याकुलचित्तानामवकाशो न जायते ॥ ३ ॥ तदैकदा यमुनया वलात्कारान्निमंत्रितः ॥ स गतः कार्तिके मासि द्वितीयायां मुनीश्वराः ॥ ४ ॥ नारकीयजनान्मुक्त्वा गणैः सह रवेः सुतः ॥ कृतातिथ्यो यमुनया नानापाकाः कृताः खग ॥ ५ ॥ ॥ ॥

॥ वालखिल्या बोले । कार्तिकशुक्लपक्षकी द्वितीया यमद्वितिया कहाती है उसदिन दो पहर पीछे सब प्रकारसे यमका पूजन करना चाहिये ॥ १ ॥ पूर्वकालमें यमुनाजीने नित्य आकर यमसे प्रार्थना करी कि हे भाई ! अपने गणोंको साथ लेकर मेरे घर भोजन करने आओ ॥ २ ॥ यमराज नित्य यही कहते रहे कि आज आऊंगा कल आऊंगा परसों आऊंगा क्यौं कि कामके मारे घवरायेहुए चित्तवालोंको अवकाश नहीं रहता है ॥ ३ ॥ फिर एक दिन यमुनाजीने आग्रहसे निमंत्रण दिया तो हे मुनीश्वरो ! कार्तिकशुक्ला द्वितीयाके दिन ॥ ४ ॥ वह यमराज नरकके सब मनुष्योंको छोड़ अपने गणोंके साथ गये ॥ यमुनाजीने उनका वडा अतिथिसत्कार किया और हे गरुड़ ! अनेक प्रकारके पाक वनाये ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

यमुनाने उनकी देहमे सुन्दर गंधयुक्त तैल लगाकर उनका उवटन किया और फिर यमराजको स्नान कराया ॥ ६ ॥ फिर उनको उत्तम आभूपण और रंग २ के वस्त्र पहिराये चंदन लगाया और अनेक माला पहिराकर सिंहासनपर वैठाया ॥ ७ ॥ और सौनेके थालमे भांति २ के पक्वान्न परोसकर यमुना देवीने प्रसन्न चित्तसे यमराजको भोजन

कृताभ्यंगो यमुनया तैलैर्गंधमनोहरैः ॥ उद्वर्तनं लापयित्वा स्नापितः सूर्यनंदनः ॥ ६ ॥ ततोलंकारिकं दत्तं नानावस्त्राणि चंदनम् ॥ माल्यानि च प्रदत्तानि मंचोपरि उवाविशत् ॥ ७ ॥ पक्वान्नानि विचित्राणि कृत्वा सा स्वर्णभाजने ॥ यमायाभोजयद्देवी यमुना प्रीतमानसा ॥ ८ ॥ भुक्त्वा यमोपि भगिनीमलंकारैः समर्चयत् ॥ नानावस्त्रैस्ततः प्राह वरं वरय भामिनि ॥ ९ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा यमुना वाक्यमब्रवीत् ॥ यमुनोवाच ॥ प्रतिवर्षं समागच्छ भोजनार्थं तु मद्गृहे ॥ १० ॥ अद्य सर्वे मोचनीयाः पापिनो नरकाद्यम ॥ येद्यैव भगिनीहस्तात्करिष्यंति च भोजनम् ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥

कराया ॥ ८ ॥ फिर भोजनकर यमने भी आभूपण और भांति २ के वस्त्रोंसे वहिनका सत्कार किया और फिर बोले हे भामिनी ! वर माग ॥९॥ यमका यह वचन सुनकर यमुनाने कहा ॥ यमुना वोलीं ॥ तुम मेरे घर प्रति वर्षवें दिन भोजन करने आया करो ॥ १० ॥ और हे यम ! आज नरकसे सव पापियोंको छोड़ो । जो पुरुष आज अपनी वहिनके हाथसे

भोजन करेंगे ॥ ११ ॥ उनको तुम सुख दो यही वर मै मांगतीहूं । यम बोले ॥ जो मनुष्य यमुनामें स्नान करके और पितृ तथा देवताओंका तर्पण करके ॥ १२ ॥ बहिनके घर भोजन करता है और उसका सत्कार करता है तो हे यमुना ! वह कभी यमका द्वार नहीं देखता है ॥ १३ ॥ वीरेशके ईशानदिशामें यमका तीर्थ कहा है वहां स्नान करके और विधिपूर्वक पितृ तथा देवताओंका तर्पण करके ॥ १४ ॥ हे नरोत्तम ! सूर्यके सामने मौन, दृढचित्त, और स्थिर

तेषां सौख्यं प्रदेहि त्वमेतदेव वृणोम्यहम् ॥ यम उवाच ॥ यमुनायां तु यः स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः ॥ १२ ॥ भुक्ते च भगिनीगेहे भगिनीं पूजयेदपि ॥ कदाचिदपि मद्द्वारं न स पश्यति भानुजे ॥ १३ ॥ वीरेशैशानदिग्भागे यमतीर्थं प्रकीर्त्तितम् ॥ तत्र स्नात्वा च विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः ॥ १४ ॥ पठेदेतानि नामानि आमध्याह्ने नरोत्तम ॥ सूर्यस्याभिमुखो मौनी दृढचित्तः स्थिरासनः ॥ १५ ॥ यमोनिहंता पितृधर्मराजो वैवस्वतो दंडधरश्च कालः ॥ भूताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतांत एतद्दशभिर्जपंति ॥ १६ ॥ ॥ ॥

बैठकर मध्यान्हतक इन नामोंका पाठ करे ॥ १५ ॥ (१) यमायनमः, (२) निहंत्रे नमः, (३) पित्रे नमः, (४) धर्मराजाय नमः, (५) वैवस्वताय नमः, (६) दंडधराय नमः, (७) कालाय नमः, (८) भूताधिपाय नमः, (९) दत्तकृतानुसारिणे नमः (१०) कृतांताय नमः ये दश नाम जपै ॥ १६ ॥ ॥ ॥

फिर यमराजका पूजन करके वहिनके घर जाय। और इसमंत्रसे वह भाईको वडे आदरसे भोजन करावै ॥ १७ ॥ और कहै कि हे भाई ! मैं तुह्मारी छोटी वहन हूं इस सुन्दर भोजनको यमराज और विशेषकर यमुनाके प्रीत्यर्थ करो ॥ १८ ॥ फिर भाई वस्त्र और अलंकारोंसे वहिनको संतुष्ट करै तो उसे स्वप्नमें भी यमलोकका दर्शन नहीं होगा ॥ १९ ॥ राजाओंको चाहिये कि जिनको कारागृहमें गेर रक्खा है उन्हैं भी मेरी तिथिको अपनी वहिनके घर भोज-

ततो यमेश्वरं पूज्य भगिनीगृहमाव्रजेत् ॥ मंत्रेणानेन च तया भोजितः पूर्णमादरात् ॥ १७ ॥
भ्रातस्तवानुजाताहं भुंक्ष्व भक्तमिदं शुभम् ॥ प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेपतः ॥ १८ ॥
ततः संतोष्य भगिनीं वस्त्रालंकरणादिभिः ॥ स्वप्नेपि यमलोकस्य भविष्यति न दर्शनम् ॥१९॥
नृपैः कारागृहे ये च स्थापिता मम वासरे ॥ अवश्यं ते प्रेपणीया भोजनार्थं स्वसुर्गृहे ॥ २० ॥
विमोक्तव्या मया पापा नरकेभ्योद्य वासरे ॥ येद्य वंदिं करिष्यंति ते ताड्या मम सर्वथा ॥ २१ ॥
कनीयसी स्वसा नास्ति तदा ज्येष्ठागृहं व्रजेत् ॥ तदभावे सपत्नायाः पितृव्यास्तदभावतः ॥ २२ ॥

नके लिये अवश्य भेजैं ॥ २० ॥ और आजके दिन मैं भी नरकसे पापियोको छोड़ूंगा और जो आज वंद करैंगे उन्हैं मैं सब भांति ताड़ना दूंगा ॥ २१ ॥ जो छोटी वहन न हो तो वड़ीके यहां जाय। जो वडी वहन भी न हो तो सपत्नी कहिये दूसरी माकी पुत्रीके घर जाय और जो वह भी न हो तो चचेरी वहनके यहां जाय ॥ २२ ॥ ॥

उसके अभावमें मौसीकी पुत्रीके यहां जाय और उसके अभावमें मामाकी वेटीके यहां जाय और उसके अभावमें दूसरीमाके गोत्रकी, संबंधिनीकी वेटियोंको क्रमसे वहन माने ॥ २३ ॥ और जो सबका अभाव हो तो चाहे जिसे बहिन बनाकर उसे मानें और जो कोई न मिलै तौ गौ नदी कोही बहिन मान वहां जाकर खाय ॥ २४ ॥ और उसके भी अभावमे वन आदिकोही वहन मानकर वही लेजाकर भोजन करै हे देवी ! अपने घर भोजन कभी न करै ॥ २५ ॥

तदभावे मातृस्वसा मातुलस्यात्मजा तथा ॥ सापत्नगोत्रसंबंधैः कल्पयेदथवा क्रमम् ॥ २३ ॥
सार्वभावे माननीया भगिनी काचिदेव हि ॥ गोनद्याद्यथवा तस्या अभावे सति कारयेत् ॥२४॥
तदभावेप्यरण्यादि कल्पयित्वा सहोदराम् ॥ अस्यां निजगृहे देवि न भोक्तव्यं कदाचन ॥२५॥
ये भुंजंते दुराचारा नरके ते पतंति च ॥ स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्धनम् ॥ २६ ॥
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विशेषतः ॥ श्रावणे तु पितृव्यस्य कन्याहस्तेन भोजनम् ॥२७॥
मातुलस्य सुताहस्ताद्भोक्तव्यं भाद्रमासके ॥ पितुर्भ्रातुः स्वसुः कन्ये आश्विने तु तयोः क्रमात् ॥२८॥

और जो दुराचारी दूजको अपने घर खाते है वे नरकमे पडते है । स्नेहसे भैनके हाथका भोजन करना पुष्टिका बढ़ाने-वाला है ॥ २६ ॥ और भैनोको विशेष दक्षिणा देनी चाहियें श्रावणमें चचाकी लड़कीके हाथका खाय ॥ २७ ॥ और भादोंमें मामाकी वेटीके हाथका खाना चाहिये, और आश्विनमें क्रमपूर्वक वुआकी लड़की और चाचाकी लड़कीके

यहां खाय ॥ २८ ॥ परन्तु कार्तिकमासमें भैनके हाथका अवश्य खाय । यमराज यों कहकर फिर अपनी नगरीको गये ॥२९॥ इसलिये सब श्रेष्ठऋषि कार्तिकमें व्रत करके भैनके हाथसे खाते है यह सत्य २ कहताहूं इसमे संदेह नही है ॥३०॥ जो यमद्वितीयाके दिन भैनके घर नही खाता है तो सूर्यनारायणका कथन है कि उसके वर्ष भरके पुण्य नाश होजाते है ॥३१॥ जो स्त्री भाई दूजके दिन भाईको जिमाती है और उसको टीकाकर पान देती है वह विधवा नही होती ॥ ३२ ॥ और फिर

अवश्यं कार्तिके मासि भोक्तव्यं भगिनीकरात् ॥ एवमुक्त्वा धर्मराजो ययौ संयमिनीं ततः ॥ २९ ॥ तस्मादृषिवराः सर्वे कार्तिकव्रतकारिणः ॥ भुंजंति भगिनीहस्तात्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ३० ॥ यमद्वितीयां यः प्राप्य भगिनीगृहभोजनम् ॥ न कुर्याद्वर्षजं पुण्यं नश्यतीति रवेः श्रुतिः ॥ ३१ ॥ या तु भोजयते नारी भ्रातरं भ्रातृके तिथौ ॥ अर्चयेच्चापि तांबूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥३२॥ भ्रातुरायुःक्षयो नूनं न भवेत्तत्र कर्हिचित् ॥ अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने ॥ ३३ ॥ अज्ञानाद्यदि वा मोहान्न भुक्तं भगिनीगृहे ॥ प्रवासिना ह्यभावाद्वा ज्वरितेनाथ वंदिना ॥ ३४ ॥ एतदाख्यानकं श्रुत्वा भोजनस्य फलं भवेत् ॥३५॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

कभी भाईकी आयुक्षय नही होती । और भाईके जिमानेमें वह दूज अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये ॥ ३३॥ अज्ञानसे वा मोहसे विदेशमे रहनेवाला, ज्वरपीडित, और वंधुआ किसीके कारणसे भैनके घर न खा सके तो ॥ ३४ ॥ इस कथाको सुने इसके सुननेसेही उन्हें भोजनका फल मिलता है ॥ ३५ ॥ इति श्रीसनत्कुमारसहितायां कार्तिकमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिके शुक्लनवमी तत्राभूद्द्वापरं युगम् ॥ पूर्वापराह्णगा ग्राह्या क्रमा-
द्दानोपवासयोः ॥ १ ॥ अत्र कूष्मांडको नाम हतो दैत्यस्तु विष्णुना ॥ तद्रोमाभःसमुद्भूता
वल्याः कूष्मांडसंभवाः ॥ २ ॥ तस्मात्कूष्मांडदानेन फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ अस्यामेव
नवम्यां तु कुर्यात्कृष्णोत्सवं नरः ॥ ३ ॥ स्वशाखोक्तेन विधिना तुलस्याः करपीडनम् ॥
कन्यादानफलं तस्य जायते नात्रसंशयः ॥ ४ ॥ कार्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेंद्रियः ॥
हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं शुभम् ॥ ५ ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्र-
यम् ॥ एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम् ॥ ६ ॥

॥ वालखिल्या वोले। कार्तिकशुक्ला नवमीको द्वापर युगका जन्म दिन है दान और उपवासमें क्रमसे पूर्व और पर ग्रहण करनी चाहिये अर्थात् दानमें प्रातःकालव्यापिनी और उपवासमें अपराह्णव्यापिनी ॥ १ ॥ इसदिन विष्णुने कूष्मांडक नाम दैत्यको मारा है और कूष्माडोंकी वेलें उसके रोमकी कांतिसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २ ॥ इसलिये उसदिन कुह्मड़ा दान करनेका निश्चय वड़ा फल होता है और इसी नवमीके दिन मनुष्य श्रीकृष्णका उत्सव करै ॥ ३ ॥ अपनी शाखामें कही हुई विधिसे तुलसीका विवाह करै तो उस मनुष्यको कन्यादानका फल होता है इसमें संदेह नहीं है ॥ ४ ॥ कार्तिकशुक्ला नौमीको जितेन्द्री होकर और सुवर्णके भगवान् वनवाकर तुलसी सहित अच्छे प्रकारसे ॥ ५ ॥ व्रती मनुष्य तीन दिन-

तक भक्तिसे विधिपूर्वक पूजन करै । और इसप्रकार कही हुई विधिसे विवाहकी रीति करै ॥ ६ ॥ और नौमीसे लेकर तीन रात्रि ग्रहण करनी चाहियें और नौमी पूर्वविद्धा और मध्याह्नव्यापिनी लेना योग्य है ॥ ७ ॥ आमलेका और पीपलका वृक्ष इन दोनोंका एकत्र लगाकर उनका विवाह करै तो उस मनुष्यका पुण्य करोड़ो कल्पतक नाश नहीं होता है ॥ ८ ॥ यहां एक पुराने इतिहासका उदाहण देते है । विष्णुकांचीमें कनकनामा एक क्षत्री रहता था ॥ ९ ॥ वह

ग्राह्यं त्रिरात्रमत्रैव नवम्यामनुरोधतः ॥ मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या नवमी पूर्ववेधिता ॥ ७ ॥
धात्र्यश्वत्थौ य एकत्र पालयित्वा समुद्वहेत् ॥ न नश्यते तस्य पुण्यं कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८ ॥
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ वभूव विष्णुकांच्यां तु क्षत्रियः कनकाभिधः ॥ ९ ॥
धनाढ्यो वैश्यवृत्तिश्च वैष्णवो राजपूजितः ॥ वहुकालो गतस्तस्य विनापत्यं मुनीश्वराः ॥१०॥
ततो नानाव्रतैर्जाता कन्या कमललोचना ॥ सुरूपा लक्षणोपेता नानागुणसमन्विता ॥ ११ ॥
पिता तस्या नाम चक्रे किशोरीति च विश्रुतम् ॥ एकदा तद्गृहे यातो जन्मपत्रनिरीक्षकः ॥ १२ ॥

धनवान्, विष्णुभक्त और वैश्यकी आजीविका करनेवाला था और राजाके यहां भी उसका वड़ा आदर था । हे मुनीश्वरो ! उसके वहुत कालतक संतान नही हुई ॥ १० ॥ फिर वहुतसे व्रत करनेसे उसके कमलके समान नेत्रवाली कन्या उत्पन्न हुई वह वड़ी स्वरूपवती सुलक्षणा थी और उसमे वहुतसे गुण थे ॥ ११ ॥ पिताने उसका नाम किशोरी धरा ।

एक दिन उसके घर कोई ज्योतिषी आये ॥ १२ ॥ उसके पिताने उसका जन्मपत्र दिखलवाकर पूंछा कि इसका फल कहिये । तब ज्योतिषीने क्षणभर ध्यानकरके कहा कि हे कनक ! मेरी बात सुनो ॥ १३ ॥ जो मैं तुझसे सत्य २ कहूंगा तो तुझे दुःख होगा । और जो मैं असत्य कहूं तो मेरी बात झूठ होगी ॥ १४ ॥ इसलिये सत्य कहूंगा जो तुझे अच्छा लगे सो कर । इसका ब्याह जिससे करैगा वह वज्रसे मरैगा ॥ १५ ॥ उसका यह वचन सुनकर पिता बड़ा दुखी

दर्शयित्वा जन्मपत्रं कथमस्या भवेदिति ॥ ततस्तेन क्षणं ध्यात्वा कनक शृणु मे वचः ॥ १३ ॥
यदि ब्रवीमि सत्यं चेत्तव दुःखं भविष्यति ॥ यद्यसत्यमहं ब्रूयां मिथ्यात्वं मम जायते ॥ १४ ॥
तस्मात्सत्यं वदिष्यामि रोचते यत्तथा कुरु ॥ अस्याः करग्रहं कुर्यादसौ वज्रान्मरिष्यति ॥ १५ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा जनको दुःखितोभवत् ॥ न चकार विवाहोऽस्या सा च ब्राह्मणभोजने ॥ १६ ॥
नियुक्तान्यद्गृहं दत्तं नानेया मन्मुखाग्रतः ॥ दृष्ट्वेमां रूपसंपन्नां दुःखं मे वर्द्धयिष्यति ॥ १७ ॥
स्थित्वान्यस्मिन्गृहे सा तु द्विजातिथ्यमचीकरत् ॥ तत्रागाद्दैवयोगेन कदाचिद्द्विजपुंगवः ॥ १८ ॥

हुआ । और उसने उसका विवाह नहीं किया वह कन्या ब्राह्मण भोजनमें ॥१६॥ लग गई । पिताने उसे दूसरा घर दे दिया और कह दिया कि इसे मेरे सामने मतलाओ । क्योंकि इस स्वरूपवती देखकर मुझे दुख बढैगा ॥१७॥ वह कन्या इस घरमें रहकर ब्राह्मणोंका अतिथिसत्कार करने लगी । वहां दैवयोगसे एक समय कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण ॥ १८ ॥

शंकरनाम वैशाखमासमें विष्णुकांचीकी यात्राके लिये घूमता २ हेमकको ब्राह्मणोंका आदर करनेवाला जानकर वहा भी आया ॥ १९ ॥ और आकर जब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण आंगनमें बैठ गया तब किशोरीने आकर उस शंकरका अतिथि-सत्कार किया ॥ २० ॥ उस ब्राह्मणने उसे तरुण, नम्र सुन्दर वस्त्र पहिरे, विनयशील, विनव्याही देखकर सखीसे

यात्रार्थं विष्णुकांच्यायां वैशाखे मासि शंकरः ॥ हेमको विप्रशुश्रूषी ज्ञात्वात्रैव समागतः॥ १९ ॥ आगत्यांगणमध्ये तु उपविष्टो द्विजोत्तमः ॥ किशोर्यागत्य चातिथ्यं शंकरस्य कृतं तदा ॥२०॥ दृष्ट्वा तां तरुणीं नम्रां सुवेषां विनयान्विताम् ॥ अजातकरपीडां च सखीं पृष्ट्वाभ्युवाच सः ॥ २१ ॥ शंकर उवाच ॥ चंदने वद शीघ्रं त्वं किशोरी न विवाहिता ॥ किमत्र कारणं जाता तरुणी कामरूपिणी ॥ २२ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा चंदना सर्वमब्रवीत् ॥ तदा कृपालुना तेन तत्पित्रे विनिवेदितम् ॥ २३ ॥ अस्यै मंत्रं प्रयच्छामि श्रीविष्णोर्द्वादशाक्षरम् ॥ करोतु वर्षत्रितयं जपमस्य सुलोचना ॥ २४ ॥ ॥ ॥

पूंछा और कहने लगा ॥ २१ ॥ शंकर बोला ॥ हे चंदना ! तू शीघ्र बता कि यह किशोरी कामके समान स्वरूपवती तरुणी होगई और अभीतक नही व्याही गई इसका क्या कारण है ॥ २२ ॥ उसका वचन सुनकर चंदनाने सब वृत्तांत कहा तब उस कृपालु ब्राह्मणने उसके पिताको जताया कि ॥ २३ ॥ मैं इसे विष्णुके द्वादशाक्षर मंत्रका उपदेश

देताहूं और यह सुन्दर नेत्रवाली तेरी पुत्री उसका जप तीन वर्षतक करै ॥ २४ ॥ प्रातःकाल स्नानकर तुलसीके वनकी पूजा करै । और कार्तिकशुक्लपक्षमें नौमीके दिन सुवर्णके विष्णुके साथ ॥ २५ ॥ तुलसीका विवाह करै उस व्रतके प्रभावसे यह विधवा नहीं होगी ॥ २६ ॥ उसके पिताने कहा कि अच्छा ऐसाही करेंगे और उसने प्रायश्चित्त दिया फिर उस ब्राह्मणने किशोरीको संपूर्ण वैष्णव धर्मका उपदेश किया ॥ २७ ॥ और किशोरी भी जैसे उस ब्राह्मणने

प्रातःस्नानवती चास्तु तुलसीवनपालिका ॥ कार्तिकस्य सिते पक्षे नवम्यां विष्णुना सह ॥ २५ ॥
सौवर्णेन तुलस्याश्च विवाहं च करोत्वियम् ॥ तेन व्रतप्रभावेन विधवा न भविष्यति ॥ २६ ॥
तत्पित्रापि तथेत्युक्तं प्रायश्चित्तं स दत्तवान् ॥ किशोर्यै वैष्णवं धर्मं समग्रं चादिदेश सः ॥२७॥
द्विजेन तेन यत्प्रोक्तं किशोर्यपि तथाकरोत् ॥ वर्षत्रयं यथाशास्त्रं किशोर्या तद्व्रतं कृतम् ॥२८॥
चतुर्थे कार्तिके मासि किशोरी स्नपनाय च ॥ प्रातःकाले गता बाला दृष्टा मार्गे विलेपिना ॥२९॥
क्षत्रियेण यदा दृष्टा प्राप मोहं जडात्मिकः ॥ पृष्ठे तस्यास्तु संलग्नो भावयंस्तामनिंदिताम् ॥ ३० ॥

कहा था वैसे करने लगी और शास्त्रविधिसे तीन वर्षतक किशोरीने उस व्रतको किया ॥ २८ ॥ और चौथे कार्तिक माससें किशोरी स्नानके लिये प्रातःकाल गई तो मार्गमें उस बालाको विलेपी ॥ २९ ॥ क्षत्रीने जब देखी तो विव्हल हो उसपर मोहित होगया और उस सुन्दरीको चाहता हुआ उसके पीछे लग लिया ॥ ३० ॥

कितनेही लोगोंने उस कन्याको दूरसे देखा और कितनेही छुपकर देखने लगे । स्त्रियां भी उसे देखने लगी फिर पुरुषोंकी क्या कथा है ॥ ३१ ॥ जैसे लोग दूजके चंद्रमाके दर्शनके उत्सुक होते है वैसेही रातमे सव मनुष्य उसके द्वारपर उसकी वाट देखते ॥ ३२ ॥ एक पलभर सूर्यने भी ठहरकर उस वालिकाको देखी । हे मुनीश्वरो ! इससे अधिक उसके सौंदर्यका क्या कहैं ॥ ३३ ॥ कोई कहते हैं यह देवी है कोई नागकन्या वताते हैं कि यह तो शिवजीके

केचित्तां ददृशुर्दूरात्केचित्पश्यंति गुप्ततः ॥ स्त्रियोपि तां प्रपश्यंति पुरुषाणां तु का कथा ॥३१॥
यथा द्वितीयाचंद्रस्य दर्शने चोत्सुका जनाः ॥ तथा रात्रौ प्रतीक्षंते तद्द्वारे सकला जनाः ॥ ३२ ॥
निमेषमात्रमर्केण दृष्टा स्थित्वा तु वालिका ॥ अधिकं किं वर्णनीयं तत्सौंदर्य मुनीश्वराः ॥ ३३ ॥
केचिद्वदंति देवीयं नागकन्येति चापरे ॥ रुद्रसंमोहनार्थाय जाता सा मोहिनीति च ॥ ३४ ॥
सा न पश्यति लोकांश्च न मार्गं न सखीगणान् ॥ ध्यायंती हृदये विष्णुं तुलसीं देवरूपिणीम् ॥३५॥
तां गृहीतुं मनश्चक्रे विलेपी द्रव्यवान् वली ॥ नानाभेदाः कृतास्तेन न लेभे चांतरं क्वचित् ॥३६॥

मोहनेके लिये दूसरी मोहिनी उत्पन्न हुई है ॥ ३४ ॥ और वह न लोगोको न मार्गको और न सखियोंको देखती थी । वह तो हृदयमें विष्णु और देवतारूप तुलसीका ध्यान करती रहै थी ॥ ३५ ॥ द्रव्यवान् और वली ऐसे विलेपी क्षत्रीने उसे लेनेके लिये मन चलाया । और उसने अनेक प्रकारके भेद किये परन्तु जब विलेपी उसे किसी उपायसे नहीं

पा सका ॥ ३६ ॥ तब उसने मालीके घर जाकर मालिनको द्रव्य दिया और कहा कि जिस प्रकारसे किशोरीके साथ मिलाप हो ॥ ३७ ॥ सो कर हे कल्याणि ! मैं तुझे इससे चौगुना और दूंगा। और उसने उसे पानेके लिये बहुतसे उपाय कर देखे ॥३८॥ परंतु जब उस मालिनको कोई उपाय नही दीखा तो उसने विलेपीसे कहा कि मुझे तो उपाय नही दीखता

मालाकारगृहं गत्वा तस्यै द्रव्यं प्रयच्छत ॥ येन केन प्रकारेण किशोर्या सह संगमः ॥ ३७ ॥
यथा स्यात्क्रियतां भद्रे देयमस्माच्चतुर्गुणम् ॥ तथा च बहवोपाया दृष्टास्तद्ग्रहणाय च ॥ ३८ ॥
न ददर्श ततोपायमवदत्सा विलेपिनम् ॥ न दृश्यते मयोपायस्त्वया या प्रोच्यतेऽधुना ॥ ३९ ॥
मया तदेव वक्तव्यं द्रव्यग्रहणसिद्धये ॥ विलेप्युवाच ॥ तव कन्या तु भूत्वाहं नयामि कुसुमानि च ॥ ४० ॥ अग्रे यद्भावि भवतु गृहाणाह्नि शतंशतम् ॥ तयापि च तथेत्युक्त्वा सप्तम्यां निश्चयः कृतः ॥ ४१ ॥ अष्टम्यां सा गता तत्र किशोरी तामुवाच ह ॥ मालाकृते श्वो नवमी तुलस्याः पाणिपीडनम् ॥ ४२ ॥ ॥ ॥

अब जो बात तू कहै ॥ ३९ ॥ वह मैं द्रव्य लेनेके लालचसे कहूं। विलेपी बोला ॥ मैं तेरी कन्या बनकर फूल ले चलूं ॥ ४० ॥ आगे जो कुछ होना हो सो होगा तू मुझसे सौ रुपये रोज लियाकर। उसने भी अच्छा कहकर यह सप्तमीके दिन निश्चय किया ॥ ४१ ॥ और अष्टमीके दिन वह वहा गई सो किशोरीने उससे कहा। हे मालिन ! कल

नवमी है और तुलसीका विवाह है ॥ ४२ ॥ सो तू पुष्पोंके मुकुट ले आ । मालिन बोली । मेरी कन्या गांवसे आई है वह अनेक कौतुक करनेवाली है ॥ ४३ ॥ हे बाला ! जो जो तू कहैगी वह शीघ्र लादेगी । उसने कहा अच्छा फिर मालिन अपने घर चली गई॥४४॥और सब वृत्तात विलेपीकें आगे कहा तो उसने ऐसा सुख पाया मानों इन्द्रकी पदवी

तिष्ठत्यतस्त्वया नेया मुकुटाः पुष्पसंभवाः ॥ मालिन्युवाच ॥ मत्कन्या चागता ग्रामान्नाना-कौतुककारिणी ॥ ४३ ॥ यद्यत्प्रोक्तं त्वया बाले समानेष्यति सत्वरम् ॥ तया सापि तथे-त्युक्त्वा मालिनी स्वगृहं ययौ ॥ ४४ ॥ कथितः सर्ववृत्तांतो विलेप्यग्रे ततो भवत् ॥ प्राप्ता मयेंद्रपदवीत्येवं सुखमवाप सः ॥ ४५ ॥ मालिन्या रचिता रात्रौ मुकुटा विविधास्तदा ॥ ॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ विष्णुकांच्यां तदा राजा जयसेनो बभूव ह ॥ ४६ ॥ तस्य पुत्रो मुकुंदोऽभूत्सूर्यभक्तिपरायणः ॥ किशोर्यास्तु श्रुता तेन वार्तेयमतिसुंदरा ॥ ४७ ॥ तदा तेन मुकुंदेन संकल्पः कृत एव हि ॥ किशोरी यदि भार्या मे भविष्यति दिवाकर ॥ ४८ ॥ ॥

मिलगई ॥ ४५ ॥ मालिनने तब रातको अनेक प्रकारके मुकुट बनाये । वालखिल्या बोले । उस समय विष्णुकांचीका राजा जयसेन था ॥ ४६ ॥ उसका पुत्र मुकुंद सूर्यका बडा भक्त था उसने किशोरीकी वार्ता सुनी थी कि वह बड़ी सुन्दर है ॥ ४७ ॥ फिर उस मुकुंदने यही संकल्प किया हे सूर्यनारायण जो मेरी स्त्री किशोरी होगी ॥ ४८ ॥ ॥

तो मैं अन्न खाऊंगा नहीं तो मेरी मृत्यु होगी । वह ऐसा संकल्प करके उपवास करने लगा ॥ ४९ ॥ सातवें दिन सूर्य देवने उससे स्वप्नमें कहा कि किशोरीके विधवायोग है तेरी क्या दशा होगी ॥ ५० ॥ मै तुझे दूसरी कमलसमान नेत्र-वाली पत्नी दूंगा । मुकुंद बोला । हे देव ! यदि आप प्रसन्न है और हे स्वामी ! जो आपही विश्वको उत्पन्न करते हो

तदान्नमहमश्नामि नान्यथा स्यान्मृतिर्मम ॥ कृत्वेत्थं स तु संकल्पमुपवासांश्चकार सः ॥ ४९ ॥
सप्तमेहनि सूर्योसौ स्वप्ने वचनमब्रवीत् ॥ किशोर्या विधवायोगे वर्त्तते ते कथं भवेत् ॥ ५० ॥
सा ते पत्नीः प्रदास्यामि त्वन्यां पद्मायतेक्षणाम् ॥ मुकुंद उवाच ॥ यदि देव प्रसन्नोसि विश्वं सृजसि त्वं प्रभो ॥ ५१ ॥ बालवैधव्ययोगं च हंतुं त्वं च क्षमो ह्यसि ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सांत्वना बहुला कृता ॥ ५२ ॥ न मन्यते मुकुंदोऽसौ तथेत्युक्त्वा गतो रविः ॥ तुलसीव्रत-माहात्म्यात्स्वप्नोऽभूत्कनकस्य तु ॥ ५३ ॥ इयं कन्या त्वया देया मुकुंदायामलाय च ॥ तुलस्यु-द्वाहमाहात्म्याद्विधवात्वं गमिष्यति ॥ ५४ ॥ ॥ ॥

॥ ५१ ॥ तो आप बालविधवायोगकोभी दूरकरने योग्य हो । उसका यह वचन सुनकर सूर्य देवाताने मीठी २ बातोंसे बहुत मने किया ॥ ५२ ॥ परंतु इस मुकुंदने नही माना तब इसीसे व्याह करादेंगे ऐसा कहकर सूर्यदेव चले गये । और तुलसीके व्रतके माहात्म्यसे कनकको स्वप्न हुआ कि ॥ ५३ ॥ इस कन्याको तुझे पवित्र मुकुंदको देनी योग्य है ।

तुलसीविवाहके माहात्म्यसे इसका विधवापन जाता रहैगा ॥ ५४ ॥ और उस रातको किशोरीको भी स्वप्न हुआ कि कोई कन्या भर्ताके साथ आई है और भर्तासे कहती है कि मेरी माता यह किशोरी है और उसके भर्ताने भी अच्छा कहकर कहा कि जब इसका विवाह मेरे साथ हो जायगा तब इसके हाथसेही तुझे बलिदान दूंगा स्वप्नमें बलिदानकी बात

रात्रौ स्वप्नः किशोर्यास्तु तस्यां चैवाभ्यजायत॥आगता कन्यका काचिद्भर्त्रा सह समन्विता ॥५५॥ भर्तारं वदति स्वप्ने मम माता किशोरिका ॥ तद्भर्तापि तथेत्युक्त्वा प्रदास्ये बलिमुत्तमम् ॥ ५६ ॥ एतद्धस्तेन पश्चात्तु विवाहोस्या भविष्यति ॥ स्वप्ने श्रुत्वा बलेर्दानं सा वै चिंतातुराभवत् ॥५७॥ क्व द्वादशाक्षरी विद्या क्वेदं विष्णुसमर्चनम् ॥ नरकद्वारमूलं क्व मद्धस्तात्पशुमारणम् ॥ ५८ ॥ एवं सा तु समुत्थाय स्वप्नोयमिति निश्चितम् ॥ भावयित्वा समाहूय चंदनां वाक्यमब्रवीत् ॥५९॥ निवेद्य दृष्टं स्वप्नं तु कीदृगस्य फलं वद ॥ चंदनोवाच ॥ फलं तु सम्यक्कल्याणि तवानिष्टं विनश्यति ॥ ६० ॥ ॥ ॥ ॥

सुनकर उसे बड़ी भारी चिंता हुई ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ कहां तो द्वादशाक्षरी विद्या और कहां यह भगवान्का अर्चन और कहां यह नरकके द्वारकी जड़ पशुका मारना ॥ ५८ ॥ इसप्रकार वह उठकर और इसे स्वप्न निश्चय जानकर और चन्दनाको बुलाकर यह वचन बोली ॥ ५९ ॥ और देखे हुये स्वप्नको जताया और पूछा कि इसका क्या फल है सो

कह । चंदना बोली ॥ हे कल्याणी ! इसका फल तो अच्छा है तुह्मारी बुराई दूर होगी ॥ ६० ॥ और तुलसीके व्रतके प्रभावसे शीघ्र विवाह होगा इसप्रकार स्वप्नके फलको सुनतेही मुरगेने शब्द किया ॥ ६१ ॥ यह सुन और एक साथ उठकर उसने स्नान किया और जबतक वह किशोरी स्नान करके घर आवै ॥ ६२ ॥ तबतक विलेपी मालिनकी पुत्री बनकर आगई । गौके पूंछके तो सिरपर बाल बनायें और दाढ़ी मूछके बालोंको बलपूर्वक नौंच डाला ॥ ६३ ॥ और

विवाहो भविता शीघ्रं तुलसीव्रतकारणात् ॥ इत्थं स्वप्नफलं श्रुत्वा तावत्कुक्कुटशब्दितम् ॥ ६१ ॥
श्रुत्वा सा सहसोत्थाय स्नानोद्यममचीकरत् ॥ यावदायाति सा स्नानं कृत्वा गेहं किशोरिका॥६२॥
तावद्विलेपी मालिन्याः पुत्री भूत्वा समाययौ॥कृताः केशाश्च गोपुच्छैः श्मश्रु ह्युत्पाटितं बलात् ६३
अंतरेशाटकं गृह्य निंबुभ्यां च स्तनौ कृतौ ॥ सर्वालंकारशोभाढ्या कटाक्षयति चापरान् ॥ ६४ ॥
न ज्ञाता सा तु केनापि पुमान्स्त्रीरूपधारकः ॥ ध्यानं कृत्वा प्रसार्येते तया हस्तौ यदा तदा ॥६५॥
दत्ते विलेपी पुष्पाणि विलोकयति सर्वतः ॥ कथमस्या मम स्पर्शो भविष्यति विचिंतयत् ॥६६॥

साड़ी पहिरकर भीतर नींबूके समान कुच बनाये और संपूर्ण अलंकारोंसे शोभाको बढ़ाती हुई दूसरोंकी ओर कटाक्ष फैंकने लगी ॥ ६४ ॥ किसीने उसे नहीं जाना कि मनुष्यने स्त्रीरूप धारण किया है । ध्यान करके जब कभी दोनों हाथोंको पसारकर ॥ ६५ ॥ विलेपी पुष्पोंको देती तो सब ओर देखकर । विचारती कि मेरा और इसका कैसे स्पर्श

होगा ॥६६॥ हे मुनीश्वरो ! ऐसे उसको तीन दिन वीतगये । और उसदिन कनक शोकसे वड़ा पीडित हुआ ॥६७॥ कि हमें अव क्या करना चाहिये कन्याको राज पुत्र वरैगा । ऐसे उसे चिंता करते २ प्रातःकाल होगया ॥ ६८ ॥ और वस्त्र तथा सवारी लेकर राजाके लोग आये । और भीतर आकर मंत्रीने यह कहा कि ॥ ६९ ॥ तुह्मारे घर एक कन्या

एवं दिनत्रयं तस्य प्रयातं तु मुनीश्वराः ॥ तस्मिन्नहनि संजातः कनकः शोकपीडितः ॥६७॥
किं कार्यमधुनास्माभी राजपुत्रो वरिष्यति ॥ एवं चिंतयतस्तस्य प्रातःकालो वभूव ह ॥६८॥
राजलोकाः समायाता गृहीत्वा वस्त्रवाहनम् ॥ अभ्यंतरं समागत्य मंत्री वचनमब्रवीत् ॥ ६९ ॥
गृहेऽस्ति तव कन्यैका मुकुंदार्थे प्रदीयताम् ॥ माविचारोस्तु भवतो नृपाज्ञा परिपाल्यताम् ॥ ७० ॥
कनकेन तथेत्युक्तं मम भाग्यमुपस्थितम् ॥ महाराज कुमारस्य वधूः कन्या भविष्यति ॥७१॥
प्रोवाच मंत्रिणं चापि द्वादश्यां लग्नमुत्तमम् ॥ रात्रौ तिष्ठति युग्माख्यं रविः षष्ठे विधुश्च खे ॥ ७२ ॥
भवे भौमो गुरुर्धर्मे पंचमे बुधभार्गवौ ॥ शनिस्तृतीयेऽरौ राहुर्विवाहसमयः स तु ॥ ७३ ॥

है सो उसे राजा मुकुंदके लिये दो इसमें कुछ तुम विचार मतकरो राजाकी आज्ञा पालो ॥ ७० ॥ कनकने भी अच्छा कहकर विचारा कि मेरा तो भाग्य आड़े आया मेरी कन्या महाराज कुमारकी वहू होगी ॥ ७१ ॥ और मंत्रीसे वोला कि द्वादशीकी लग्न उत्तम है रात्रिमे मिथुन लग्नमें सूर्य छटे और चंद्रमा दशवे है ॥ ७२ ॥ ग्यारहवे भौम नवें बृहस्पति

और पांचवें वुध शुक्र है तीसरे शनि छटै राहु यह विवाहका समय है ॥ ७३ ॥ दोनों धनवानोंने तयारी करी और द्वादशीके सायंकालको अपनी सेनासहित राजपुत्र आया ॥ ७४ ॥ और वहां राज पुत्रके पुरोहित तेकीने कनकसे कहा ॥ तेकी वोला ॥ राजाकी आज्ञासे अव किशोरीका परदा करो ॥ ७५ ॥ यह वडी रानी होगी कोई पुरुष देखने न पावै । उसका यह वचन सुनकर कनकने सव मनुष्योंको निकाल दिया ॥ ७६ ॥ दैवयोगसे स्त्रीके रूपमें विलेपी वहांही

उभौ संभृतसंभारावुभावपि धनान्वितौ ॥ द्वादश्यामाययौ सायं राजपुत्रः ससैनिकः ॥७४॥
अब्रवीत्तत्र कनकं तेकिराजपुरोहितः ॥ तेक्युवाच ॥ अथो निरोधः क्रियतां किशोर्याश्च नृपाज्ञया
॥७५॥ भविष्यति महादेवी नो दृश्या पुरुषैः क्वचित् ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा पुरुषास्तु निराकृताः
॥७६॥ जायारूपी विलेपी तु दैवात्तत्रैवसंस्थितः ॥ ततोर्द्धरात्रवेलायां मुकुंदोभ्यंतरे ययौ ॥७७॥
तुलस्यग्रे स्थिता वाला किशोरी संस्मरद्धरिम् ॥ ततो घनघटाशब्दस्तुमुलः समपद्यत ॥७८॥
महावायुर्ववौ तत्र प्रशांताः सर्वदीपकाः ॥ विद्युल्लताश्च स्फुरिता अंधीभूतोऽखिलो जनः ॥७९॥
मिथ्या न भास्करवचो मुकुंदो चिंतयद्धृदि ॥ अन्यैः प्रतर्कितं लोकैर्वैधव्यस्य तु कारणं ॥८०॥

वैठा रहा । फिर आधी रातके समय मुकुंद भीतर गया ॥ ७७ ॥ और तुलसीके सामने किशोरी भी भगवान्को स्मरण करती हुई वैठी । इतनेमें वादलोंकी घटाओंका वड़ा शब्द होने लगा ॥७८॥ वहां वड़ी भारी हवा चली और सव दीपक बुझगये । विजली चमकने लगी और आदमी अंधके समान होगये ॥७९॥ मुकुंदने विचारा कि सूर्यदेवकी वात झूंठी नही

होसक्ती और दूसरे लोगोंने इसवातकी वड़ी तर्कना करी कि यह वैधव्यका कारण है ॥८०॥ मुकुंद हृदयमें डरा और सूर्यका ध्यान करने लगा इस वीचमें विलेपीने उस किशोरीका कमलके समान हाथको पकड़ा ॥८१॥ उसके हाथके संसर्ग होतेही स्वर्गसे पृथ्वीपर विजली गिरी और उससे विलेपी उसी समय यम लोकको गया ॥८२॥ वाहर भघड़ होने लगा कि मुकुंद मरा, फिर क्षण भरमें ज्ञात हुआ कि मालीकी वेटी मरी है ॥ ८३ ॥ फिर तो मुकुंद और किशोरी दोनोंका विवाह हुआ

भीतो मुकुंदो हृदये यावद्ध्यायति भास्करम् ॥ तस्यां संधौ धृतं तस्याः करपद्मं विलेपिना ॥८१॥
तस्याः करस्य संसर्गात्स्वर्गाद्वज्रं पपात कौ ॥ नीतस्तेन विलेपी तु तत्कालं यममंदिरम् ॥ ८२ ॥
बहिरासीत्कलकलो मुकुंदोयं मृतस्त्विति ॥ क्षणादेव ततो ज्ञातं मालाकारसुता मृता ॥ ८३ ॥
ततस्तयोर्विवाहोभूद्राज्यं प्राप किशोरिका ॥ किशोर्याश्च समुत्पन्ना भ्रातरस्तुलसीव्रतात् ॥८४॥
आदौ शास्त्रं सत्यमासीत्ततो देवो दिवाकरः ॥ तुलसीव्रतमाहात्म्यात्कथं न स्युर्मनोरथाः ॥८५॥
सौभाग्यार्थं धनार्थं च विद्यार्थं तु निवृत्तये ॥ संतत्यर्थं प्रकर्त्तव्यं तुलस्याः पाणिपीडिनम् ॥८६॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहोनाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः १९

और किशोरीको राज्य मिला । और तुलसीव्रतके प्रभावसे किशोरीके भाई हुये ॥ ८४ ॥ पहिले शास्त्र सत्य हुआ फिर सूर्य देवने कृपा करी । और तुलसीव्रतके माहात्म्यसे कहो मनोरथ कैसे सिद्ध नहों ॥ ८५ ॥ सौभाग्य, धन, विद्या मोक्ष, संतति, इनके लिये तुलसीका विवाह करना चाहिये ॥ ८६ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमहात्म्ये तुलसीविवाहो नाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ वालखिल्या बोले ॥ कार्तिकके शुक्लपक्षमें व्रती मनुष्य अच्छी भांति स्नान करके एकादशीके दिन पांच दिनका व्रत ग्रहण करे ॥१॥ शरपंजरपर सोतेहुये महात्मा भीष्मने राजधर्म मोक्षधर्म और फिर दानधर्म ॥ २ ॥ कहे और पांडवोंने और कृष्णजीने भी सुने । फिर प्रसन्न मनसे श्रीकृष्णजीने कहा ॥ ३ ॥ हे भीष्मजी ! तुम्हें धन्य है धन्य है जो तुमने धर्म

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिकस्यामलेपक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः ॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पंचदिनात्मकम् ॥ १ ॥ शरपंजरसुप्तेन भीष्मेण तु महात्मना ॥ राजधर्मा मोक्षधर्मा दानधर्मास्ततः परम् ॥ २ ॥ कथिताः पांडुदायादैः कृष्णेनापि श्रुतास्तदा ॥ ततः प्रीतेन मनसा वासुदेवेन भाषितम् ॥ ३ ॥ धन्य धन्योसि भीष्म त्वं धर्माः संश्राविताास्त्वया ॥ एकादश्यां कार्तिकस्य याचितं च जलं त्वया ॥ ४ ॥ अर्जुनेन समानीतं गांगं बाणस्य वेगतः ॥ तुष्टानि तव गात्राणि तस्मादद्य दिनावधि ॥ ५ ॥ पूर्णांतं सर्वलोकास्त्वां तर्पयंत्वर्घ्यदानतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मम संतुष्टिकारकम् ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

सुनाये और कार्तिककी एकादशीको तुमने जल मांगा ॥ ४ ॥ अर्जुनने बाणके वेगसे गंगाजल लादिया । इसलिये आज दिनतक तुम्हारे शरीर तुष्ट होगये ॥ ५ ॥ सब लोग पूर्णिमातक अर्घ्यदानसे तुम्हारा तर्पण करें । ऐसा करनेसे वह अर्घ्य मुझे सब प्रकारसे संतुष्ट करनेवाला है ॥ ६ ॥ ॥ ॥ ॥

और मनुष्य इस भीष्मपंचक नाम व्रतको करैं। और जो कार्तिकका व्रत करके भीष्मपंचक न करै तो ॥ ७ ॥
उसके कार्तिकके सब व्रत वृथा होजाते हैं। मनुष्य कार्तिकमे समर्थ हो अथवा असमर्थ हो ॥ ८ ॥ भीष्म पंच-
कका व्रत करनेसे कार्तिकका फल पाता है। और "सत्यव्रत पवित्र गांगेय महात्मा ॥ ९ ॥ जन्मसे ब्रह्मचारी ऐसे
भीष्मके अर्थ यह अर्घ्य देताहूं"। इसमंत्रसे सव्य होकर सब वर्णोंके करने योग्य इस तर्पणको करै ॥ १० ॥ इसप्रकार

एतद्व्रतं प्रकुर्वंतु भीष्मपंचकसंज्ञितम् ॥ कार्तिकस्य व्रतं कृत्वा न कुर्याद्भीष्मपंचकम् ॥ ७ ॥
समग्रं कार्तिकव्रतं वृथा तस्य भविष्यति ॥ अशक्तश्चेन्नरो भूयादसमर्थश्च कार्तिके ॥ ८ ॥
भीष्मस्य पंचकं कृत्वा कार्तिकस्य फलं भवेत् ॥ सत्यव्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने ॥ ९ ॥
भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥ सव्येनानेन मंत्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् ॥ १० ॥
व्रतांगत्वात्पूर्णिमायां प्रदेयः पापपूरुषः ॥ अपुत्रेण प्रकर्तव्यं सर्वथा भीष्मपंचकम् ॥ ११ ॥
यः पुत्रार्थं व्रतं कुर्यात्सस्त्रीको भीष्मपंचकम् ॥ प्रदत्त्वा पापपुरुषं वर्षमध्ये सुतं लभेत् ॥ १२ ॥

पूर्णिमाको व्रत करके पाप पुरुषका दान करै। और जिसके पुत्र न हो उसे अवश्य भीष्मपंचक करना चाहिये
॥ ११ ॥ जो स्त्रीसहित पुत्रके लिये भीष्मपंचक करता है और पापपुरुषका दान करता है तो वर्ष भरमेंही पुत्र
पाता है ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इसलिये भीष्मपंचकको अवश्य करना चाहिये । मेरा कहा हुआ यह भीष्मपंचक विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है ॥ १३ ॥ हे खग ! और इसीमें भगवान्की प्रबोधिनी एकादशीका व्रत करे ॥ श्रावणशुक्लमें भगवान्ने शंखासुर दैत्यको मारा है॥१४॥ फिर एकादशीके दिन भगवान् चार महीने सोये और कार्तिककी एकादशीके दिन क्षीरसमुद्रमें जागे ॥ १५ ॥ इसलिये वैष्णवोंको एकादशीके दिन जगाना चाहिये । (और यह मंत्र पढ़े) " हे शंखदैत्यके नाशक !

अवश्यमेव कर्तव्यं तस्माद्भीष्मस्य पंचकम् ॥ विष्णुप्रीतिकरं प्रोक्तं मया भीष्मस्य पंचकम् ॥१३॥
अत्रैव तु प्रकर्तव्यः प्रबोधस्तु हरेः खग ॥ हतः शंखासुरो दैत्यो नभसः शुक्लपक्षके ॥ १४ ॥
एकादश्यां ततो विष्णुश्चातुर्मास्ये प्रसुप्तवान् ॥ क्षीरांभोधौ जागृतो सावेकादश्यां तु कार्तिके ॥१५॥
अतः प्रबोधनं कार्यमेकादश्यां तु वैष्णवैः ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शंखघ्न उत्तिष्ठांभोधिचारक ॥ १६ ॥
धर्मरूपधरोत्तिष्ठ त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वाराह दंष्ट्रोद्धृतवसुंधर ॥ १७ ॥ उत्तिष्ठ
धरणीधार वराहादिकधारक ॥ उत्तिष्ठ भुवनाधार त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ १८ ॥ ॥

उठो । हे अंभोधिचारक ! उठो ॥ १६ ॥ हे धर्मरूपधर उठिये और त्रिलोकीमें मंगल करिये । दांतसे पृथ्वीको उठानेवाले वाराहजी उठिये उठिये ॥ १७ ॥ हे धरणीधर ! हे वराह आदि स्वरूपधारी ! उठिये । हे भुवनाधार उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

हे हिरण्याक्षके प्राणनाशक ! त्रिलोकीमें मंगल करो । तुम हिरण्यकशिपुको मारनेवाले और प्रल्हादको आनंद करनेवाले हो ॥ १९ ॥ हे वलिके अहंकारनाशक ! हे इन्द्रको राज्य देनेवाले ! उठो । हे लक्ष्मीपति ! उठो और तीनों लोकोंमें मंगल करो ॥ २० ॥ हे अदितिपुत्र ! तुम उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो हे हयग्रीवावतार ! हे समस्त कुल-

हिरण्याक्षप्राणघातिन् त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ हिरण्यकशिपुघ्नस्त्वं प्रह्लादानंदकारक ॥ १९ ॥ उत्तिष्ठ वलिदर्पघ्न देवेंद्रपददायक ॥ लक्ष्मीपते समुत्तिष्ठ त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २० ॥ उत्तिष्ठादितिपुत्र त्वं त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ उत्तिष्ठ हैहयाधीश समस्तकुलनाशन ॥ २१ ॥ रेणुकाघ्न त्वमुत्तिष्ठ त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ उत्तिष्ठ रक्षोदलन अयोध्यास्वर्गदायक ॥ समुद्रसेतुकर्त्ता त्वं त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २२ ॥ उत्तिष्ठ कंसहनन मदघूर्णितलोचन ॥ उत्तिष्ठ हलपाणे त्वं त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २३ ॥ उत्तिष्ठ त्वं गयावासिन् त्यक्तलौकिकवृत्तिक ॥ उत्तिष्ठ पद्मासनग त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥

नाशक उठो ॥ २१ ॥ हे रेणुकानाशक ! उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो । हे राक्षसदलन ! हे अयोध्याको स्वर्ग देनेवाले उठो । हे समुद्रका पुल बांधनेवाले ! उठो और तुम त्रिलोकीका मंगल करो ॥ २२ ॥ हे कंसनाशक ! हे मदसे मतवाले नेत्रवाले ! उठो और हे हाथमें हलधारी उठो और त्रिलोकीका मंगल करो ॥ २३ ॥ हे गयावासी ! हे संसा-

रकी वृत्ति त्यागनेवाले ! उठो । हे पद्मासन भगवन् उठो और त्रिलोकीका मंगल करो ॥ २४ ॥ हे म्लेच्छोंके समूहको युगांतमें खड्गसे नाश करनेवाले कल्की भगवान् उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो ॥ २५ ॥ हे गोविंद ! उठो २ हे गरुड़ध्वज ! उठो हे कमलाकांत ! उठो और त्रिलोकीमें मंगल करो ॥ २६ ॥ ये मंत्र पढ़कर प्रातःकाल शंख भेरी आदि बजावै । और वीणा, वेणु, मृदंग आदि बजवावै और नाच गाना करावै ॥ २७ ॥ और भगवान्को जगाकर

उत्तिष्ठ म्लेच्छनिवह खड्गसंहारकारक ॥ अश्ववाह युगांते त्वं त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २५ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद उत्तिष्ठ गरुडध्वज ॥ उत्तिष्ठ कमलाकांत त्रैलोक्यं मंगलं कुरु ॥ २६ ॥
इत्युक्त्वा शंखभेर्यादि प्रातःकाले तु वादयेत् ॥ वीणावेणुमृदंगादि नृत्यगीतादि कारयेत् ॥२७॥
उत्थापयित्वा देवेशं पूजां तस्य विधाय च ॥ सायंकाले प्रकर्तव्यस्तुलस्युद्वाहजो विधिः ॥ २८ ॥
अवश्यमेव कर्तव्यः प्रतिवर्षं तु वैष्णवैः ॥ विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि यथा सांगक्रिया भवेत् ॥२९॥
विष्णोस्तु प्रतिमां कुर्यात्पलस्य स्वर्णजां शुभाम् ॥ तदर्धार्द्धं तदर्धार्द्धं यथाशक्त्या प्रकल्पयेत्॥३०॥

और उनकी पूजा करके सायंकाल कालको तुलसीके व्याहकी विधि करै ॥ २८ ॥ और वैष्णवोंको यह हर वर्ष अवश्य करनी चाहिये । उसकी विधि कहूंगा कि जिससे सांगोपांग कार्य होजाय ॥ २९ ॥ भगवान्की एक पल सोनेकी सुंदर मूर्ति बनवावै और एक पलकी न होसकै तो उससे आधेकी अथवा उससे आधेकी यथाशक्ति बनवावै

॥ ३० ॥ फिर तुलसी और विष्णुकी प्राणप्रतिष्ठा करके पहिले कहे हुये स्तवोंसे भगवान्को उठावै ॥ ३१ ॥ फिर षोडशोपचारसे पुरुषसूक्तके मंत्रोंद्वारा पूजन करै । और देशकालका स्मरण करके उसमें गणेशजीका पूजन करै ॥३२॥ फिर पुण्याहवाचन पढ़कर नांदीश्राद्ध करै और वेद पढते हुये और बाजे बजाते हुये विष्णुकी मूर्तिको लावै ॥ ३३ ॥ और उसे तुलसीके पास अंतःपट करके स्थापन करै और कहै कि हे भगवन् ! हे देव ! हे केशव ! आइये मैं

प्राणप्रतिष्ठां कृत्वैव तुलसीविष्णुरूपयोः ॥ तत उत्थापयेद्देवं पूर्वोक्तैश्च स्तवादिभिः ॥ ३१ ॥
उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्पुरुषोक्तिभिः ॥ देशकालौ ततः स्मृत्वा गणेशं तत्र पूजयेत् ॥ ३२॥
पुण्याहं वाचयित्वाथ नांदीश्राद्धं समाचरेत् ॥ वेदवाद्यादिनिर्घोषैर्विष्णुमूर्तिं समानयेत् ॥ ३३ ॥
तुलसीनिकटे सा तु स्थाप्या चांतर्हितापटैः ॥ आगच्छ भगवन्देव अर्चयिष्यामि केशव ॥ ३४ ॥
तुभ्यं दास्यामि तुलसीं सर्वकामप्रदो भव ॥ दद्यात्त्रिवारमर्घ्यं च पाद्यं विष्टरमेव च ॥ ३५ ॥
तत आचमनीयं च त्रिरुक्त्वा च प्रदापयेत् ॥ ततो दधिघृतं क्षीरं कांस्यपात्रपुटीकृतम् ॥३६॥

आपकी पूजा करूंगा ॥ ३४ ॥ और मैं आपको तुलसी अर्पण करूंगा मेरी सब कामना पूरी करो । और तीन वार अर्घ्य, पाद्य और विष्टर दे ॥ ३५ ॥ फिर तीनवार कहके आचमन करावै । फिर दही घी, दूध, कासेके पात्रमें मिलाकर ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मधुपर्क दे और कहै हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है यह मधुपर्क ग्रहण करिये । फिर हरिद्राका लेपन और उवटन यह सब करके ॥ ३७ ॥ गोधूलिसमय तुलसी और भगवान्का पूजन करै । और दोनोंके जुदे २ काम करके उनके सामने मंगल पाठ करै ॥३८॥ जब सूर्य थोड़े दीखते हो उस समय संकल्प पूरा करै और अपने गोत्र प्रवर और अपने तीन पुरखोंका नाम लेकर ॥ ३९ ॥ कहै कि हे अनादिमध्यनिधन ! हे त्रिलोकीके प्रतिपालक भगवन् इन तुलसीजीको

मधुपर्कं गृहाण त्वं वासुदेव नमोस्तु ते ॥ हरिद्रालेपनाभ्यंगं कार्यं सर्वं विधाय च ॥ ३७ ॥
गोधूलिसमये पूज्यौ तुलसीकेशवौ पुनः ॥ पृथक् पृथक् तथा कार्यौ संमुखौ मंगलं पठेत् ॥३८॥
ईषद्दृश्ये भास्करे तु संकल्पं तु समापयेत् ॥ स्वगोत्रप्रवरानुक्त्वा तथा त्रिपुरुपादिकम् ॥ ३९ ॥
अनादिमध्यनिधन त्रैलोक्यप्रतिपालक ॥ इमां गृहाण तुलसीं विवाहविधिनेश्वर ॥ ४० ॥
पार्वतीबीजसंभूतां वृंदाभस्मनि संस्थिताम् ॥ अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम् ॥४१॥
पयोघटैश्च सेवाभिः कन्यावद्वर्धिता मया ॥ त्वत्प्रियां तुलसीं तुभ्यं ददामि त्वं गृहाण भो ॥४२॥

विवाहकी विधिसे ग्रहण कीजिये ॥ ४० ॥ पार्वतीके बीजसे उत्पन्न हुई और वृंदाकी भस्ममे स्थित । और जिनका आदि मध्य और अंत नही ऐसी वल्लभाको आपके समर्पण करताहूं ॥ ४१ ॥ पानीके घड़ोंसे और सेवा करके मैंने इन्हे कन्याके समान बढ़ाया है तुह्मारी प्यारी तुलसीको मैं तुह्मैंही देताहूं हे भगवन् ! इसे ग्रहण करो ॥ ४२ ॥ ॥

इसप्रकार भगवान्‌को तुलसी देकर फिर दोनोंका पूजन करै। और रात्रिको विवाहका उत्सव कर जागरण करै॥ ४३॥

एवं दत्त्वा च तुलसीं पश्चात्तौ पूजयेत्ततः ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्विवाहोत्सवपूर्वकम् ॥ ४३ ॥
प्रतिवर्षमिदं कुर्यात्कार्तिकव्रतसिद्धये ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसं० कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः॥२०॥

और कार्तिकके व्रतकी सिद्धिके लिये इसे प्रतिवर्ष किया करै ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥



॥ वालखिल्या बोले । फिर प्रातःकाल तुलसी और विष्णुकी पूजा करै और अग्नि स्थापन करके द्वादशाक्षर मंत्रसे ॥१॥ क्षीर, घृत, शहद, और तिल इनसे १०८ आहुत होमें फिर "स्विष्टकृतेस्वाहा" इससे हवन करके पूर्णाहुति करै ॥२॥ और फिर आचार्यका पूजन करके होम समाप्तकर दे । इसप्रकार चार वर्षतक चार मास नियमसे करै ॥ ३ ॥ और

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ ततः प्रभातसमये तुलसीं विष्णुमर्चयेत् ॥ वह्निसंस्थापनं कृत्वा द्वादशाक्षरविद्यया ॥ १ ॥ पायसाज्यक्षौद्रतिलैर्हुनेदष्टोत्तरं शतं ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः ॥ २ ॥ आचार्यं च समभ्यर्च्य होमशेषं समापयेत् ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमो येन यः कृतः ॥ ३ ॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तत्तथान्यत्परिपूरयेत् ॥ इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ॥ ४ ॥ न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ रेवतीतुर्यचरणद्वादशीसंयुते नरः ॥ ५ ॥ न कुर्यात्पारणं कुर्वन्व्रतं निष्फलतां व्रजेत् ॥ ततो येषां पदार्थानां वर्जनं तु कृतं भवेत् ॥६॥ ॥ ॥ ॥

कथा कहाकर पहिले ब्राह्मणोंकी और फिर अन्य लोगोंकी पूजा करै और कहै कि हे भगवन् ! हे स्वामी ! मैने यह व्रत तुह्मारी प्रीत्यर्थ किया है ॥ ४ ॥ हे जनार्दन ! तुह्मारे प्रसादसे जो कुछ रह गया हो सो संपूर्ण होजाय । रेवतीके चौथे चरणयुक्त द्वादशीमे मनुष्य ॥ ५ ॥ पारणा न करै करनेसे व्रत निष्फल होजाता है। फिर जिन पदार्थोंको

छोड़ा हो ॥ ६ ॥ चातुर्मासमें वा कार्तिकमें उन्हें ब्राह्मणको समर्पण करै । फिर व्रतके दिनोंमें जिस २ को छोड़ा है उन सबको खाय ॥ ७ ॥ और ब्राह्मणोंके सहित और स्त्री पुरुषके जोड़े सहित आप भोजन करै। फिर भोजनके पीछे जो गिरे हुए तुलसीपत्र हैं ॥ ८ ॥ उन्हें मुखमें गेरै और तुलसीपत्र खाय तो सब पापोंसे छूट जाता है । गन्ना, आमला, और बेरफल ॥ ९ ॥ भोजनके अंतमें खानेसे उसका उच्छिष्ट दूर होजाता है । जो इन तीनोंमेंसे एकको भी नहीं

चातुर्मास्येथवा चोर्जे ब्राह्मणेभ्यः समर्पयेत् ॥ ततः सर्वं समश्नीयाद्यद्यत्त्यक्तं व्रते स्थितम् ॥७॥
दंपतीभ्यां सहैवात्र भोक्तव्यं च द्विजैः सह ॥ ततो भुक्त्युत्तरं यानि गलितानि दलानि च ॥८॥
तानि भुक्त्वा तुलस्याश्च स्वयं पापैः प्रमुच्यते ॥ इक्षुदंडं तथा धात्रीफलं कोलिफलं तथा ॥ ९ ॥
भुक्त्वा तु भोजनस्यांते तस्योच्छिष्टं विनश्यति ॥ एषु त्रिषु न भुक्तं चेदेकेकमपि येन तु ॥१०॥
ज्ञय उच्छिष्ट आवर्षं नरोसौ नात्र संशयः ॥ ततः सायं पुनः पूज्याविक्षुदंडैश्च शोभितैः ॥ ११ ॥
तुलसीवासुदेवौ च कृतकृत्यो भवेत्ततः ॥ ततो विसर्जनं कृत्वा दत्त्वा दायादिकं हरेः ॥ १२ ॥

खाय तो ॥ १० ॥ उस मनुष्यको वर्षभरतक उच्छिष्ट समझना चाहिये इसमें संदेह नहीं है । फिर सायंकालको सुंदर गन्नोंसे ॥ ११ ॥ तुलसी और भगवान्‌की पूजा करै तो उससे सब सफल होजाता है । फिर विसर्जन करके और भगवान्‌को दायादिक देकर ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

कहै कि हे भगवन् स्वामी ! तुलसीजीके सहित वैकुंठको जाइये । और मेरे किये पूजनको ग्रहण करके सदा संतुष्ट हूजिये और ॥१३॥ हे परमेश्वर ! हे श्रेष्ठदेव ! जाइये जाइये । हे जनार्दन ! जहां ब्रह्मादि देवता हैं वहां जाइये ॥ १४ ॥ इसप्रकार भगवान्का विसर्जन करके मूर्ति आदि सब आचार्यको दे दे तो वह मनुष्यका कर्म सफल हो जाता है

वैकुंठं गच्छ भगवंस्तुलसीसहितः प्रभो ॥ मत्कृतं पूजनं गृह्य संतुष्टो भव सर्वदा ॥ १३ ॥
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर ॥ यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ जनार्दन ॥ १४ ॥
एवं विसृज्य देवेशमाचार्याय प्रदापयेत् ॥ मूर्त्यादिकं सर्वमेव कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ १५ ॥
प्रतिवर्षं करोत्येवं तुलस्युद्वाहनं शुभम् ॥ इहलोके परत्रापि विपुलं स यशो लभेत् ॥ १६ ॥
प्रतिवर्षं तु यः कुर्यात्तुलसीकरपीडनम् ॥ भक्तिमान् धनधान्यैः स युक्तो भवति निश्चितम् ॥ १७ ॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहफलानुकीर्त्तनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥

॥१५॥ जो मनुष्य प्रतिवर्ष तुलसीजीका सुंदर विवाह करता है तो इसलोक और परलोकमें बहुतसा यश पाता है ॥१६॥ जो मनुष्य प्रतिवर्ष तुलसीजीका विवाह करता है वह भक्तिमान् और धनधान्यसे युक्त निश्चय करके होता है ॥१७॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये तुलसीविवाहफलानुकीर्तनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ वालखिल्या वोले ॥ सत युगमें कार्तिकशुक्लपक्षकी चौदसके दिन भगवान् वैकुंठसे काशीपुरीमे गये ॥ १ ॥ और जब चौथाई रात्रि रह गई उन्होंने मणिकर्णिकापर स्नान करके और सुवर्णके हजार कमल लेकर वहांसे गये ॥ २ ॥ और वड़ी भक्तिसे पार्वतीसहित महादेवजीका पूजन करके फिर कमलोंसे शिवजीका पूजन किया ॥ ३ ॥ पहिले

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां समागमत् ॥ वैकुंठेशस्तु वैकुंठाद्वाराणस्यां कृते युगे ॥ १ ॥ रात्र्यां तुर्यांशशेषायां स्नात्वासौ मणिकर्णिके ॥ गृहीत्वा हेमपद्मानां सहस्रं वै ततो व्रजेत् ॥ २ ॥ अतिभक्त्या पूजयितुं शिवया सहितं शिवम् ॥ विधाय पूजां वैश्वेशीं ततः पद्मैरपूजयत् ॥ ३ ॥ सहस्रसंख्यां कृत्वादावेकनाम्ना ततः परम् ॥ आरब्धं पूजनं तेन शिवस्तद्भक्तिमैक्षत ॥ ४ ॥ एकं पद्मं पद्ममध्यान्निलियात्तं हरेण तु ॥ ततः पूजितवान्विष्णुरेकोनं कमलं त्वभूत् ॥ ५ ॥ इतस्ततस्तेन दृष्टं पद्मं तिष्ठति न क्वचित् ॥ कमलेषु भ्रमो जातोऽथवा नामसु मे भ्रमः ॥ ६ ॥ ॥ ॥

हजार कमल गिनकर फिर एक एक नामसे विष्णुने पूजन करना आरंभ किया तो शिवजीने उनकी भक्ति देखनेकेलिये ॥ ४ ॥ हरने कमलोंमेसे एक कमल लोप कर दिया । फिर विष्णु पूजा करते रहे और वहां एक कमल कमती होगया ॥ ५ ॥ विष्णुने इधर उधर देखा पर पर कमल कहीं नहीं था । फिर भगवान्ने सोचा कि कमल गिनतेमें

भ्रम होगया अथवा नामोंमें मुझे भ्रम होगया ॥ ६ ॥ क्षणभर विचारकर भगवान्‌ने जाना कि मुझे नाममें भ्रम नहीं हुआ मुझे कमलमेही भ्रम होगया ऐसा वार २ विचार कर कि ॥ ७ ॥ मैंने पूजाके लिये हजार कमलोंका संकल्प किया था सो एक कम कमलोंसे मै महादेवका पूजन कैसे करूं ॥ ८ ॥ जो लेनेके लिये जाताहूं तो आसन भंग होजा-

क्षणं विचार्य स हरिर्न मे नामभ्रमोऽभवत् ॥ पद्मे चैव भ्रमो जातो विचार्यैवं पुनः पुनः ॥७॥ सहस्रपद्मसंकल्पः पूजार्थं तु कृतो मया ॥ अर्च्यः कथं महादेव एकोनकमलैर्मया ॥ ८ ॥ यद्यानेतुं गमिष्यामि भंगः स्यादासनस्य तु ॥ अतःपरं किं विधेयं चिंतोद्विग्नो हरिस्तदा ॥९॥ एकः प्रकार उत्पन्नो हृदयेऽस्य मुनीश्वराः ॥ पुंडरीकाक्ष इत्येवं मां वदंति मुनीश्वराः ॥ नेत्रं मे पद्मसदृशं पद्मार्थे त्वर्पयाम्यहम् ॥ १० ॥ इति निश्चित्य मनसा दत्त्वा तर्जनिकां स तु ॥ नेत्र-मध्यात्तदुत्पाट्य महादेवस्तु पूजितः ॥ ११ ॥ ततो महेश्वरस्तुष्टो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ महादेव उवाच ॥ त्वत्समो नास्ति मद्भक्तस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १२ ॥ ॥ ॥

यगा ॥ और अब क्या करना चाहिये भगवान् इस चिन्तासे बड़े दुखी हुये ॥९॥ फिर हे मुनीश्वरो ! इनके मनमें एक रीति आई कि मुनीश्वर मुझे पुंडरीकाक्ष कहते है और मेरा नेत्र कमलके समान है सो कमलके अर्थ मैं उसे अर्पण करता हूं ॥१०॥ विष्णुने ऐसा मनसे विचारकर और तर्जनी अंगुलीसे नेत्रकमल उखाड़कर महादेवका पूजन किया ॥११॥ फिर शिवजीने प्रसन्न

होकर यह वचन कहा ॥ महादेवजी बोले ॥ सचराचर त्रिलोकीमें तुह्मारे समान कोई मेरा भक्त नहीं है ॥ १२ ॥
मैंने तुह्मैं त्रिलोकीका राज्य दिया तुम लोकपाल होउ । तुह्मारा कल्याण होय और जो तुह्मारे मनमें इच्छा हो सो
और मांगो ॥ १३ ॥ मैं अवश्य दूंगा इसमें कोई विचार नहीं करना है । मेरी भक्ति करके जो भगवान्से वैर करते
हैं ॥ १४ ॥ वे मेरे और विष्णुके द्वेषी मनुष्य निश्चय करके नरकको जायंगे ॥ विष्णु बोले ॥ हे महेश्वर ! आपने

राज्यं दत्तं त्रिलोक्यास्ते भव त्वं लोकपालकः ॥ अन्यं वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेप्सितम् ॥ १३ ॥ अवश्यमेव दास्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥ मद्भक्तिं तु समालंब्य ये द्विषंति जनार्दनम् ॥ १४ ॥ ते मद्द्वेष्या नरा विष्णो व्रजेयुर्नरकं ध्रुवम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्रैलोक्यरक्षाकरणं ममादिष्टं महेश्वर ॥ १५ ॥ दुर्मदाश्च महासत्त्वा दैत्या मार्याः कथं मया ॥ शिव उवाच ॥ एतत्सुदर्शनं चक्रं महादैत्यनिकृंतनम् ॥१६॥ गृहाण भगवन्विष्णो मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ अनेन सर्वदैत्यानां भगवन्कदनं कुरु ॥ १७ ॥ ॥ ॥

मुझे त्रिलोकीकी रक्षा करनेकी आज्ञा दीनी ॥ १५ ॥ परंतु मैं दुर्मद और बड़े २ दैत्योंको कैसे मारूंगा ॥ शिवजी
बोले ॥ बड़े २ दैत्योंको नाश करनेवाला यह सुदर्शन चक्र है ॥ १६ ॥ हे विष्णु हे भगवन् ! तुम इसे लो मैंने तुह्मैं
इसे दिया । और हे भगवन् ! इससे सब दैत्योंका नाश करो ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥

इसप्रकार विष्णुको चक्र देकर फिर कहने लगे। शिवजी बोले ॥ हेमलंब नाम वर्षमें और सुन्दर कार्तिकमासके ॥ १८ ॥ शुक्लपक्षकी चौदस महादेवकी तिथिके दिन अरुणोदयके समय ब्राह्म मुहूर्तमें मणिकर्णिकामें ॥ १९ ॥ स्नान करके विश्वेश्वरनाथके लिंगको तुमने वैकुंठसे आकर हजार कमलोंसे पूजा है इसलिये मेरी प्रिया ॥ २० ॥

एवं चक्रं हरेर्दत्त्वा ततो वचनमब्रवीत् ॥ शिव उवाच ॥ वर्षे च हेमलंबाख्ये मासे श्रीमति कार्तिके ॥ १८ ॥ शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति ॥ महादेव तिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके ॥ १९ ॥ स्नात्वा वैश्वेश्वरं लिंगं वैकुंठादेत्य पूजितम् ॥ सहस्रकमलैस्तस्माद्भविष्यति मम प्रिया ॥ २० ॥ विख्याता सर्वलोकेषु वैकुंठाख्या चतुर्दशी ॥ अन्यं वरं प्रदास्यामि शृणु विष्णो वचो मम ॥ २१ ॥ पूर्वरात्रे तु ते पूजा कर्तव्या सर्वजातिभिः ॥ उपवासं दिवा कुर्यात्सायंकाले तवार्चनम् ॥ २२ ॥ पश्चान्ममार्चनं कार्यमन्यथा निष्फलं भवेत् ॥ ग्राह्या तु हरिपूजायां रात्रिव्याप्ता चतुर्दशी ॥ २३ ॥ ॥ ॥

वैकुंठ चतुर्दशी सब लोकमें विख्यात होगी और हे भगवन् ! मैं दूसरा वरदान देता हूं सो मेरा वचन सुनो ॥ २१ ॥ पहिली रात्रिको सब वर्णोंको तुह्मारी पूजा करनी चाहिये और दिनमें उपवास करके सायंकालको तुह्मारी पूजा करके ॥ २२ ॥ फिर मेरा पूजन करै नही तो निष्फल होजायगा। और विष्णुकी पूजामें रात्रिव्यापिनी चौदस ग्रहण करै

॥ २३ ॥ और अरुणोदयके समय शिवजीका पूजन करै । जो मनुष्य हजार कमलोंसे पहिले भगवान्का पूजन करैंगे ॥ २४ ॥ और पीछै शिवजीकी पूजा करैंगे वे निश्चय जीवन्मुक्त हैं । जो सायंकालको पंचगंगामे स्नान करके बिंदुमाधवको पूजते हैं ॥ २५ ॥ और सुन्दर हजार कमल हजार नाम लेकर भगवान्को चढ़ाते है और फिर मणिकर्णिकामें स्नानकर विश्वेश्वरनाथको पूजते हैं ॥ २६ ॥ और पवित्र सहस्रनामका पाठ करते है वे निश्चय जीवन्मुक्त हैं ।

अरुणोदयवेलायां शिवपूजां समाचरेत् ॥ सहस्रकमलैर्विष्णुरादौ यैः पूजितो नरैः ॥ २४ ॥
पश्चाच्छिवः पूजितश्चेज्जीवन्मुक्तास्त एव हि ॥ सायं स्नात्वा पंचनदे बिंदुमाधवमर्चयेत् ॥ २५ ॥
सहस्रनामभिर्विष्णोः कमलैः सुमनोहरैः ॥ मणिकर्ण्यां ततः स्नात्वा विश्वेश्वरमथार्चयेत् ॥ २६ ॥
सहस्रनामभिः पुण्यैर्जीवन्मुक्तः स एव हि ॥ स्नात्वा यो विष्णुकांच्यां वानंतसेनं समर्चयेत् ॥२७॥
रुद्रकांच्यां ततः स्नात्वा प्रणवेशं समर्चयेत् ॥ पृथिव्यां च श्रुता ये ये धर्माः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥२८॥
सर्वेषां फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ आदौ स्नात्वा वह्नितीर्थे यजेन्नारायणं ततः ॥ २९ ॥

जो कोई विष्णुकांचीमे स्नान करके अनंत सेनका पूजन करता है ॥ २७ ॥ और फिर रुद्रकांचीमे स्नानकर प्रणवेशकी पूजा करता है । तो पृथिवीपर पण्डितोने जो जो धर्म कहे हैं ॥ २८ ॥ वह उन सबका फल पाता है इसमे कुछ विचारका काम नहीं है । और जो पहिले वह्नितीर्थमें स्नानकर और फिर नारायणका पूजन करता है ॥ २९ ॥

और फिर रेतोदक तीर्थमें स्नान करके केदारेश्वरकी पूजा करता है तो इसी लोकमे इच्छा करनेवालोंकी कामना सफल होजाती है इसमें संदेह नहीं है ॥ ३० ॥ और जो कमल न मिलै तो स्थलपद्मोंसेही पूजा करै। पहिले यमुनाजीमें स्नान करके वेणीमाधका पूजन करै ॥ ३१ ॥ फिर गंगाजीमे स्नान करके संगमेश्वरका पूजन करै। और रक्त कमलोंसे भगवान्का और श्वेत कमलोंसे शिवजीका पूजन करै तो सब संपत्तियां उसके वशमे होजाती हैं यह सत्य है

रेतोदके ततः स्नात्वा केदारेशं समर्चयेत् ॥ इहैवार्थवतामर्थो भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ ३० ॥
स्थलपद्मैस्तत्रपूजा कर्तव्या जलजक्षयात् ॥ आदौ स्नात्वा सूर्यपुत्र्यां वेणीमाधवमर्चयेत् ॥३१॥
जाह्नव्यां च ततः स्नात्वा संगमेशं प्रपूजयेत् ॥ रक्तपद्मैः श्वेतपद्मैर्हरिरुद्रौ क्रमेण च ॥ सर्वाः
श्रियस्तस्य वश्याः सत्यं विष्णो मयोदितम् ॥ ३२ ॥ मोक्षार्थं काशिकामध्ये तिष्ठतः शुभदायकौ ॥ बिंदुमाधवविश्वेशौ जगदानंदकारकौ ॥ ३३ ॥ न लभेत्पूजयित्वा किं मोक्षं विश्वेश्वरं
हरिम् ॥ विना यो हरिपूजां तु कुर्याद्रुद्रस्य चार्चनम् ॥ ३४ ॥ ॥

मैंने विष्णुसे कहा है ॥ ३२ ॥ काशीमें कल्याण देनेवाले और जगतको आनंद करनेवाले विंदुमाधव और विश्वेश्वरनाथ मोक्ष देनेके लिये रहते है ॥ ३३ ॥ सो क्या महेशको पूजकर मनुष्य मोक्ष नहीं पाता। जो मनुष्य भगवान्को विना पूजे शिवजीका पूजन करता है ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तो उसकी पूजा वृथा जाती है यह मेरा सत्य वचन है। इसप्रकार विष्णुको वर देकर शिवजी अंतर्धान होगये ॥३५॥ इसलिये सब प्रकारसे विष्णु और शिव दोनोंको पूजना चाहिये। जब घोर कलियुग आवेगा तो पवित्रता और आचार सब जाता रहैगा ॥ ३६ ॥ और उसके पांच हजार वर्ष वीत जानेपर काशीमें जितने लिंग स्थापित हैं उन सबको

वृथा तस्य भवेत्पूजा सत्यमेतद्वचो मम ॥ एवं तस्मै वरान्दत्त्वा ह्यंतर्धानं ययौ शिवः ॥३५॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यौ हरिहरावुभौ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे शौचाचारविवर्जिते ॥ ३६ ॥ तत्त्वसंख्यैस्सहस्रैस्तु वर्षैर्देवो महेश्वरः ॥ वाराणसीस्थलिंगानि पाताले स नयिष्यति ॥३७॥ ततो द्विगुणवर्षैस्तु गंगा वाराणसी तथा ॥ भविष्यति ह्यदृश्या सा तत्रैव मुनीश्वराः ॥ ३८ ॥ अंतर्हिता यदा काशी भविष्यति तदा मुने ॥ नाशस्तु लिंगचिह्नानां निष्प्रभाः सकला जनाः ॥ ३९ ॥ चतुर्दशाब्दं दुर्भिक्षं महामारीसमुद्भवः ॥ गोवधश्चापि सर्वत्र मृत्तिका भस्मसन्निभा ॥ ४० ॥

शिवजी पाताल लेजायंगे ॥ ३७ ॥ फिर उससे दुगुने वर्षोंमें अर्थात् दस हजार वर्षमें गंगा और वाराणसी अदृश्य हो जायंगीं और हे मुनीश्वरो ! ॥ ३८ ॥ जब काशी लोप होजायगी तब और लिंगोंके चिन्ह नाश होजायंगे और सब लोग कांतिरहित होजायंगे ॥ ३९ ॥ फिर चौदह वर्ष अकाल पड़ेगा और महामारी चेतेगी ! सब जगह गोवध होगा

और मृत्तिकाकी आभा राखकैसी होजायगी ॥ ४० ॥ फिर गंगाके जलकी धारा जो हरिद्वारसे वायव्यस्थानकी ओर भागीरथके आश्रममें गिरती है उसका लोप होजायगा ॥ ४१ ॥ जब गंगाजी लोप होजायंगी तो मकड़ीके तंतुके समान कीड़े जलमें होजायंगे और जलका नीला रंग पड़ जायगा ॥४२॥ और चार हजार वर्षके अनंतर पर्वतपर रहनेवाले सब

गांगतोया तु या धारा पतेद्भागीरथाश्रमे ॥ हरिद्वाराच्च वायव्ये तस्या लोपो भविष्यति ॥ ४१ ॥ भागीरथ्यां गतायां तु मर्कटीतंतुसन्निभाः ॥ भविष्यंति जले कीटास्तोयं नीलिनिभं तथा ॥ ४२ ॥ चतुर्वर्षसहस्रेस्तु शैलस्थाः सर्वदेवताः ॥ सत्वं त्यक्त्वा गमिष्यंति मानसं च सरोवरम् ॥ ४३ ॥ गतेषु सर्वदेवेषु राजानो धैर्यविच्युताः ॥ पापिष्ठाश्च दुराचारा नानादुःखेन पीडिताः ॥ ४४ ॥ कलेरयुतवर्षाणि भविष्यंति यदा खग ॥ श्रौतमार्गस्य लोपस्तु भविष्यति न संशयः ॥ ४५ ॥ तदा लोका भविष्यंति मद्यपानपरायणाः ॥ स्वल्पायुषः स्वल्पभाग्या नानारोगैश्च पीडिताः ॥ ४६ ॥ ॥ ॥ ॥

देवता सत्वको छोड़ मानससरोवरको चले जायंगे ॥ ४३ ॥ सब देवताओंके चले जानेपर राजा धैर्यसे रहित पापी दुराचारी और अनेक प्रकारके दुःखसे पीड़ित होंगे ॥ ४४ ॥ और हे खग ! जब कलियुगके हजार वर्ष बीत जायंगे तब वेदमार्गका लोप होजायगा इसमें संदेह नहीं है ॥ ४५ ॥ उस समय लोग मद्यपान करनेमें तत्पर होंगे थोड़ी आयु-

वाले मंदभाग्य और अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होंगे ॥ ४६ ॥ दो तीन वेद पाठी दक्षिण देशमें होंगे सो

द्वित्रास्तु दक्षिणे देशे वेदज्ञाः संभवंति च ॥ आनीयतांश्छाककर्ता धर्मं संस्थापयिष्यति ॥४७॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

राजा उन्हें लाकर धर्म स्थापित करैंगा ॥ ४७ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥



॥ वालखिल्या बोले । कार्तिककी पूर्णिमाके दिन त्रिपुरका उत्सव करना चाहिये और सायंकालको शिवजीके मंदिरमें अवश्य दीपक चढ़ाना चाहिये ॥ १ ॥ दैत्योंके स्वामी त्रिपुरने प्रयागमें तप किया था । उसने एक लाख वर्ष तप किया और सचराचर तीनों लोकको दुःख दिया ॥ २ ॥ उस तपके तेजसे तीनों लोकोंका जलाना आरंभ किया । देवताओंने अनेक देवांगनाओंको उसे वश करनेके लिये भेजीं ॥ ३ ॥ परंतु वह उन देवांगनाओंके वशमें नहीं हुआ और बड़े

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु कुर्यात्रैपुरमुत्सवम् ॥ दीपो देयोऽवश्यमेव सायंकाले शिवालये ॥ १ ॥ त्रिपुरो नाम दैत्येंद्रः प्रयागे तप आस्थितः ॥ लक्षवर्षं तपस्तप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २ ॥ तत्तपस्तेजसारब्धं दग्धुं तु भुवनत्रयम् ॥ नानादेवांगनादेवैः प्रेषिता संविमोहितुम् ॥ ३ ॥ न तासां वशगः सोभूद्धर्षणैश्चापि धर्षितः ॥ न क्रोधमोहलोभानां वशो दैत्यो नु जायते ॥ ४ ॥ वरं दातुं ययौ ब्रह्मा नारदादिभिरन्वितः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वरं वरय भद्रंते संतुष्टोहं पितामहः ॥ ५ ॥ ॥ ॥

२ कठिन कामोसे धमकाये जाने पर भी वह दैत्य क्रोध मोह लोभ इनके वशमें नहीं आया ॥ ४ ॥ फिर नारद आदिको साथ लेकर ब्रह्माजी उसे वर देनेके लिये गये । ब्रह्मा बोले । मैं ब्रह्मा तुझसे प्रसन्नहूं तू वर माग तेरा कल्याण होय ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

तपसे फल सिद्ध होजाता है तो कौनसा मनुष्य क्लेश सहता है ॥ त्रिपुर बोला ॥ हे ब्रह्माजी ! मुझे अमर करो नही तो मैं तप करूंगा ॥ ६ ॥ हे ब्रह्माजी ! जो यह देनेको समर्थ नहीं हो तो शीघ्र चले जाओ। ब्रह्माजी बोले ॥ हे बालक ! मुझकोभी मरना है औरोंकी तो क्या कथा है ॥ ७ ॥ प्राणियोंकी मृत्यु अवश्य होती है इसलिये जो बात होसके सो

तपसा तु फले सिद्धे कः क्लेशं सहते जनः ॥ त्रिपुर उवाच ॥ अमरं कुरु मां ब्रह्मन् करोमि ह्यन्यथा तपः॥ ६ ॥ दातुं शक्तं न चेद्ब्रह्मन्न व्यथा गच्छ सत्वरम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मयापि बाल-मर्त्तव्यमितरेषां तु का कथा ॥ ७ ॥ अवश्यं देहिनां मृत्युः संभाव्यं याचयस्व मे ॥ त्रिपुर उ-वाच ॥ न मे मृत्युर्देवताभ्यो मनुष्येभ्यो निशाचरात् ॥ ८ ॥ न स्त्रीभ्यो न च रोगेण देह्येवं वरमुत्तमम् ॥ ब्रह्मापि च तथेत्युक्त्वा सत्यलोकं जगाम सः ॥ ९ ॥ एवं लब्धवरं ज्ञात्वा नाना-दैत्या समाययुः ॥ तान् दैत्यानागतान्दृष्ट्वा सो ज्ञापयत दानवान् ॥ १० ॥ अस्मद्विरोधिनो देवा धर्त्तव्याः सर्वएव हि ॥ नोचेद्यानि च रत्नानि देवादीनां समीपतः ॥ ११ ॥ ॥

मांगले ॥ त्रिपुर बोला ॥ मेरी मृत्यु देवता मनुष्य और राक्षससे न हो ॥ ८ ॥ और न स्त्रीसे और न रोगसे होय ऐसा उत्तम वर दान दो ॥ ब्रह्माजीने कहा "ऐसाही होगा" यह कहकर वे सत्य लोकको गये ॥ ९ ॥ जब उसने ऐसा वर पाया तो उसके पास बहुतसे दैत्य आये । उन दैत्योंको आया देखकर उसने दानवोंसे आज्ञा करी कि ॥१०॥ देवता हमारे शत्रु हैं

उन सवको पकड़ लाओ। नहीं तो देवता आदिके पास जो रत्न हैं ॥ ११ ॥ उन सवको लाकर मेरी भेट करो। उसकी इस आज्ञाको शिरपर धरके वे सब दानव ॥ १२ ॥ देवता नाग और यक्षोंको पकडकर सामने ले आये तब सब देवता उस त्रिपुरको नमस्कारकर निवेदन करने लगे कि ॥ १३ ॥ हे दैत्य राजेन्द्र! जो हमारे पास हो लेलो हम तुह्मारी सेवा करके जैसे होगा वैसे जीयेंगे ॥ १४ ॥ उनका यह वचन सुनकर उनको अधिकारसे अलग करदिया।

गृहीत्वा तानि सर्वाणि कुर्वंतूपायनं मम ॥ इत्याज्ञां तस्य शिरसि कृत्वा ते सर्वदानवाः ॥१२॥
देवान्नागांश्च यक्षांश्च धृत्वाग्रे विनिवेदिताः ॥ प्रणम्य सर्वदेवास्तं त्रिपुरं च व्यजिज्ञपुः ॥१३॥
गृह्यतां दैत्यराजेंद्र यदस्माकं भविष्यति ॥ वयं कृत्वा तु ते सेवां जीविष्यामो यथा तथा ॥१४॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषामधिकारच्युताः कृताः ॥ तेषां स्त्रियः समानीय देववेश्याः सहस्रशः ॥१५॥
एवं भास्करमुत्सृज्य सर्वेदेवास्तदाज्ञया ॥ चक्रुर्यथोक्तं दैत्यस्य द्वारस्थाः सर्वएव हि ॥ १६ ॥
सूर्यस्य निकटेप्युक्तं मद्द्वारे स्थीयतां सदा ॥ तेनापि च तथेत्युक्त्वा तद्द्वारे संस्थितं क्षणम् ॥ १७ ॥

और उनकी स्त्रियोंको और हजारो देवांगनाओंको ले आये ॥ १५ ॥ इसप्रकार सूर्यनारायणको छोड़कर सब देवता उसकी आज्ञासे जैसा उसने कहा करने लगे और सब उस दैत्यके द्वारपर खड़े होगये ॥ १६ ॥ उसने सूर्यसे भी कहा भेजा कि सदा मेरे द्वारपर खड़े रहो और वे भी "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर उसके द्वारपर क्षणभर खड़े होगये

॥ १७ ॥ और क्षणमात्रमें अपनी किरणोंसे उसके सव घरको तपादिया फिर उसने आज्ञा दीनी कि जहां तुह्मारी इच्छा हो वहां चले जाओ ॥ १८ ॥ फिर यह भगवान् सूर्यनारायण भुवनोंको प्रकाश करते हुये चले गये । और सव देवता निकाल देनेपर भी उसके द्वारपर वैठ उसकी आज्ञा पालन करने लगे ॥ १९ ॥ एक समय उसके घर नारदजी

ददाह भवनं सर्वं स्वकरैः क्षणमात्रतः ॥ आदिष्टश्च ततस्तेन स्वेच्छया गम्यतामिति ॥ १८ ॥
ततो गतो सौ भगवान्भुवनानि विभावयन् ॥ चक्रुर्देवास्तदाज्ञां च द्वारि तिष्ठंति वारिताः ॥१९॥
कदाचित्तस्य गेहेतु नारदः समुपाययौ ॥ तेनापि पूजितो भक्त्या पप्रच्छ स्व पराक्रमान्
॥ २० ॥ नारद उवाच ॥ ईदृशो जयघोषस्तु न केनापि कृतो भुवि ॥ अस्मिन्देशे तु दैत्येंद्र
किमिदानीं निगद्यताम् ॥ २१ ॥ त्रिपुर उवाच ॥ सर्वस्थलेषु मे कीर्तिर्न गता किं नु नारद ॥
मया प्रस्थापिता दैत्याः सर्वएव इतस्ततः ॥ २२ ॥ यत्र यत्र गतो दैत्य स्तत्र तत्र प्रभुः सहि ॥
तव नाम न गृह्णाति वक्ति च स्वपराक्रमम् ॥ २३ ॥ ॥ ॥

आये । उसने भक्तिसे उनका पूजन करके अपने पराक्रमोंके विषयमें पूछा ॥ २० ॥ नारदजी वोले ॥ पृथ्वीपर इस देशमे तुह्मारासा ऐसा जयका शब्द किसीने नही किया हे दैत्येन्द्र ! अव क्या है सो कहो ॥ २१ ॥ त्रिपुर वोला ॥ हे नारदजी ! क्या सव स्थानोंमें मेरी कीर्ति नही पहुंची मैंने तो सव दैत्योंको इधर उधर भेज दिया है ॥२२॥ नारदजीने कहा कि

जहां २ जो दैत्य गया वह वहांकाही स्वामी होबैठा वह तुह्मारा नाम भी नहीं लेता अपना पराक्रम कहता है ॥२३॥ यह सुनकर उसने शीघ्रही मुनिको विदाकर दिया । और इसको बड़ा क्रोध आया कि अब मुझे क्या करना चाहिये ॥ २४ ॥ उसने विश्वकर्माको बुलाकर यह कहा कि हे विश्वकर्मा ! तीन धातुओंके तीन पुर बना ॥ २५ ॥ वह विमानके तुल्य हों और जहां हमारी इच्छा हो वहां वे जासके उसका यह वचन सुनकर विश्वकर्माने वही किया

इति श्रुत्वा मुनिस्तेन सद्य एव बिदायितः ॥ क्रोधश्चास्य महान् जातः किं कर्तव्यं मयाधुना ॥२४॥
विश्वकर्माणमाहूय वाक्यमेतदुवाच ह ॥ शीघ्रं कुरु त्रिधातूनां विश्वकर्मन्पुरत्रयम् ॥ २५ ॥
विमानतुल्यं यत्रेच्छा तत्र तत्र गमिष्यति ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्वष्टापि च तथाकरोत् ॥२६॥
रूपत्रयं समास्थाय त्रिपुरेषु समाश्रितः ॥ नारदस्य तु वाक्येन दैत्या वंदीकृतास्तदा ॥२७॥
पुरेणैकेन पाताले भ्रमते त्रिपुरासुरः ॥ स्वर्गं चापि पुरैकेन धरणीमटते पुरा ॥ २८ ॥ कांश्चि-
त्संताडयत्येवं संमारयति कानपि ॥ ददाति केषां स्वामित्वं स्वेच्छाचारी महाबलः ॥ २९ ॥

॥ २६ ॥ और तीनरूप धरकर तीन पुरोंमें आश्रित होगया । और नारदजीके वाक्यसे दैत्योंको कैद करलिया ॥ २७ ॥ और त्रिपुरासुर एक पुरसे पातालमें भ्रमने लगा और एकसे स्वर्गमें और एकसे पृथ्वीपर घूमने लगा ॥ २८ ॥ किसीको मारै किसीको बड़ी ताड़ना दे किसीको स्वामी बनावै क्योंकि वह स्वेच्छाचारी और बड़ा बली था ॥ २९ ॥ ॥

उसने इसप्रकार जब सब पांच लाख लोगोंको दुखी किया तब देवताओंके पास आकर नारदजीने यह वार्ता कही ॥ ३० ॥ नारदजी बोले ॥ तुम पराक्रम वालोंको धिक्कार है हे इन्द्र ! तुह्मारी बुद्धि कहां गई है ॥ हे देवताओ त्रिपुरके मारनेके लिये विचार करो ॥ ३१ ॥ इसप्रकार मुनिका वचन सुनकर इन्द्रने लजाकर नीचा मुख करलिया । फिर नारदजीने इन्द्रसे कहा कि ब्रह्माजीकी शरण चलो । फिर इन्द्र उठकर देवगणके साथ गुप्त रीतिसे ॥ ३२ ॥ नारद-

तेनेत्थं पंचलक्षाणि सर्वे लोका उपद्रुताः ॥ तदा देवान् समागम्य नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥३०॥ ॥ नारदउवाच ॥ पराक्रमायास्तु ते धिक् देवेंद्र कगतास्ति धीः ॥ विचारयंतु भो देवा वधाय त्रिपुरस्य च ॥ ३१ ॥ इत्थं मुनिवचः श्रुत्वा सलज्जोभूदधोमुखः ॥ पुनस्तं नारदः प्राह ब्रह्माणं शरणं व्रज ॥ तत उत्थाय देवेंद्रो गूढो देवगणैः सह ॥ ३२ ॥ नारदेन समायुक्तः सत्यलोकं जगाम सः ॥ तत्रापश्यत्सधातारमुवाच करुणं वचः ॥३३॥ इंद्र उवाच ॥ धातरस्मद्गतिर्नास्ति हननीयास्त्वया वयम् ॥ नासाग्रे संस्थिताः प्राणास्त्रिपुरस्य तु शासनात् ॥ ३४ ॥ ॥

जीको साथ लेकर सत्यलोकको गये और वहां जाकर इन्द्रने ब्रह्माजीको देखा और उनसे दीन वचन कहे ॥ ३३ ॥ इन्द्र बोले । हे ब्रह्माजी ! हमारा अब ठिकाना नहीं है तुमही हमें मारडालो क्योंकि त्रिपुरके दंड भुगतते २ हमारा नाकमें दम होगया ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इन्द्रका यह वचन सुनकर ब्रह्माजी इन्द्र और मुनीश्वरोंको साथ लेकर शीघ्र वैकुंठको गये कि जहां भगवान् थे ॥३५॥ वहां जाकर देवता विष्णु भगवान्को प्रणाम करके खड़े होगये। और जब भगवान्ने अनुग्रह करके देखा तो ब्रह्माजी यह वचन बोले ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी बोले ॥ हे भगवान्! हे देवदेवेश! हे देवताओंकी आपत्तिके नाशक! त्रिपुरासुरसे

इतींद्रवचनं श्रुत्वा ब्रह्मा सेंद्रो मुनीश्वराः ॥ सद्यो वैकुंठमगमद्यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ ३५ ॥ तत्र गत्वा महाविष्णुं प्रणिपत्य स्थिताः सुराः ॥ अनुगृहीत्वा दृक्पातैस्तं ब्रह्मा वाक्यमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्देवदेवेश देवापत्तिविनाशन ॥ त्रिपुरासुरनिर्दग्धान् किं देवांस्त्वमुपेक्षसे ॥ ३७ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ त्वयैव नाशितं ब्रह्मन् दत्त्वा नानाविधा वराः ॥ देवादिभ्यः कथं तस्य मृत्युः संभाव्यतेऽधुना ॥ ३८ ॥ न भासते विचारो मे तस्य मृत्यौ सुरेश्वराः ॥ अस्ति कश्चिद्यदोपायः कथं वै करवाण्यहम् ॥ ३९ ॥ इति श्रुत्वा वचो विष्णोः सर्वे बुध्या तु कुंठिताः ॥ यदा नोचुर्वचः किंचिन्नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४० ॥ ॥

महा दुखी हम देवताओंका दुख क्यों नहीं सुनते ॥ ३७ ॥ विष्णु बोले ॥ हे ब्रह्माजी! तुमनेही अनेक प्रकारके वर देकर नाश किया है अब देवता आदिसे उसकी मृत्यु कैसे होसक्ती है॥ ३८ ॥ हे देवताओ! उसकी मृत्यु होनेका हमे कोई उपाय नही दीखता। और जो उपाय है तो हम उसे कैसे करैं ॥ ३९ ॥ भगवान्का यह वचन सुनकर सबकी बुद्धि

कुंठित होगई । और जब कुछ उत्तर नहीं दिया तो नारदजीने कहा ॥ ४० ॥ हे देवताओ ! खेद मतकरो मैं उपाय कहताहूं कि सृष्टिके मध्यमे जो एकही उत्पन्न हुआ है न देवता है न मनुष्य है ॥ ४१ ॥ और राक्षस दैत्य भूत तथा पिशाच कोई नहीं है । न पुरुष है न स्त्री है न मूर्ख है न पण्डित है ॥ ४२ ॥ न उसके बाप है न माता है न भाई है

॥ श्रीनारद उवाच ॥ कुर्वंतु खेदं मा देवा उपायः कथ्यते मया ॥ एको सृष्टः सृष्टिमध्ये न देवो न च मानुषः ॥ ४१ ॥ न राक्षसो न वै दैत्यो न भूतो न पिशाचकः ॥ नासौ पुमान्न च स्त्री तु न जडो न च पंडितः ॥ ४२ ॥ नास्य तातो न वा माता न भ्राता भगिनी न च ॥ तथैव तस्य संतानं स एनं मारयिष्यति ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतादृशः क्व दृष्टोसौ सत्यं वालीकमेव वा ॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा प्रोवाच जगदीश्वरः ॥ ४४ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ अहो त्रैलोक्यनाथोसौ महादेवो वृषध्वजः ॥ ब्रह्मन्कथं विस्मृतोसौ स नः कार्यं करिष्यति ॥ ४५ ॥ इत्युक्त्वा सर्व एवैते शंकरं शरणं ययुः ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेव महादेव दैत्येंद्राद्भृशपीडिताः ॥ ४६ ॥

न वहिन है उसकी संतान इसे मारैगी ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले ॥ ऐसा तुमने कहां देखा है यह सत्य है वा झूठ है । ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर भगवान्ने कहा ॥ ४४ ॥ भगवान् बोले ॥ अहा ! एसे तो त्रिलोकीके नाथ वृषध्वज महादेवजी है हे ब्रह्माजी ! तुम इन्है कैसे भूल गये क्या वे काम नहीं करैंगे ॥ ४५ ॥ यह कहकर वे सब शंकरकी

शरण गये । देवता बोले ॥ हे देवोंकेदेव हे महादेव ! दैत्य राजने हमें वड़ा दुखीकर रक्खा है ॥ ४६ ॥ इसलिये त्रिपुरासुरसे महा दुखी होकर आपकी शरण आये है ॥ शिवजी बोले ॥ हे ब्रह्माजी ! तुमनेही उसे वर दिया है कि जिससे वह मतवाला होगया है ॥ ४७ ॥ तुमनेही तो वर दिया है फिर उसे क्यौं मरवाते हो । उसने मेरा कुछ नहीं विगाड़ा है फिर मैं उस असुरको क्यौं मारूं ॥ ४८ ॥ शिवजीका यह वचन सुनकर वे देवता निराश होगये । उनको ऐसा

त्वामेव शरणं प्राप्तास्त्रिपुरेण प्रपीडिताः ॥ श्रीशिव उवाच ॥ ब्रह्मंस्त्वया वरो दत्त उन्मत्तोसौ भवत्तदा ॥ ४७ ॥ प्रदिष्टोसि वरः कस्मात्पुनर्मारयसे कथम् ॥ मदीयं नाशितं नैव कस्माद्वध्यो मयासुरः ॥ ४८ ॥ इति रुद्रवचः श्रुत्वा हताशास्ते सुरास्तदा ॥ तादृशांस्तान्सुरान्दृष्ट्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ विष्णुरुवाच ॥ त्वया प्रतिज्ञा लोकानां पालनाय सदाशिव ॥ कृतातस्त्वां समायाताः शरणं सर्वदेवताः ॥ ५० ॥ मया नानाविधं दुःखं हीयते तु सदाशिव ॥ एतद्दुःखं मया शक्यमपनेतुं यतो नहि ॥ ५१ ॥ ॥ ॥

देखकर विष्णुने यह बात कही ॥ ४९ ॥ विष्णु बोले ॥ हे सदाशिव ! तुमने लोकोंके पालनेकी प्रतिज्ञा करी है इसलिये सब देवता तुह्मारी शरण आये हैं ॥ ५० ॥ और हे सदाशिव ! मैंने अनेक प्रकारका दुख तो दूर करदिया परंतु इस दुखको मैं दूर करनेको निश्चय करके असमर्थहूं ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥

इसलिये आज मैं आपसे याचना करताहूं कि देवताओंको उसकी कैदसे छुड़ाओ ॥ शिवजी बोले ॥ तुह्मारा कहना मैं करूंगा परंतु एक तो मेरे घरमें सामग्री नही है और दूसरे वह मेरा अपराधी नहीं है सो मैं उस दानवको नहीं मारूंगा ॥ ५२ ॥ विष्णु बोले ॥ हे सदाशिव ! संग्रामके लिये सामग्री तो मैं तयार करदूंगा फिर वह दैत्य आप शिवजीका अन्याय कैसे करैगा ॥ ५३ ॥ विष्णुका यह वचन सुनकर महादेवजी बोले कि हा ! बड़ा कष्ट है कहीं त्रिपुरा-

अतस्त्वां याचयाम्यद्य देवान्बंदेर्विमोचय ॥ शिव उवाच ॥ तव वाक्यं करिष्यामि सामग्री नास्ति मे गृहे ॥ ममापराधरहितं हनिष्यामि न दानवम् ॥ ५२ ॥ विष्णुरुवाच ॥ सामग्रीं तु करिष्यामि संग्रामार्थं सदाशिव ॥ करिष्यति कथं दैत्यः शंभोरन्यायमेव सः ॥ ५३ ॥ इति विष्णुवचः श्रुत्वा हा कष्टमिति चाब्रवीत् ॥ अत्रागमिष्यत्यस्माकं शृणुयात्त्रिपुरासुरः ॥५४॥ न विलंबं मृतौ कुर्यात्किमिदानीं विधीयताम्॥सुरान्म्लानमुखान्दृष्ट्वा नारदो वाक्यमब्रवीत्॥५५॥ नारद उवाच॥सामग्री क्रियतां शीघ्रमायाति त्रिपुरासुरः॥विष्णुं पलायितं दृष्ट्वा क रुद्रोस्तीति लोकयन्

सुर यहां आकर हमारी बातें न सुनले ॥ ५४ ॥ सो उसकी मृत्युमें देर न करनी चाहिये और अब क्या करना चाहिये । फिर देवताओंका उदास मुख देखकर नारदजीने कहा ॥ ५५ ॥ नारदजी बोले ॥ शीघ्र सामग्री तयार करो त्रिपुरासुर ॥
[illegible] देखने लगे कि वह कहां है ॥ ५६ ॥

मैंने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा है पर जो मेरे स्थानपर लड़नेको आवेगा तो मै उस महा अभिमानीको अवश्य मारूंगा ॥ ५७ ॥ शिवजीका यह वचन सुनकर सब देवताओंको थामस हुआ । और उन शिवजीके युद्धके लिये विष्णुने सामग्री तयारकर दीनी ॥ ५८ ॥ आप तो बाण बने और अग्नि शल्य बना । वायुने पुंखरूप धारण किया और

मया न नाशितं तस्य यदि यास्यति मत्स्थले॥ योद्धुं तदावश्यमेव मया मार्यः सुदुर्मदः॥ ५७॥ इति रुद्रवचः श्रुत्वा समाश्वस्तास्तु देवताः ॥ सामग्रीं विष्णुरकरोद्युद्धार्थं स तु धूर्जटेः॥ ५८॥ बाणः स्वयं बभूवास्य वह्निः शल्यं बभूव सः ॥ वायुस्तु पुंखरूपोभून्मैनाकं च धनुः करोत् ॥ स्यंदनं धरणी जाता वेदा जाता हयोत्तमाः ॥ ५९ ॥ विधातासारथिर्जातः पताका च दिवा-करः ॥ आतपत्रं च चंद्रोभूद्गणेशाद्याः पदातयः ॥ ६० ॥ ततो वेगात्समुत्पत्य नारदस्त्रिपुरं ययौ ॥ श्रुत्वा नारदमायांतं सत्कारैरर्चयच्च तम् ॥ ६१ ॥ मुने पुराणि पश्याद्य ह्यजेयानि सुरासुरैः ॥ त्रैलोक्ये चाधुना जातं त्वत्कृपातो यशो मुने ॥ ६२ ॥ ॥

मैनाकको धनुष बनाया । पृथ्वी रथ होगई और वेद चारों घोड़े होगये ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी सारथी हुये और सूर्य पताका हुये । चंद्रमा छत्र और गणेशजी आदि पैदल सेना होगये ॥ ६० ॥ फिर नारदजी वेगसे उछलकर त्रिपुरके पास गये । नारदजीको आया हुआ सुनकर उसने बड़े सत्कारसे उनका पूजन किया ॥ ६१ ॥ और कहा हे मुनिराज !

आज मेरे पुरोंको देखो इन्हें देव दानव कोई नहीं जीत सके और हे मुनि! आपकी कृपासे अब तीनों लोकोंमें यश होगया ॥ ६२ ॥ उसके यह वचन सुनकर मुनि अपने माथेको ठोकते हुये हंसकर चुपके होगये यह देखकर असुरने कहा ॥ ६३ ॥ त्रिपुर बोला ॥ हे मुनि! आज तुमने ऐसी चेष्टा क्यों बनाई। मेरे भाग्यके समान भाग्यवाला कोई होतो बताओ ॥ ६४ ॥ नारदजी बोले ॥ हे दैत्येन्द्र! मैं कैलासपर गया था सो शिवजीका वैभव सुन क्या कहना है उसमे

॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा ललाटं कुट्टयन्मुनिः ॥ तूष्णीमासीद्धसित्वैतदवलोक्यासुरोऽब्रवीत् ॥ ६३ ॥ त्रिपुर उवाच ॥ किमर्थं चेदृशी चेष्टा मुने चाद्य कृता त्वया ॥ मद्भाग्यसमभाग्यश्चेदस्ति कश्चिन्निगद्यताम् ॥ ६४ ॥ नारद उवाच ॥ कैलासे तु गतश्चाहं दैत्येंद्र शृणु वैभवम् ॥ महेश्वरस्य किं वाच्यं तल्लक्षांशोपि न त्वयि ॥ ६५ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्तु विदायितः ॥ गृहीत्वा दैत्यसंघान्सै कलासं त्रिपुरो ययौ ॥ ६६ ॥ तत्र देवैर्महद्युद्धं जातं तत्र दिनत्रयम् ॥ पश्चाद्धरेण निहतस्त्रिपुरश्चैकबाणतः ॥ ६७ ॥ ॥ ॥

लाखवां अंश भी तुझमें नही है ॥ ६५ ॥ नारदजीका यह वचन सुनकर उसने उन्हें तो विदा किया और दैत्योंके समूहको लेकर त्रिपुर कैलासको गया ॥ ६६ ॥ वहां देवताओंके साथ तीन दिनतक बड़ा भारी युद्ध हुआ फिर शिवजीने एक बाणसे त्रिपुरको ॥ ६७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

कार्तिकी पूर्णिमाके दिन मारदिया और सब देवता प्रसन्न होगये। उसदिन सब देवताओंने शिवजीके अर्थ दीपदान किया ॥ ६८ ॥ इसलिये शिवजीके प्रसन्नार्थ अवश्य सातसो बीस बत्तियोंके दीपक जलावै ॥ ६९ ॥ पूर्णिमाके दिन दीपक चढ़ानेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। और पूर्णिमाकी संध्याको त्रिपुरोत्सव करना चाहिये ॥ ७० ॥ और देवमंदिरमें इसमंत्रसे दिये चढ़ावै "कीट पतंग मच्छर और वृक्ष और जो जीव जल और स्थलमें विचरते हैं दीपकको

कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु सर्वे देवाः प्रतुष्टुवुः ॥ तस्मिन्दिने सर्वदेवैर्दीपा दत्ता हराय च ॥६८॥ सर्वथैव प्रदेयाश्च दीपास्तु हरतुष्टये ॥ विंशतिः सप्तशतकाः सहिता दीपवर्तयः ॥ ६९ ॥ ददद्दीपं पूर्णिमायां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ पौर्णिमायां तु संध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः ॥ ७० ॥ दद्यादनेन मंत्रेण प्रदीपांश्च सुरालये॥कीटाः पतंगा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरंति जीवाः॥ दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवंति नित्यं श्वपचा हि विप्राः७१॥कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् ॥ शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् ॥ कार्यस्तस्मात्पौर्णमास्यां त्रिपुराय महोत्सवः ॥७२॥इति श्रीसनत्कुमारसं० कार्तिकमाहात्म्ये त्रिपुरोत्सवदीपविधिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३।

देख पुनर्जन्मके भागी न हों और सदा श्वपच ब्राह्मणहों ॥७१॥" कार्तिकी पूर्णिमाके दिन वृषोत्सर्ग करके रात्रि वितावै वह शिवपदको पाता है और यह शिवजीका व्रत कहा है इसलिये पूनोंके दिन त्रिपुरके अर्थ महोत्सव करना चाहिये ॥७२॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये त्रिपुरोत्सवदीपविधिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ वालखिल्या बोले ॥ अब कार्तिकमें व्रत करनेवालेका अच्छे प्रकारसे उद्यापन कहते हैं क्योंकि उद्यापन करनेसे निश्चय करके व्रत सफल होता है ॥ १ ॥ कार्तिकशुक्ला चौदसके दिन व्रती मनुष्य उद्यापन करै । और तुलसीके ऊपर सुन्दर मंडप बनावै ॥ २ ॥ और तुलसीके नीचे सर्वतोभद्र बनावै । उन्नीस लंबी और उन्नीस तिरछी रेखा खेंचे यों ३२४ कोष्टकका चक्र होगा ॥ ३ ॥ चारों कोणके तीन २ कोष्टकोंको खंडेन्दु कहते हैं और खंडेन्दुके सामनेके सीधे

॥ वालखिल्या ऊचुः ॥ अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनमथोच्यते ॥ कृते उद्यापने सांगं व्रतं भवति निश्चितम् ॥ १ ॥ ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मंडपिकां शुभाम् ॥ २ ॥ तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च ॥ तिर्यगूर्ध्वं कृता रेखा ऊनविंशतिसंख्यकाः ॥ ३ ॥ खंडेंदुस्त्रिपदं कोणे शृंखलापंचभिः पदैः ॥ एकादशपदावल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः ॥ ४ ॥ चतुर्विंशत्पदावापी परिधिर्विंशतिः स्मृतः ॥ मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम् ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥

पांच कोष्टकोंको शृंखला कहते हैं और शृंखलाकी दोनो बगलीमें ग्यारह २ कोष्टकोंका नाम वल्ली है और उससे आगे नौ कोष्टकोंका नाम भद्र है ॥ ४ ॥ फिर २४ कोष्टकोंका नाम वापी है फिर २० कोष्टकोंका नाम परिधि है फिर मध्यमें सोलह कोष्टकोंका अष्टदल कमल होता है ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

चार खंडेदव और वापी इनको श्वेतवर्ण करै चारों शृंखलाओंको श्याम करै और आठ भद्रोंको लाल करै ॥ ६ ॥
आठो वल्लियोंको नीली वनावै और परिधिको पीली वनावै । और कमलको पंचरंगा वनावै अथवा जैसा शोभा दे
वैसा पण्डितको वना देना चाहिये ॥ ७ ॥ उसके ऊपर पंचरत्न सहित कलश स्थापन करै वहा गुरुकी आज्ञासे सुव-
र्णके भगवान्का पूजन करै ॥ ८ ॥ और गीतवाजे आदि मंगलाचारोंसे रात्रिको जागरण करै । फिर पूनोके दिन

खंडेंदवो वेदसंख्या वाप्योपि श्वेतवर्णकाः ॥ चतस्रः शृंखला श्यामारक्तं भद्राष्टकं स्मृतम् ॥६॥
वल्यष्टकं नीलरूपं पीतस्तु परिधिर्भवेत् ॥ कमलं पंचरंगं तु यथाशोभं बुधो लिखेत् ॥ ७ ॥
तस्योपरिष्टात्कलशं पंचरत्नसमन्वितम् ॥ पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ ८ ॥ रात्रौ
जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमंगलैः ॥ ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥ ९ ॥
त्रिंशन्मितान् तदर्द्धं वा शक्त्यैकं वा निमंत्रयेत् ॥ अतो देवा इतिद्वाभ्यां होमयेत्तिलपायसम् ॥१०॥
ततो वै कपिलां दद्यात्पूजयेद्विधिवद्गुरुम् ॥ परात्र पौर्णमास्यां तु यात्रा स्यात्पुष्करस्य तु ॥ ११ ॥

स्त्रीसहित उत्तम ब्राह्मण ॥ ९ ॥ तीसहो वा पंद्रह वा शक्तिपूर्वक एककोही निमंत्रण करै । फिर "अतोदेवा और
इदं विष्णुः" इनदोनों मंत्रोसे तिल और खीरका हवन करै ॥ १० ॥ फिर कपिला गऊका दान करै और विधि-
पूर्वक गुरुकी पूजा करै और इसी उदयात पौर्णमासीको पुष्करकी यात्रा होती है ॥ ११ ॥

इसप्रकार उद्यापन करके मनुष्य व्रतका पूर्ण फल पाता है। ऐसा वर देकर भगवान् मत्स्यरूप होगये ॥ १२ ॥ सो उस कार्तिककी पौर्णमासीके दिन दान हवन और जप करनेसे मनुष्य अक्षय फल पाता है और उसदिन सदा विष्णु भगवान्की आरती करे ॥ १३ ॥ और हे राजा ! आरती प्रदोपसमय करनेसे मनुष्य दारिद्र्यको नहीं पाता। और कार्तिकी पूनोंको कृत्तिका योगमें जो भगवान्का दर्शन करता है ॥ १४ ॥ वह ब्राह्मण सात जन्मतक धनवान् और

एवमुद्यापनं कृत्वा सम्यग्व्रतफलं लभेत् ॥ वरान्दत्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूप्यभवत्ततः ॥ १२ ॥
तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं लभेत् ॥ कार्तिक्यां पौर्णिमायां तु विष्णुं नीराजयेत्सदा ॥१३॥
प्रदोपसमये राजन्न दारिद्र्यमवाप्नुयात् ॥ कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम्॥१४॥
सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः॥ एतानि कार्तिके मासि नरः कुर्याद्व्रतानि तु ॥ १५ ॥
इह लोके शरीरं स क्लेशयित्वा फलं लभेत् ॥ न कार्तिकसमो मासो विष्णुसंतोपकारकः ॥ १६ ॥
स्वल्पक्लेशैर्विष्णुलोकप्रापको नापरो भवेत् ॥ इत्थं तैर्नैमिपारण्ये वालखिल्यैरुदाहृतम् ॥ १७॥

वेदमें पारंगत होता है और जो मनुष्य कार्तिक मासमें इन व्रतोंको करता है ॥ १५ ॥ वह इस लोकमे शरीरको क्लेशित करके अगले जन्मफल पाता है । कार्तिकके समान कोई मास विष्णुको संतोपकारक नहीं है ॥ १६ ॥ थोड़ेही क्लेशोंसे मनुष्य विष्णु लोकका भागी होता है ॥ इस प्रकार वालखिल्योंने जो कुछ सूर्यनारायणके मुखसे सुना था

उसे नैमिषारण्यमें शौनकादिक ऋषियोंको सुनाया और फिर उनको प्रणामकर सूर्यकी स्तुति करते हुये सूर्यके निकट चले गये ॥१७॥ १८ ॥ फिर सनत्कुमारजीने आत्रेयस ऋषिसे कहा कि यह सब मैंने कार्तिकके व्रतकी उत्तमता कही कि

भास्करस्य मुखाच्छ्रुत्वा ततस्तानभिवाद्य च ॥ ययौ सूर्यस्य निकटे कुर्वंतो भास्करस्तुतिम् ॥१८॥
इत्येतत्सर्वमाख्यातं कार्तिकस्य व्रतोत्तमम् ॥ यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥१९॥
अतः परं किं वक्ष्यामि ब्रूह्यात्रेयस सत्वरम् ॥ २० ॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये उद्यापनविधिर्नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

जिसके करनेसे मनुष्य सब पापोंसे उसी क्षण निवृत्त होजाता है ॥ १९ ॥ इसके उपरांत हे आत्रेयस ! जो कुछ पूछनेकी इच्छा हो शीघ्र पूछो कि मैं क्या वर्णन करूं ॥ २० ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये उद्यापनविधिर्नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥



॥ आत्रेयस बोले ॥ तुमने जो कार्तिककी महिमा कही सो बडी अद्भुत है जो आप करनेवालेकी सामर्थ्य न हो तो इसके कियेका कैसे फल हो ॥ १ ॥ कुमार बोले ॥ जो कर्ताको आप करनेकी सामर्थ्य न हो तो उपायसे फल प्राप्त होता है । ब्राह्मणको द्रव्य देकर उत्तम फलको ग्रहण करे ॥ २ ॥ शिष्यसे, भृत्यवर्गसे स्त्रीसे वा अपने संबन्धीसे कर-

॥ आत्रेयस उवाच ॥ अद्भुतोयं त्वया प्रोक्तो महिमा कार्तिकस्य तु ॥ स्वस्य कर्तुमसामर्थ्यं कथमेतत्कृतं भवेत् ॥ १ ॥ कुमार उवाच ॥ नास्ति कर्तुं स्वसामर्थ्यमुपायात्प्राप्यते फलम् ॥ द्रव्यं दत्त्वा ब्राह्मणाय गृह्णीयात्फलमुत्तमम् ॥ २ ॥ शिष्याद्वा भृत्यवर्गाद्वा स्त्रीभ्यो वाताच्च कारयेत् ॥ तस्मादपि फलं गृह्णन् फलभाग्जायते नरः ॥ ३ ॥ आत्रेयस उवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि प्राप्यंते केनचित्क्वचित् ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतुकं मम वर्तते ॥ ४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अदत्तान्यपि पुण्यानि लभंते पातकान्यपि ॥ येनोपायेन तद्वच्मि शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ५ ॥ सुकृतं वा दुष्कृतं वा कृतमेकेन यत्कृते ॥ जायते तस्य तद्राष्ट्रे त्रेतायां तु पुरे भवेत् ॥ ६ ॥

वावे । उससे भी फल लेनेसे मनुष्य फलका भागी होता है ॥ ३ ॥ आत्रेयस बोले । कभी विनादिये पुण्य भी किसीको मिल जाते है, मै यह सुनना चाहताहूं क्योंकि मुझे बडा कौतुक है ॥ ४ ॥ सनत्कुमार बोले ॥ विनादिये पुण्य मिलते है और पाप भी मिलते हैं और जिस उपायसे मिलते हैं वह कहताहूं मनको एकत्र करके सुनो ॥ ५ ॥ सतयुगमें जो एक

मनुष्य पुण्य वा पाप करता था तो उसका वह राज्यभरमें होता था और त्रेतामें पुरमें होता था ॥ ६ ॥ और द्वाप-
रमें वंशमें और कलियुगमें केवल कर्ताकोही होता है । और बालकपनेमें जो अज्ञानसे कर्म किया गया है उसका
स्वप्नमें फल होता है ॥ ७ ॥ और तरुणावस्थामें अज्ञानसे किया जाता है उसका फल बाल्यावस्थामें होता है ॥ और
जो जान बूझकर कर्म किया है उसका फल जन्मके अंत तक मिलता है ॥ ८ ॥ छः महीने पापीका संग करनेसे मनुष्य

द्वापारे वंशमध्ये तु कलौ कर्तैव केवलम् ॥ अज्ञानाद्यत्कृतं कर्म बाल्ये स्वप्ने तु तत्फलम् ॥ ७ ॥
अज्ञानाद्यच्च तारुण्ये बाल्ये तस्य फलं भवेत् ॥ ज्ञानपूर्वं कृतं कर्म आजन्मांतं च तत्फलम् ॥ ८ ॥
षण्मासं पापिसंगेन नरः पापी प्रजायते ॥ पापिनां वा धर्मिणां वा संसर्गाद्दशमासिकम् ॥ ९ ॥
भोजनादेकपंक्तौ च विंशांशः पुण्यपापयोः ॥ एकासने द्वयोर्वासात्सहस्रांशेन लिप्यते ॥ १० ॥
यो वै यस्यान्नमश्नाति स भुंक्ते तस्य किल्बिषम् ॥ जपादौ पापिसंसर्गात्षोडशांशो विनश्यति ॥ ११ ॥

पापी होजाता है । और पापी वा धर्मात्माओंके संसर्गसे दश महीनेतक ॥ ९ ॥ एक पंक्तिमें भोजन करनेसे पुण्य
पापका वीसवें अंशका भागी होता है । और एक आसनपर दोनोंके वास करनेसे हजार भाग पाप लगता है ॥ १० ॥
जो जिसका अन्न खाता है वह उसके पातकको ग्रहण करता है । और जपकी आदिमें पापीका संसर्ग करनेसे
अपने पुण्यका १६ वां भाग नष्ट होजाता है ॥ ११ ॥

दूसरेकी स्तुति करनेसे, मेलकर लेनेसे तथा एक पात्रमें भोजन करनेसे, एक शय्यापर सोनेसे पुण्य-पापके छटवें भागका अधिकारी होता है ॥ १२ ॥ पुरुष अपनी स्त्रीके सब पुण्य पापका भागी होता है और औरस पुत्रके आधे पुण्य पापका और शिष्यके चौथाई पुण्य पापका भागी होता है ॥ १३ ॥ और पतिव्रता स्त्री अपने पतिके आधे पुण्यकी भागिनी होती है ॥ और जो जिसके हाथसे पका हुआ भोजन करता है उसके पापके दशांशका भागी होता

परस्य स्तवनाद्यौनादेकपात्रस्थभोजनात् ॥ एकशय्याप्रवरणात्षष्ठांशः पुण्यपापयोः ॥ १२ ॥
पुरुषो हरते सर्वं भार्याया औरसस्य च ॥ अर्द्धं शिष्याच्चतुर्थांशं पापं पुण्यं तथैव च ॥ १३ ॥
भर्तुराज्ञाकरी नारी भर्तुरर्द्धं वृषं हरेत् ॥ यद्धस्तपक्वं भुंजीयाद्दशांशं तदघं हरेत् ॥ १४ ॥
वर्षाशनं तु यो दत्ते तदर्धाघस्य भागयम् ॥ वर्षाशनार्द्धं पुण्यं तु भुंक्ते वर्षाशनी नरः ॥१५॥
पुरोहितस्य षष्ठांशं पापं वा पुण्यमेव वा ॥ यजमानो भुनक्त्येव तद्दशांशं पुरोहितः ॥ १६ ॥
उद्योगी चानुमंता च यश्चोपकरणप्रदः ॥ षष्ठांशं पुण्यपापानामुपद्रष्टा दशांशकम् ॥ १७ ॥

है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य किसीको वर्षभरके लिये भोजन देता है तो लेनेवाला उसके आधे पापका भागी होता है। और वर्षभरका भोजन देनेवाला मनुष्य लेनेवालेके आधे पुण्यका भागी होता है ॥ १५ ॥ और यजमान पुरोहितके पुण्य पापके छटवें हिस्सेका भागी होता है और पुरोहित यजमानके दशवें अंशका भागी होता है ॥१६॥ जो जिससे आजीविका

करता है जो किसीको संमति देता है और जो किसीका उपकार करता है तो वह उनके पुण्य पापके छटे अंशका भागी होता है और जो किसीके कामका देखनेवाला है वह उसके पुण्य पापके दशांशका भागी होता है ॥ १७ ॥ जो किसीसे काम कराकर उसे सेवक और शिष्यको छोड़कर अन्न खानेको नहीं देता है तो वह उसके पुण्य पापके छटे अंशका भागी होता है ॥ १८ ॥ जो जिससे व्यवहार प्रीति और बातचीत करता है वह उसके दशाश पुण्य पापका भागी

यद्धस्तात्कार्यंते कर्म नान्नमस्मै प्रयच्छति ॥ विनाभृत्यकशिष्याभ्यां षष्ठांशं पुण्यमाहरेत् ॥ १८ ॥
व्यवहारात्तथा प्रीत्या नित्यं संभाषणादिभिः ॥ दशांशपुण्यपापानां लभते नात्र संशयः ॥ १९ ॥
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥ वाराणस्यां कर्मदत्तो भरद्वाजकुले भवत् ॥ २० ॥
वेदवेदांगवित्पूज्यो जपध्यानपरायणः ॥ सुशीला नाम तद्भार्या सुशीला तरुणी शुभा ॥ २१ ॥
एकदंतः सुतः सोपि सर्वविद्यामधीतवान् ॥ तारुण्यं स वयः प्राप्य कामाविष्टस्तदाभवत् ॥ २२ ॥

होता है ॥ १९ ॥ इसी विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहते हैं । काशीजीमें भरद्वाज गोत्रमें एक कर्मदत्त नाम ब्राह्मण था ॥ २० ॥ वह वेद वेदांगोंका ज्ञाता और जप ध्यान करनेवाला था । उसकी सुशीला नाम स्त्री बड़ी सुशील युवा और सुन्दर थी ॥ २१ ॥ और उसका पुत्र एकदंत नाम सब विद्याओंका जाननेवाला था । एक समय वह अपनी तरुणअवस्थामें कामातुर हुआ ॥ २२ ॥

उसकी रूपावली नाम स्त्री यद्यपि बड़ी चतुर, सुन्दर और पतिव्रता भी थी तो भी एकदंत उसे छोड़कर कामके वश होगया ॥२३॥ और परस्त्रीके व्यसनसे अपना बहुतसा द्रव्य नाशकर दिया ॥ और उसके पिताको दुःख होगा इस भयसे लोग उससे बुरा भला कुछ नहीं कहते थे ॥ २४ ॥ उसकी माताने उसे बहुत मने किया परंतु उसने अपना काम नहीं छोड़ा । फिर वह जब जातिसे पतित होगया तो उसकी स्त्री और उसके मित्रादिक उसे धिक्कार देने लगे ॥ २५ ॥ परंतु वह रात दिन पर-

तस्य रूपावली भार्या चतुरातीव सुंदरा ॥ पतिव्रतापि तां हित्वा सोपि कामवशं ययौ ॥२३॥
परस्त्री व्यसनात्तेन बहुद्रव्यं विनाशितम् ॥ पितुर्दुःखभयाल्लोका नोचुः किंचिच्छुभाशुभम् ॥२४॥
मात्रा निवारितो भूयो व्यसनं सोत्यजन्न च ॥ ततश्च पतितं भार्या धिक्करोति सुहृज्जनः ॥ २५ ॥
अहोरात्रं वचस्तस्य परस्त्रीव्यसनाय च ॥ परस्त्रीव्यसनासक्त्या वयोनीतमजानता ॥ २६ ॥
बहुभिः शिक्षितं नैव करोति च विमोहितः ॥ ततश्चौर्यं समारब्धं परस्त्रीसुखलब्धये ॥ २७ ॥
ततो लोकैश्च तज्ज्ञातं भीत्या काश्याः पलायितः ॥ एकदंतस्तदा चिंतामुपलेभे क्याम्यहम् ॥२८॥

स्त्री परस्त्रीही चिल्लाता था । और परस्त्रीकी इच्छामेंही उसकी आयु पूरी होगई और जान नहीं पड़ी ॥ २६ ॥ बहुतसे लोगोंने समझाया परंतु उस मूर्खने किसीका कहा न माना और परस्त्रीके सुखके लिये चोरी करना आरंभ किया ॥ २७ ॥ फिर लोगोंने इस बातको जानकर डरके मारे उसे काशीसे भगादिया फिर तो एकदंत चिंता करने लगा

फिर वह मार्गको न जाननेवाला धीरे २ जातेमें देवताओंके दर्शन करता हुआ और
कि अब मैं कहां जाऊं ॥ २८ ॥ उस समय लोग कार्तिकस्नानके लिये आये। और वहां
देश देशांतरोंमें होता हुआ यमुनाके तीरपर आया ॥ २९ ॥ सुन्दररूप और अवस्थावाले स्त्रीपुरुषोंको उसने देखा और
जो अनेक देशोंसे कार्तिकस्नानके लिये आये थे ॥३०॥ उन किसीने उस दुष्टका चरित्र नहीं जाना। और
उनका कौतुक देखता हुआ वहां एक मास रहा ॥ ३१ ॥ पर उनमेंसे

मार्गानभिज्ञो गच्छन्स शनैर्देवान्विलोकयन् ॥ देशाद्देशांतरं गच्छन्यमुनातीरमागतः ॥ २९ ॥
स्नानार्थं कार्तिके मासि तदा लोकाः समागमन्॥कार्तिकव्रतिनस्तत्र नानादेशात्समागतान् ॥३०॥
नरान्ददर्श स्त्रीश्चापि सुरूपा वयसान्विताः ॥ स दृष्ट्वा कौतुकं पश्यन्मासमेकमुवास ह ॥ ३१ ॥
न तन्मध्ये कोपि जनश्चेष्टितं तस्य दुर्मतेः ॥ संध्याकाले भ्रमंस्तत्र स्त्रीणां दर्शनलालसः ॥ ३२ ॥
ददर्श ब्राह्मणांस्तत्र जपदेवार्चनस्थितान् ॥ कांश्चित्पुराणं पठतः कांश्चित्तच्छ्रवणे रतान् ॥ ३३ ॥
नृत्यतो गायतः कांश्चिद्विष्णुस्तवनतत्परान्॥तुलसीधारिणः कांश्चिद्विष्णुमुद्रांकितान्परान् ॥३४॥

वह संध्याकालको वहां स्त्रियोंके देखनेकी इच्छासे घूमने लगा ॥ ३२ ॥ और उसने जप और देवार्चनमें बैठे हुये ब्राह्म-
णोंको देखा कि जो कितनेही पुराणका पाठ करते थे और कितनेही सुनते थे ॥ ३३ ॥ कोई नाचते थे कोई गाते थे
और कोई विष्णुकी स्तुति करते थे। कोई तुलसीकी माला पहिरें थे और कोई विष्णु मुद्रा लगायें थे ॥ ३४ ॥

उनके समाजमें नित्य फिरते हुये उन पुण्यात्मा जनोंके दर्शन स्पर्शन और भाषणसे उसका संपूर्ण पाप नाश होगया ॥ ३५ ॥ फिर उसने पूर्णमासीके दिन ब्राह्मण और गायोंका पूजन दक्षिणा, भोजन और दीपदान आदि देखा ॥ ३६ ॥ और रात्रिमें परस्त्रीकी इच्छासे दीपोत्सवको देखता हुआ आधी रातके समय वह एक क्षत्रीकी स्त्रीको बलसे ॥ ३७ ॥ पकड़कर आलिंगन करने लगा उस समय उसके पतिने देखा तो उस स्त्रीको छोड़कर भागा ॥ ३८ ॥

नित्यं परिभ्रमंस्तत्र दर्शनस्पर्शभाषणैः ॥ पुण्यात्मनां जनानां च पापं तस्य क्षयं ययौ ॥ ३५ ॥
पौर्णमास्यां ततोपश्यद्विप्रगोपूजनादिकम् ॥ दक्षिणाभोजनाद्यं च दीपदानादिकं तथा ॥ ३६ ॥
रात्रौ दीपोत्सवं पश्यन् परस्त्रीकामुकः स तु ॥ ततोर्द्धरात्रसमये राजन्यस्य स्त्रियं बलात् ॥३७॥
जग्राह चालिलिंगासौ दृष्टस्तत्पतिना तदा ॥ दृष्टमात्रस्तु तेनाथ तां विहाय पलायितः ॥ ३८ ॥
एकदंतस्य मार्गे च सर्पेङ्घ्रिरपतत्तदा ॥ पृदाकुना ततो दष्टः सद्योमृतिमुपाययौ ॥ ३९ ॥
बहवो मिलितास्तत्र वैष्णवाः पुण्यशालिनः ॥ एकदंतो द्विजः सोयं दष्टः सर्पेण दैवतः ॥ ४० ॥

और मार्गमेंसे एकदंतका पांव सर्पके ऊपर गिरा तो सर्पने उसे काट खाया और वह मरगया ॥ ३९ ॥ वहां वैष्णव पुण्यात्मा बहुतसे ब्राह्मण एकत्र हुये और कहने लगे कि यह वही एकदंत नाम ब्राह्मण है प्रारब्धसे इसे सर्पने काट खाया है ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दैवसे जो बात होनेवाली है उसे कोई रोक नहीं सकता ऐसा कहकर कोई राम राम, कोई शिव शिव और कोई विष्णु २ कहने लगे ॥ ४१ ॥ और वह सब लोग बड़ी करुणा करके ऊंचे शब्दसे भगवान्का नाम उसके कानमें सुनाने लगे। और कोई मनुष्य जलमें तुलसी गेरकर बड़े आदरसे उसके मुखमें डालने लगे ॥ ४२ ॥ फिर यमदूतोंने उसे बांधकर अनेक प्रकारसे मारा और जब उसे बांधकर यमके सामने लेगये तब उसे देखकर

किं करिष्यति यद्भावि न तत्केनापि वार्यते ॥ इत्यूचू रामरामेति केचिद्विष्णो शिवेति च ॥४१॥ कर्णे जपंतस्तारेण स्वरेण करुणान्विताः ॥ केचित्तु तुलसीमिश्रं जलं चिक्षिपुरादरात् ॥ ४२ ॥ यमदूतैस्तदा बद्धस्ताडितोनेकधा ततः ॥ यमस्य सन्निधौ नीतस्तं दृष्ट्वा सूर्यनंदनः ॥ ४३ ॥ अब्रवीच्चित्रगुप्तं वै किमस्य दुष्कृतं कृतम् ॥ चित्रगुप्त उवाच ॥ जानतानेन विप्रेण कृतं कर्माशुभं बहु ॥ ४४ ॥ तस्मान्निरयवासाय योग्योयं नास्ति संशयः ॥ चित्रगुप्तवचः श्रुत्वा यमः प्रेतपमब्रवीत् ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥

यमराज ॥ ४३ ॥ चित्रगुप्तसे बोले कि इसने क्या पाप किया है यह सुनकर चित्रगुप्त बोले इस ब्राह्मणने जान बूझकर बहुतसा पाप किया है ॥ ४४ ॥ इसलिये यह नरकवासके योग्य है इसमें संशय नहीं। चित्रगुप्तका यह वाक्य श्रवणकर यमराजने प्रेतपसे कहा ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

यम बोले ॥ हे प्रेतप ! तुम इन ब्राह्मणको नरकमें शीघ्र लेजाओ फिर प्रेतप उस ब्राह्मणको पकड़कर नरकके पास लेगया॥४६॥ इस ब्राह्मणने अनेक भयानक नरकोंको देखकर और भयसे कंपित होकर कहा कि मैने अपना जन्म व्यर्थ खोया॥४७॥ फिर प्रेतपने कहा कि अब क्रमसे नरकोंमें घुस—और जब यह ब्राह्मण न घुसा तब तेलके तपे हुने कढावमें ॥ ४८ ॥

॥ यम उवाच ॥ प्रेतपैनं द्विजं शीघ्रं नरके विनिपातय ॥ प्रेतपस्तु ततो धृत्वा तं विप्रं नरके नयत् ॥ ४६ ॥ नानाभयानकान् दृष्ट्वा नरकांस्तेन वै तदा ॥ भयकंपित आहेदं वृथा जन्मविनाशितम् ॥ ४७ ॥ प्रेतपेन ततश्चोक्तं नरकान् क्रमशो विश ॥ यदासौ नाविशत्तत्र तैलतप्ते कटाहके ॥ ४८ ॥ कुंभीपाकाभिधे क्षिप्तः प्रेतपेन हठात्तदा ॥ प्रक्षिप्तोपि द्विजो नासौ वेदनामापकामपि ॥ दृष्ट्वाश्चर्यं यमायोक्तं प्रेतपेन कुतूहलात् ॥ ४९ ॥ कुंभीपाके परिक्षिप्तः सुखमास्ते यथा ह्रदे ॥ जलस्य घर्मतप्तो हि तथायमभवद्द्विजः ॥ ५० ॥ तच्छ्रुत्वा धर्मराजोपि किमिदं कस्य कर्मणः ॥ फलं विचारयेद्यावत्तावत्तत्र समागतः ॥ ५१ ॥ ॥

जिसे कुंभीपाक कहते हैं प्रेतपने हठसे उसे उसमें डालदिया पर गेरनेसे भी इस ब्राह्मणको कोई पीड़ा नहीं हुई । प्रेतपने यह आश्चर्य देख कौतुकसे यमराजको जता दिया ॥ ४९ ॥ यह ब्राह्मण कुंभीपाकमें डालनेसे ऐसा सुखी हुआ कि जैसे गर्मीसे तपा हुआ मनुष्य जलके तालावमें गिरनेसे सुख पाता है ॥ ५० ॥ इसे सुन यमराजने विचारा कि यह न जाने

कौनसे कर्मका फल है यह विचार करही रहेथे कि तबतक नारदजी आगये ॥ ५१ ॥ सब वृत्तान्तको जाननेवाले नारदजी यमसे आदरसहित बोले । नारदजी बोले । इस एकदंत नाम ब्राह्मणको स्वर्गमें लेजाओ यह यातना भोगने योग्य नहीं है ॥ ५२ ॥ इसने कार्तिकमासमें स्नानके लिये यमुनाजीपर आये हुये सज्जन और महात्माओंके साथ सब मास बिताया है ॥ ५३ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे इसका सब पाप नाश होगया है इसलिये नरकोंको दिखाकर इसे

नारदः सर्वदर्शी च यमं प्रोवाच सादरम् ॥ नारद उवाच ॥ एकदंतः समानेयो नायमर्हति यातनाम् ॥ ५२ ॥ अनेन किल कालिंद्यामूर्जे मासि समागतैः ॥ स्नानार्थं सज्जनैः सार्धं मासः सर्वोतिवाहितः ॥ ५३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेन क्षीणं पातकमस्य वै ॥ अतः प्रदर्श्य नरकान्नेयोसौ स्वर्गमेव हि ॥ ५४ ॥ ततो नारदवाक्येन दर्शयित्वा द्विजस्य तु ॥ नरकान्बहुदुःखाढ्यानेकाशीति प्रभेदकान् ॥ ५५ ॥ ततो नीतः स्वर्गमसौ पुण्यभोगाय देववत् ॥ अतः ॥ ॥ संसर्गजं पुण्यं पापं वापि भवेद्ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

स्वर्गमें लेजाओ ॥ ५४ ॥ इसके पीछे नारदजीके वचनसे उस ब्राह्मणको अनेक दुःखोंको देनेवाले ८१ प्रकारके नरकोंको दिखाकर ॥ ५५ ॥ उसे देवताके समान पुण्य भोगनेके लिये स्वर्गमें लेगये । इससे स्पष्ट है कि संसर्गसे पाप पुण्य अवश्य होता है ॥ ५६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इसलिये बुद्धिमान्को सज्जनोंकी संगतिके लिये यत्न करना चाहिये क्योंकि दुष्टोंकी संगतिसे कमाया हुआ पुण्य

तस्मात्सतां संगतये यतितव्यं सुधीमता ॥ असत्संगाद्यतः पुण्यमार्जितं च विनश्यति ॥ ५७ ॥
इतिहासमिमं श्रुत्वा शुभं प्राप्नोति मानवः॥ एष सत्संगमहिमा उक्तोन्यत्किंविवक्षितम् ॥ ५८ ॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

भी नाश होजाता है ॥ ५७ ॥ इस इतिहासके सुननेसे मनुष्य कल्याणको पाता है । सनत्कुमार कहते हैं कि हे आत्रेय ! मैंने यह सत्संगकी महिमा तुमसे कही है अब अधिक क्या सुननेकी इच्छा है सो कहिये ॥ ५८ ॥ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमाहात्म्ये पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥



॥ आत्रेय बोले ॥ कार्तिकमासका ऐसा व्रत है कि जिसमे थोड़ा तो क्लेश है और फल भारी मिलता है। हे महाराज !
सनत्कुमारजी ! तिसपर भी कोई २ मनुष्य इसे क्यों नहीं करते हैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले। ब्रह्माजीने अपनी सृष्टि
वढ़ानेके लिये धर्म तथा अधर्मको बनाया है। धर्मको करनेवाले अच्छी गतिको पाते हैं॥ २॥ और अधर्मको करनेवाले

॥ आत्रेय उवाच ॥ ईदृशं कार्तिकव्रतमल्पायासं महत्फलम् ॥ न कुर्वंति जनाः केचित्कि-
मर्थं मुनिसत्तम ॥ १ ॥ कुमार उवाच ॥ स्वसृष्टिवृद्धये वेधा धर्माधर्मौ ससर्ज ह ॥ धर्ममेवा-
नुतिष्ठंतः प्राप्नुवंति शुभांगतिम् ॥ २ ॥ अधर्ममनुतिष्ठंतो यांति तेऽधोगतिं नराः ॥ पुण्यकर्म-
फलं नाको नरकस्तद्विपर्ययः ॥ ३ ॥ तयोः पालनकर्तारौ द्वावेव विधिना कृतौ ॥ शतक्रतु-
यमौ तौ च पुण्यपापनुसारिणौ ॥४॥ गुरुतल्पादयः पुत्राः कामस्य प्रथिता भुवि ॥ क्रोधस्य
पितृघाताद्या लोभस्य तनयां शृणु ॥ ५ ॥ ब्रह्मस्वहरणाद्याश्च एते नरकनायकाः ॥ कृता
यमेन तैर्व्याप्ता मनुजा नहि कुर्वंते ॥ ६ ॥ ॥ ॥

अधोगतिको पाते हैं। पुण्यका फल स्वर्ग और पापका फल नरक है ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीने उन पाप पुण्यके पालन करनेवाले
तो दोही बनाये हैं एकतो यम और दूसरा इन्द्र और ये ही पुण्य और पापके स्वामी हैं ॥४॥ पृथ्वीपर कामदेवके पुत्र
तो गुरुतल्प आदि प्रसिद्ध हैं और क्रोधके पितृघात आदि, और अब लोभके पुत्रोंको सुनो ॥५॥ उनका नाम है ब्रह्मस्वह-

रण अर्थात् ब्राह्मणोंका धन हरनेवाले और ये नरकके नायक हैं और यमराजने मनुष्योंको कामादिकोंसे लिप्तकर दिया है इसकारण व्रत आदि धर्मके कृत्योंको वे नही करते ॥ ६ ॥ और जिनमे काम आदि नहीं है वे करते हैं ॥ ७ ॥ और इस पृथ्वीपर जिनकी श्रद्धा और बुद्धि सदा भ्रष्ट रहती हैं उन्होंसे घिरे हुए मनुष्य श्रीविष्णुभगवान्की कथा वार्ता आदि श्रवण नहीं करते ॥ ८ ॥ और वे दुष्टबुद्धि मनुष्य घोर नरकमे जाते हैं। आत्रेयजी बोले ॥ गरीव

व्रतादिधर्मकृत्यं यत्तैर्मुक्तास्ते हि कुर्वते ॥ ७ ॥ श्रद्धामेधाविघातिन्यौ वर्तेते भुवि सर्वदा ॥ ताभ्यां व्याप्तास्तुमनुजाः श्रीविष्णोः श्रवणादिकम् ॥ ८ ॥ न कुर्वते सुदुर्मेधा येनांधं याति वै तमः ॥ आत्रेय उवाच ॥ ऊर्जे व्रतोद्यापनादावशक्तः सिद्धिभाक्कथम् ॥ ९ ॥ कथं विमुच्यते जंतुर्दुःखसं-सारसागरात् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुयादूर्जमाहात्म्यं नियमेन शुचिः पुमान् ॥ १० ॥ संपू-र्णमथवाध्यायमेकश्लोकमथापि वा ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ११ ॥ मुहूर्तं वापि शृणुयात्कथां पुण्यां दिने दिने ॥ यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तः स्यात्तु मानवः ॥१२॥

मनुष्य कार्तिकमासके व्रतोंके उद्यापन आदि करके कैसे फल पासक्ता है ॥ ९ ॥ और इस संसारके दुःखसागरसे कैसे छूट सक्ता है। सनत्कुमार बोले ॥ मनुष्य शुद्ध होकर नियमसे कार्तिकमाहात्म्यको सुने ॥ १० ॥ संपूर्ण अथवा एक अध्याय अथवा एक श्लोकको सुनकर पीछेसे अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराके उन्हें दक्षिणादे॥ ११ ॥सब कामोंको छोड़

कर मनुष्यको नित्य दोघड़ी तो अवश्य भगवान्‌की कथा सुननी चाहिये—जो मनुष्य ॥१२॥ नित्य सुननेमें समर्थ न हो तो पुण्य मासमें अथवा पुण्य तिथिमें तोभी सुने उसके पुण्यके प्रभावसे मनुष्य सब पातकोंसे छूट जाता है ॥ १३ ॥ पुराणका जाननेवाला शुद्ध, चतुर, शांत ईर्ष्यासे रहित दूसरोंका उपकारी, दयालु, मधुरभाषी ऐसा बुद्धिमान् पवित्र कथाको कहै ॥ १४ ॥ जबतक पुराण कहनेवाला व्यासजीके आसनपर स्थित हो तबसे कथाके समाप्त होनेतक वह

पुण्यमासेथवा पुण्यतिथौ संश्रृणुयादपि ॥ तेन पुण्यप्रभावेन पापान्मुक्तोभवेन्नरः ॥ १३ ॥ पुराणज्ञः शुचिर्दक्षः शांतो विगतमत्सरः ॥ साधुः कारुणिको वाग्मी वदेत्पुण्यां कथां सुधीः ॥१४॥ व्यासासनं समारूढो यदा पौराणिको भवेत् ॥ आसमाप्तेः प्रसंगस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥१५॥ न दुर्जनसमाकीर्णमशूद्रश्वापदावृते ॥ देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ १६ ॥ श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥ वाग्यताः शुचयो दक्षाः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥१७॥ अभक्ता ये कथां पुण्यां श्रृण्वंति मनुजाधमाः॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि॥१८॥

किसीको नमस्कार नहीं करै ॥ १५ ॥ पण्डितको चाहिये कि शूद्र चांडाल आदि दुष्ट जिस स्थानमें एकत्र हों वा जहां जुआ होता हो उस जगह कथा न वांचे ॥ १६ ॥ जो श्रद्धा भक्तिसे युक्त हैं, जो दूसरे काममें चित्त नहीं लगाते, जो थोड़ा बोलते हैं, और जो शुद्ध और चतुर हैं ऐसे श्रोताजन इस कथाके पुण्यके भागी होते हैं ॥१७॥ जिनको ईश्वरकी भक्ति

नहीं है ऐसे नीच मनुष्य जो कथा सुनते हैं उनको पुण्यका फल नहीं होता और उनको जन्म २ मे दुःख भोगना पड़ता है ॥ १८ ॥ जो सुन्दर गंध वस्त्र आदिसे पौराणिकको पूजनकर कथा सुनते हैं वे दरिद्री और पापी नहीं होते है ॥१९॥ जो मनुष्य होती हुई कथाको छोड़कर अन्यत्र चला जाय तो जन्म जन्मान्तरमे उसकी स्त्री और संपत्तिका नाश होजाता है ॥ २० ॥ जो मनुष्य वक्तासे ऊंचे स्थानपर बैठे वा नमस्कार न करै अथवा कथामें सोवै तो वह जंगलमे

पौराणिकं च संपूज्य गंधवस्त्रादिभिः शुभैः ॥ शृण्वंति च कथां भक्त्या न दरिद्रा न पापिनः॥१९॥
कथायां कीर्त्यमानायां यो गच्छत्यन्यतो नरः ॥ भोगांतरे प्रणश्यंति तस्य दाराश्च संपदः ॥ २० ॥
उच्चासनसमारूढो न नरः प्रणतो भवेत् ॥ विषवृक्षस्तथास्वापे वने चाजगरो भवेत् ॥ २१ ॥
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वंति ये नराः ॥ कोट्यब्दनरकान्भुक्त्वा भवंति ग्रामसूकराः॥२२॥
ये श्रावयंति मनुजाः कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठंति ब्रह्मणः पदे ॥ २३ ॥
आसनार्थं प्रयच्छंति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥ कंबलाजिनवासांसि मंचं फलकमेव वा ॥ २४ ॥

विपका पेड़ तथा सांप होता है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य कथा होते में विघ्न करते हैं वे कोटि वर्ष नरकोंको भोगकर पीछे गांग के शूकर होते है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य पुराणकी सुन्दर कथा दूसरोंको सुनाते है वे सौ करोड़ कल्पतक ब्रह्मपद पाते हैं ॥ २३ ॥ जो मनुष्य पुराण जाननेवालेके आसनके लिये कंवल, मृगचर्म, वस्त्र, चौकी वा तखत देते हैं ॥२४॥

परिधानीयवस्त्राणि प्रयच्छंति च ये नराः ॥ भूषणादि च यच्छंति वसेयुर्ब्रह्मसद्मनि ॥ २५ ॥ वाचके परितुष्टे तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ अतः संतोषयेद्भक्त्या भक्तिश्रद्धान्वितःपुमान् ॥२६॥ तस्य पुण्यफलं पूर्णं भवत्येव न संशयः ॥ यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ २७ ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विंदते नरः ॥ कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ॥ २८ ॥ नास्ति धर्मः परः पुंसां नास्ति मुक्तिपथः परः ॥ पुराणश्रवणाद्विष्णोर्नास्ति संकीर्तनात्परम् ॥ २९ ॥ य एतदूर्जमाहात्म्यं शृणुयाच्छ्रावयेदपि ॥ स तीर्थराजवदरीगमनस्य फलं लभेत् ॥ ३० ॥

और जो मनुष्य पहिरनेके वस्त्र देते है और जो आभूषण देते हैं वे ब्रह्मलोकमे वास करते है ॥ २५ ॥ पुराण वांचनेवालेको संतोष होनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं इसलिये मनुष्यको चाहिये कि भक्ति श्रद्धासे वक्ताका संतोष करे॥२६॥ ऐसे मनुष्यकोही पुण्यका पूरा फल मिलता है इसमें संदेह नहीं है। जो फल सब यज्ञोंके करनेसे तथा सब दानोंके देनेसे होता है ॥ २७ ॥ उसी फलको मनुष्य एक वार पुराण सुननेसे पाता है। कलियुगमें विशेष करके पुराण श्रवणके सिवाय ॥ २८ ॥ मनुष्योंके लिये दूसरा धर्म और मुक्तिका मार्ग नही है। पुराणका श्रवण और विष्णुका स्मरण इन दोनों वातोंको छोड़ संसारमें और कोई उत्तम वस्तु, नहीं है ॥ २९ ॥ जो कोई मनुष्य इस कार्तिकमाहात्म्यकी कथाको सुने और दूसरोंको सुनावै वह प्रयाग और वदरिकाश्रम जानेका फल पाता है ॥ ३० ॥ ॥ ॥

यह सुन्दर कार्तिकमाहात्म्य सब रोगोंका नाशक सब पापोंको दूर करनेवाला, धनधान्यका दाता तथा मुक्तिका आदि

सर्वरोगापहं सर्वपापनाशकरं शुभम् ॥ धनधान्यकरं मुक्तेर्निदानं कार्तिकव्रतम् ॥ ३१ ॥
विष्णुप्रीतिकरं नानावांछितार्थफलप्रदम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या तस्य पुण्यफलं महत् ॥३२॥
॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमासमाहात्म्ये षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

कारण है ॥ ३१ ॥ वह विष्णुभगवान्की प्रीतिको उत्पन्न करनेवाला और अनेक मनोरथोंके फलका दाता है । जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसे करता है उसे बड़ाभारी पुण्यका फल होता है ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां कार्तिकमासमाहात्म्ये रामेश्वरभट्टकृतभाषाटीकया गुम्फिते षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इदं पुस्तकं मुंबय्यां तुकाराम जावजी इत्येतैः स्वीये "निर्णयसागरा"ख्य यन्त्रालये
बा॰ रा॰ घाणेकर द्वारा मुद्रयित्वा प्रकाशितम् । शाकः १८३३. सन १९१२.

Printed by B R. Ghanekar at the Nirnaya-sagar Press, 23, Kolbhat lane, Bombay

Published by Tukaram Javaji at the Nirnaya-sagar Press, 23, Kolbhat lane, Bombay

॥इति सनत्कुमारकार्तिकमाहात्म्यं समाप्तम्॥